टाइम्स ऑफ इंडिया प्रकाशन जनवरी 1988 मूल्य : 7 रुपये

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# सारिका

080586


गांव की नदी
■ रमेशचंद्र शा

खारिज
■ से. रा. यात्री

पार
■ प्रणवकुमार वंद्योपाध्याय

माइनस सेव
■ मनमोहन चा

भगदत्त का ह
■ संजय


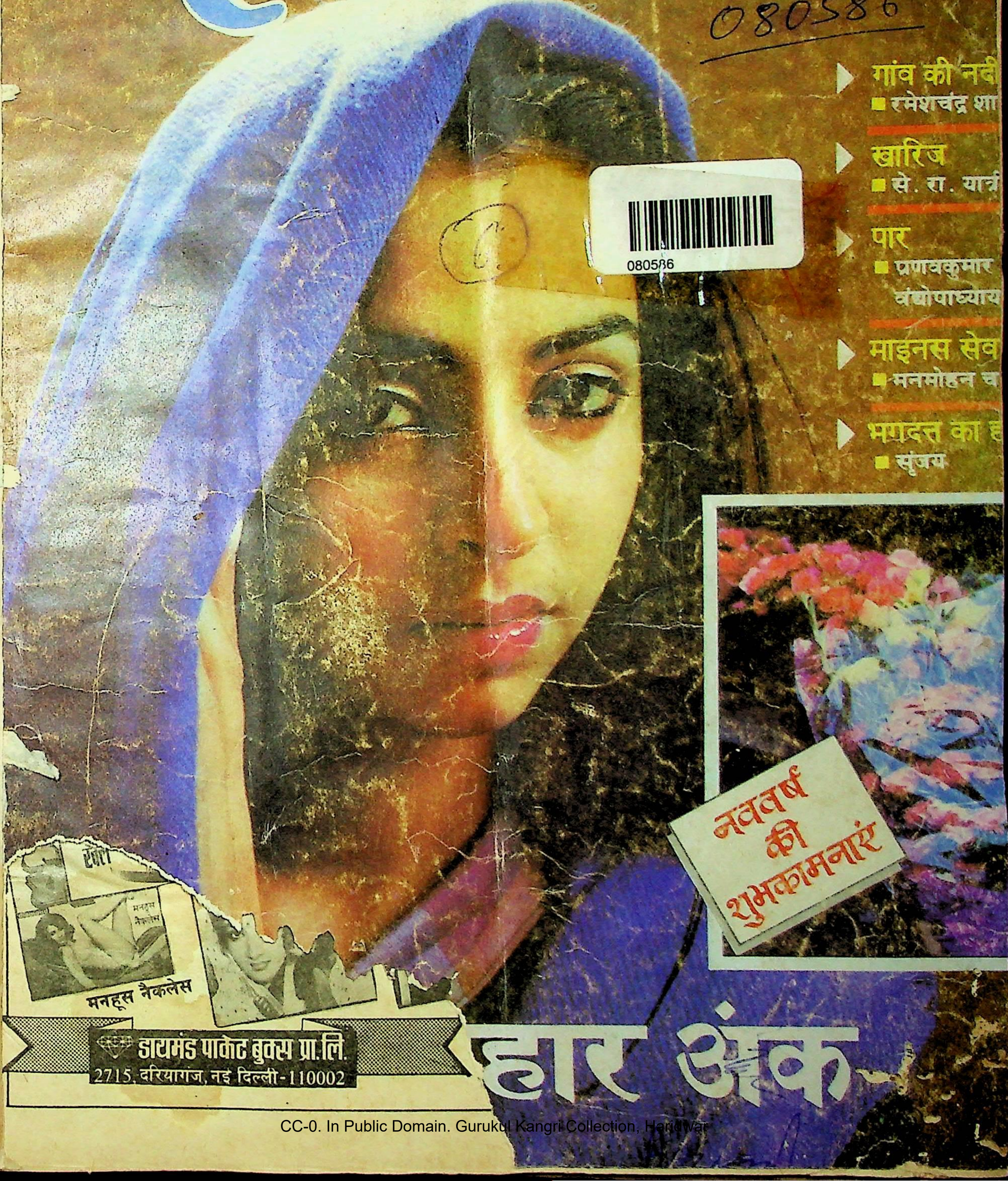

नववर्ष की शुभकामनाएं

मनहूस नैकलेस
डायमंड पाकेट बुक्स प्रा. लि.
2715, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

हार अंक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# उत्तर रेलवे आपके नित्य जीवन का अभिन्न अं

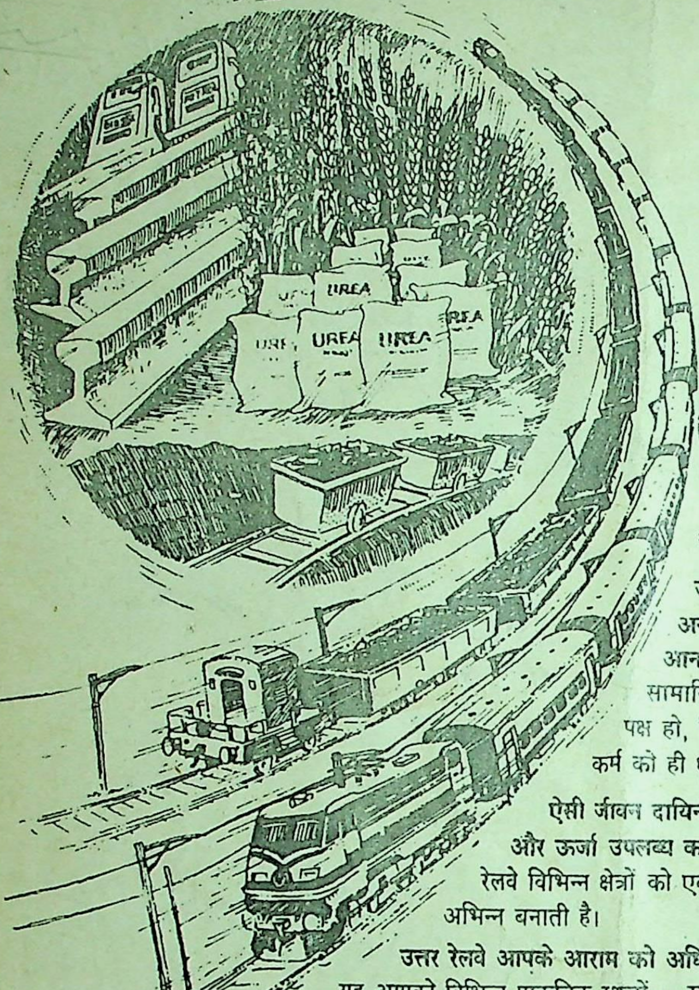


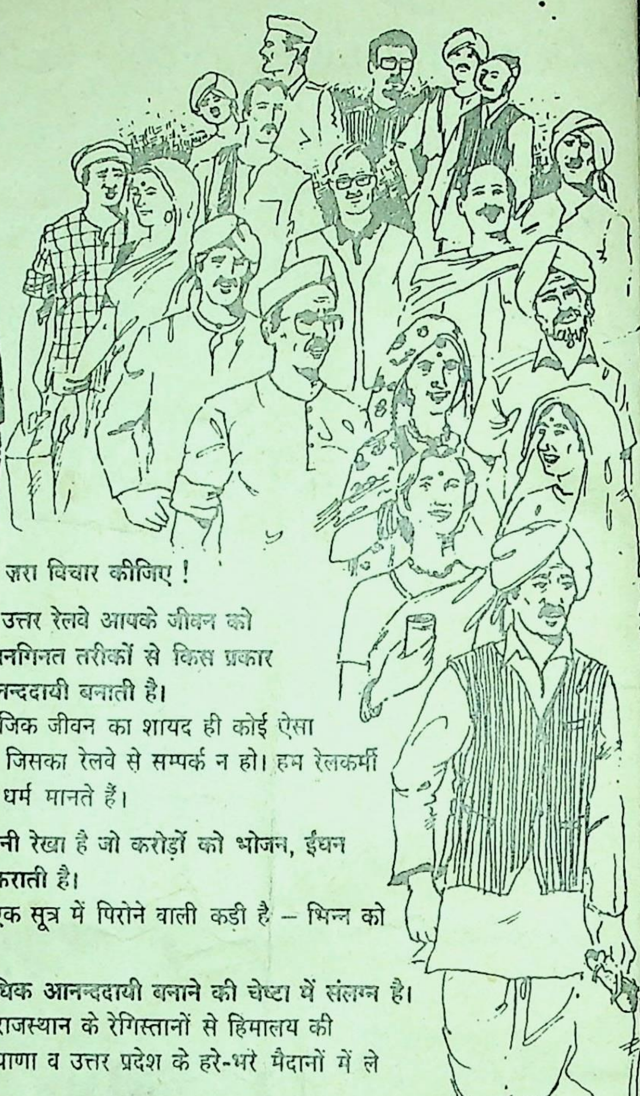

**ज़रा विचार कीजिए !**

उत्तर रेलवे आपके जीवन को अनगिनत तरीकों से किस प्रकार आनन्ददायी बनाती है।

सामाजिक जीवन का शायद ही कोई ऐसा पक्ष हो, जिसका रेलवे से सम्पर्क न हो। हम रेलकर्मी कर्म को ही धर्म मानते हैं।

ऐसी जीवन दायिनी रेखा है जो करोड़ों को भोजन, ईंधन और ऊर्जा उपलब्ध कराती है।

रेलवे विभिन्न क्षेत्रों को एक सूत्र में पिरोने वाली कड़ी है – भिन्न को अभिन्न बनाती है।

उत्तर रेलवे आपके आराम को अधिक आनन्ददायी बनाने की चेष्टा में संलग्न है। यह आपको विभिन्न प्राकृतिक स्थलों – राजस्थान के रेगिस्तानों से हिमालय की हिमाच्छादित बर्फ़ीली चोटियों तथा पंजाब, हरियाणा व उत्तर प्रदेश के हरे-भरे मैदानों में ले जाती है।

**उत्तरी भारत में रेलवे लगभग सवा सौ वर्षों से राष्ट्रीय विकास के प्रत्येक प्रयास – परिवहन, हरित क्रांति, ऊर्जा उत्पादन, तीव्र औद्योगीकरण आदि में सक्रिय योगदान दे रही है।**

उत्तर रेलवे प्रतिदिन 900 मेल/एक्सप्रेस एवं सवारी गाड़ियों में 11 लाख यात्रियों का वहन करती है। साथ ही प्रतिदिन 2 लाख टन माल ढोया जाता है।

**उत्तर रेलवे की दैनिक गतिविधियों में शामिल हैं –**

- 47,000 टन अनाज का उत्तर के उपजाऊ क्षेत्र से देश के विभिन्न भागों को परिवहन.
- 62,000 टन कोयला, उद्योगों के लिए पहुँचाना.
- 15,000 टन पेट्रोलियम पदार्थों का यातायात.
- 17,000 टन खाद ढोना.

ये सब देश में आत्म-विश्वास तथा आत्म-सम्मान की भावना की जागृति लाने में सहायक हैं।

रेल पटरियों का जाल, जीवन दायिनी शिराओं और धमनियों की भांति काम कर रहा है।

**उत्तर रेलवे करोड़ों देश वासियों के भविष्य को उज्ज्वल बनाने में**

भारतीय रेल

**उत्त**

**उत्तरी क्षितिज में स्थिर और निरंतर**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# डायमंड पाकेट बुक्स में

मुफ्त

क्रिकेट प्रेमी
एक सुनहरा अवसर हाथ से न जाने दें

## क्रिकेट वर्ल्ड कप

रिलायन्स वर्ल्ड कप uptodate रिकार्ड सहित

प्राप्त करने के लिये

## अपने घर में अपनी लायब्रेरी योजना के सदस्य बनिये !

20/- की पुस्तकें 20/- में घर बैठे प्राप्त करें और पहली वी०पी० में 10/- की और 24/- की पुस्तकें 20/- में घर बैठे प्राप्त करें और पहली वी०पी० में 10/- की पुस्तक क्रिकेट वर्ल्ड कप मुफ्त पायें। तरीका बहुत आसान है। 5/- सदस्यता शुल्क मनीआर्डर व डाक टिकट से भेजकर नीचे लिखा फार्म हमें भेज दें। हम आपको सदस्य बना लेंगे और 24/- की पुस्तकें 20/- की हर माह वी०पी० द्वारा भेजते रहेंगे।

**सदस्यता कूपन**

मुझे अपने घर में अपनी लाइब्रेरी योजना का सदस्य बना लें। सदस्यता शुल्क पांच रुपये मनीआर्डर/डाक टिकट के साथ भेजा जा रहा है (सदस्यता शुल्क प्राप्त न होने की स्थिति में आपको सदस्यता नहीं दी जायेगी) मैंने नियमों को अच्छी तरह पढ़ लिया है। मैं हर माह वी.पी. छुड़ाने का संकल्प करता/करती हूँ।

नाम ...........................

पिता का नाम ...........................

पता ...........................

डाकखाना ...........................

इस माह के नये उपन्यास

मनहूस नैकलेस

**डायमंड पाकेट बुक्स प्रा.लि.**
2715, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## पाठकों की बचत एवं सुविधा के लिए

नये रूपाकार, साज-सज्जा और बढ़े हुए पृष्ठों के साथ 'सारिका' का यह अंक आपको अवश्य पसंद आया होगा और भविष्य में भी आप 'सारिका' नियमित रूप से पढ़ना चाहेंगे. आपकी सुविधा के लिए हमने 'सारिका' की वार्षिक तथा अर्द्धवार्षिक चंदे की रियायती दरें निर्धारित की हैं. आप केवल नीचे दिये गये कूपन के साथ अपने वार्षिक/अर्द्धवार्षिक चंदे की राशि बैंक ड्राफ्ट/मनीआर्डर द्वारा हमें भेज दें, आपको 'सारिका' डाक से नियमित मिलने लगेगी.

शुल्क की रियायती दरें :

**वार्षिक :67 रुपये**

**अर्द्धवार्षिक :34 रुपये**

कृपया मुझे/हमें निम्न पते पर एक वर्ष/छह माह के लिए 'सारिका' भेजने की व्यवस्था करें. समुचित राशि संलग्न है.

नाम . . . . . . . . . . . . . . . . .

पता . . . . . . . . . . . . . . . . .

. . . . . . . . . . . . . . . . . . .

. . . . . . . . . . . . . . . . . . .

हस्ताक्षर . . . . . . . . . . . . . .

शुल्क तथा कूपन कृपया इस पते पर भेजें :

**प्रसार अधिकारी**
**सारिका, टाइम्स ऑफ इंडिया,**
**7, बहादुर शाह जफर मार्ग**
**नयी दिल्ली-110002**

# अगला अंक

## वक्त के साथ तो बदलना ही चाहिए मालिक, नहीं तो वक्त आगे निकल जायेगा और हम पीछे छूट जायेंगे!

**वक्त और उसकी रफ्तार का एहसास कराती उपेंद्रनाथ अश्क, वीरेंद्र मेंहदीरत्ता, सुदर्शन नारंग, नफीस आफरीदी, केशव, शैलेंद्र सागर, तेजेंद्र शर्मा, भगवतीशरण मिश्र, हसन जमाल और विनय बिहारी सिंह की कथा रचनाएं.**

### ...हर कोई तालस्तोय नहीं बन सकता

जाने-माने कथाकार और 'सारिका' के भूतपूर्व संपादक चंद्रगुप्त विद्यालंकार का प्रख्यात कथाकार यशपाल जी पर आत्मीय संस्मरण.

### ....और साथ में

फाइल पढ़ि-पढ़ि जग मुआ, कृतियां, धारा के विरुद्ध, कथा-दर्शन, हलचल, सारिका कथा-पहेली, आपकी बात, अपनी बात, चलते-चलते, लघुकथाएं व बोलती तस्वीर.

### लोकप्रिय साहित्य पर विशिष्ट खंड

- ☐ लोकप्रिय साहित्य की दुनिया के अनोखे रंग.
- ☐ एक लोकप्रिय साहित्यकार की पत्नी के संस्मरण.
- ☐ ट्रेडमार्क लेखकों के प्रकाशकों से बातचीत व अन्य संग्रहणीय सामग्री.

हर महीने एक जरूरी मुलाकात सारिका जिंदगी की बेहतर किताब

**सारिका**
फरवरी 1988



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


# सारिका

कहानियों और कथाजगत की
संपूर्ण पत्रिका

वर्ष : 28, अंक : 429, जनवरी, 1988

संपादक :
अवधनारायण मुद्गल

उपसंपादक :
सुरेश उनियाल
महेश दर्पण
धीरेंद्र जैन

विभागीय सहयोगी :
बिमला रानी
ज्ञानसिंह

प्रोडक्शन :
हरेंद्र सिंह नेगी
सुनील चौहान

सज्जा प्रबंधक :
लोकेश भार्गव

आवरण पारदर्शियां :
नोवते, एस. के. शर्मा
आवरण सज्जा : सुधीर गुप्ता
अंक सज्जा : हरिप्रकाश त्यागी


# उपहार अंक

## कथा रचनाएं


10. भगदत्त का हाथी :
सृंजय
22. सिर्फ पैसा :
जयनंदन
31. गांव की नदी :
रमेशचंद्र शाह
37. पार :
प्रणव कुमार वंद्योपाध्याय
48. खारिज :
से. रा. यात्री
56. माइनस सेवन :
मनमोहन चड्ढा
60. पोखर :
नवीन कुमार नैथानी
64. पवन पुत्र :
भगवतीशरण मिश्र


## विशेष आयोजन


24. वह इबारत दुरुह नहीं :
से. रा. यात्री
46. ग्राम गंध की छाया में :
रमाकांत
70. सवालों के आईने में हिंदी कहानी के सौ वर्ष : दो
परिचर्चा आयोजक : अरविंद त्रिपाठी


## लघु रचनाएं


12. दृष्टि सीमा :
सुरेंद्र सुकुमार
14. आप हार गयीं :
दुर्गा शंकर त्रिवेदी
16. व्यवसाय :
प्रवासी विनय कृष्ण
32. साक्ष्य :
सत्य प्रकाश हिंदवान
34. मुक्ति :
रमाकांत
36. उस्ताद वंदे अली खान :
राजकुमार गौतम
38. यह कैसा प्रतिरोध :
दीप चंद्रा
42. सावन के अंधे :
बलबीर त्यागी
50. चोर :
हरित बंधु
58. ज्ञान की परीक्षा :
बलबीर सिंह
62. टेलीफोन की अर्जी :
सुखबीर
67. गजल :
सुखबीर विश्वकर्मा


## अन्य आकर्षण


6. आपकी बात
7. उल्लेखनीय
9. आपनी बात
55. कथा दर्शन :
सुधीश पचौरी
69. धारा के विरुद्ध :
राजेंद्र राव
73. कृतियां :
नरेंद्र मोहन,
रमेश उपाध्याय
76. नयी पौध
76. सारिका कथा पहेली



संपादकीय कार्यालय :
10 दरियागंज,
नयी दिल्ली-110002
दूरभाष : 271911

विज्ञापन व प्रसार
7, बहादुरशाह जफर मार्ग
नयी दिल्ली-110002
दूरभाष : 3312277

अन्य कार्यालय

डा. दादाभाई नौरोजी मार्ग
बंबई-400 0001

फ्रेजर रोड, पटना

अनुपम चैंबर्स, टोंक रोड
जयपुर

139 आश्रम रोड
अहमदाबाद-1

13-1-2 गवर्नमेंट प्लेस ईस्ट
कलकत्ता-700062

''गंगा गृह'' तीसरी मंजिल
6-डी, नंगामवक्कम हाई रोड
मद्रास-600034

48, महात्मा गांधी रोड,
बंगलूर

407-1, तीरथभवन, क्वार्टर गेट,
पुणे-411 002

326, स्टेशन एप्रोच, सडबरी
वैंबले मिडिलसेक्स, लंदन यू. के.


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# आपकी बात

## कलेजा मुंह को आ गया

सुभाष पंत की कहानी 'म्यान से निकली तलवार' क्षेत्रवाद और जातिवाद के आधार पर हिंसा का चिराग जलाने वालों पर जोरदार प्रहार है. कहानी में वर्णित विकृत विचारधाराएं ही मानवता की जड़ कुतरकर सामाजिक अव्यवस्था और अविश्वास के स्वाभाविक वातावरण का निर्माण करती हैं. कुछ स्वघोषित बुद्धिजीवी 'रमजानी की हत्या' जैसी प्रतिक्रियां कर अपने को वातावरण के प्रति पूर्ण सजग महसूस करते हैं.

मधुकर सिंह की 'सपने के गलियारे में आग' सच के बहुत करीब है. दरअसल ऐसा लगता है मानो व्यवस्था के सुधार के रास्ते ही बंद कर दिए हैं. भगवतीशरण मिश्र की कहानी 'किससे कहें?' पढ़कर कलेजा मुंह को आ जाता है. क्या यह रचना विपत्ति में हमें एक दूसरे को सहायता करने की सीख दे सकती है? या इससे 'बाढ़ के समय आश्रित परिवारवालों' जैसे लोग सीख लेना चाहेंगे. अन्य सभी रचनाएं भी बहुत अच्छी लगीं.

● दिवाकर झा. देवधर. बिहार

## याद आती रही नीरजा

'कथा उत्सव अंक: एक' से जितनी निराशा हाथ लगी थी अंक दो से उतनी ही नयी उम्मीद बनी, नयी आशाएं जागृत हुई. कहने की जरूरत नहीं कि यह अंक अपने आप में एक महान उपलब्धि है. बड़े पैमाने पर हो रहे राजनीतिक अत्याचार ही आज जग जाहिर है और न जाने कितनी कहानियों में लिखे जा चुके हैं, लिखे जा रहे हैं मगर निम्न स्तर पर 'शर्माओं' (आम जनता) को किस तरह राजनीति का कूड़ा ढोना पड़ रहा है, इसका लाजवाब चित्र 'दो अक्तूबर उन्नीस सौ...' (राजेंद्र राव) में बन पड़ा है. मेनहॉल (राजनीति) से गंदगी (भ्रष्टाचार) निकालने के लिए जो एक कसक जनता में नये सिरे से जन्म ले रही है, उसे बड़े ही कायदे से राव जी ने रखकर 'आम वर्ग' पर अपनी पकड़ तीव्र होने का पुख्ता प्रमाण दिया है.

इसके बाद तीन कहानियां लगभग एक स्तर की हैं जो अपनी उपस्थिति का आभास दिलाती हैं—'मुआवजा' (चित्रा मुद्गल), 'मजदूर' (भैरव प्रसाद गुप्त), 'बच्चे' (प्रियंवद). 'मुआवजा' निसंदेह चित्राजी की महान उपलब्धि है. लेकिन इसे पढ़ते हुए लगातार 'नीरजा' की याद आती रही. कहानी में वर्णित अनेक स्थितियां नीरजा के जीवन वृत्त से हू-ब-हू मिलती हैं. कहीं उसी की कहानी तो नहीं! पूंजीपति वर्ग के पुत्रों की मानसिकता में जिस तरह मजदूरों, गरीबों के प्रति घृणा, कट्टरता का समावेश हो रहा है इसके बारीक विश्लेषण में गुंप्तजी अत्यंत सफल रहे हैं. कहानी की संक्षिप्तता प्रभावोत्पादक रही है. इसी तरह सशक्तता से वर्णित कहानी 'बच्चे' ने बच्चों की मानसिकता का कच्चा चिट्ठा प्रस्तुत किया

## प्रथम पुरस्कृत पत्र

### 'खामोशी' और 'मुआवजा' में अंतर

'सारिका' का 'कथा उत्सव अंक-2' पढ़ा जिसमें वरिष्ठ पीढ़ी के कथाकारों ने कहानी की यात्रा के प्रसंग में अपनी पीढ़ी के कृतित्व को उत्कर्ष कहा है और उसके बाद के पड़ावों को 'खद्योत सम'.

इसी अंक में चित्रा मुद्‌गल की कहानी 'मुआवजा' भी पढ़ने को मिली जिसने पिछले ही अंक में सारिका में छपी द्विजेंद्र नाथ मिश्र 'निगुर्ण' की कहानी 'खामोशी' की याद दिला दी. 'खामोशी' और 'मुआवजा' इन दोनों कहानियों को आमने-सामने रखते हुए मैं अपनी बात कहना चाहूंगा.

खामोशी के जरिये निर्गुण जी ने सामाजिक मान्यताओं की उस व्यवस्था को अनावृत किया है जिसकी स्वीकृति और वर्जनाएं भले ही बहुत लकदक सिद्धांतों से निकलती हुई प्रतीत हों, मूलत: लाभ हानि के गणित पर आधारित होती हैं. इस गणित के तहत, इस कहानी में, पारंपरिक परिवार की व्यवस्था में एक विवाहिता के विवाह पूर्व प्रेमी और प्रेम संबंधों को स्थापना मिल जाती है 'मुआवजा' के केंद्र में भी वही पारंपरिक परिवार है, उन्हीं वर्जनाओं, स्वीकृति, और गणित से लैस. इसमें भी उस विवाहिता के पति परिवार को, उसकी मौत के बाद उसकी उसी स्वच्छंदता का पुरस्कार और मुआवजा राशि मिलती है, जिस स्वच्छंद संज्ञा के तहत उसे पति परिवार द्वारा त्याग दिया गया था. इस कहानी में भी आर्थिक प्रलोभन का दबाव व्यवस्था पर कारगर होता दिखाया जाता है, जिसके कारण बरसों बाद दिवंगत विवाहिता का पति परिवार संबंध की परिभाषा जुटाता और मुआवजे की दावेदारी करता नजर आता है. अपनी-अपनी जमीन पर दोनों रचनाएं लगभग एक-सी स्थिति को छूती हैं. फिर भी इनकी रचनावृत्ति के कुछ मूलभूत अंतर हैं. 'खामोशी' कहानी की समूची सौंदर्य शक्ति उसकी संवेद्‌य अभिव्यक्ति में है और इसके बाहर रचना कहीं भी उस स्त्री को अपने निजी निर्णय में अस्तित्वमान नहीं होने देती, जिसके चारों ओर व्यवस्था को अपना जाल बुनने की सुविधा प्राप्त है, रचना के कलेवर से ऐसा लगता है कि रचनाकार को स्वयं उस स्त्री को खामोशी में, उसके सब कुछ सहते चले जाने में एक सौंदर्य नजर आया है जिस के लिये वह उस स्त्री का यूं यातना से गुजरते जाना स्वीकार करता चलता है. शायद यही सौंदर्य रचना का अभीष्ट भी है.

मैं समझता हूं कि सौंदर्य का यह मूल-तत्व केवल मिश्रजी की रचना का निजी अवयव नहीं हैं, बल्कि उनकी पीढ़ी के सोच का मानदंड है, वरना इतना निर्मम अंत देने की बजाय निगुर्णजी नायिका को यह हक देते कि वह अपने उस प्रेमी की मौत पर अधिकार पूर्वक रो सकती, जिसके पैसे को उसके परिवार ने विचारपूर्वक एक सिद्धांत देकर स्वीकार कर लिया है. लेकिन वह एक लड़ाई की स्थिति होती जिसमें स्त्री बहरहाल परिवार की व्यवस्था को मात देती नजर आती. सो, इस कहानी में वह होती कैसे?

व्यवस्थाा से वह लड़ाई 'मुआवजा' में है. पहले मोर्चे पर अपनी निजी स्वतंत्रता बनाए रखने के लिये एयर होस्टेस पति परिवार से अलग होकर उनके दोहरे मानदंडों को चुनौती देती है. और दूसरे मोर्चे पर नजर आता है उसका पिता परिवार. उनकी यह लडाई नितांत सैद्धांतिक और निष्प्रलोभन है. यह सात्विक-सी चुनौती कि वह अब अपनी दिवंगत बेटी के पति परिवार को केवल आर्थिक लाभ के लिये, सहजतापूर्वक संबंध में लौटने की सुविधा नहीं जुटाने देंगे. और इस तरह वह व्यवस्था को यह एहसास करायेंगे कि उसका गिरगिटपन कभी कठिन भी हो सकता है.

चित्राजी की कहानी की यह युयुत्सा वस्तुत: शोषण चक्र में पिस रही स्त्री वर्ग को ताकत और निगाह देने का एक प्रयोजन है और इसलिये यह ''बस, यूं ही खाली मूली...'' नहीं वरन् रचनात्मक कृति है.

मैं विनम्रता पूर्वक कहना चाहता हूं कि 'खामोशी' और 'मुआवजा' का अंतर महज दो कहानियों का अंतर नहीं, वरन् मील के दो पत्थरों के बीच की दूरी का आंकड़ा है. चित्राजी मेरी पीढ़ी की कहानीकार हैं. और इस पीढ़ी के सामने उसके आदमी के सुख-दुख से मूल सरोकार आइने की तरह साफ हैं. वह दर्द की तड़प रचकर उसमें खूबसूरती नहीं ढूंढती, बल्कि दर्द के कारण ढूंढती हैं और उन कारणों का संधान करती हैं. इस नाते उसकी रचना की जमीन उतनी ही ठोस है जितनी पैर तले की असली जमीन. असली जमीन. जाहिर है यह संकेत अग्रगामी है.

● अशोक गुप्ता. फरीदाबाद



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है. प्रियंवद ने अपनी लेखन शैली के अनुरूप कथानक का ताना-बाना इस तरह बुना है कि वे लेखकों की 'भीड़' से अलग खड़े दिखते हैं. बधाई.

'अपने लिए' (रामदरश मिश्र) कहानी में कोई नयापन नहीं है लेकिन इसकी बुनावट इतनी सशक्त है कि पाठकों को सोचने के लिए मजबूर कर देती है. प्रस्तुत कहानी यह भी स्पष्ट करती है कि सीमित शब्दों से कहानी की संप्रेषणीयता में किस तरह वृद्धि होती है. अन्यथा आज ऐसे विषय पर लंबी-लंबी मगर ऊबाऊ कहानियां ही पढ़ने को मिलती हैं. रामेश्वर शुक्ल अंचल जिस तरह की कहानियों को अपनी कलम से परिचय प्रदान करते हैं, 'मलंगबुआ' उसके इतर नहीं है. 'किससे कहें' (भगवतीशरण मिश्र) कहानी आज की स्वार्थवादिता का खुलासा करती है. आज के व्यक्तिवादी हो रहे समाज की परिणति इस रूप में हो सकती है, इसे सभी महसूस करते हैं, समझते हैं मगर एक अजीब-सा उदासीपन इस स्थिति को भयानक ही बनाता जा रहा है. क्या आगे एक मानव दूसरे की मानवता को आंकने का प्रयास करना ही छोड़ देंगे.

'सपने के...' (मधुकर सिंह) एवं 'अग्निराग' (शैवाल) तमाम संभावनाओं के बावजूद प्रभावित करने में असफल रहीं. जरूरत है 'नरेश बाबू' जैसे पात्रों को ग्रामीण परिवेश में आंकने के लिए नये संदर्भ खोजने की. शैवाल आजकल कहानी कम शब्दजाल अधिक बुनते दीख रहे हैं. 'म्यान से...' (सुभाष पंत) की नींव अविश्वसनीय प्रतीत होती है. मुद्राराक्षस की 'कटोरी देवी' विस्तार से ग्रसित, एक सोची-समझी योजना के तहत लिखी हुई प्रतीत होती है. जिससे कहानी अपनी मौलिकता खो देती है एवं एक सूत्रबद्धता में पाठक के साथ कहानी इस प्रकार चलती है जैसे उसकी बागडोर लेखक के पास हो न कि कहानी के पात्र अथवा घटना के पास.

परिचर्चा रोचक रही. 'हिंदी कहानी के सौ वर्ष' में कृष्णदत्त पालीवाल ने जिस निर्भीकता से कहानी एवं कहानीकारों की बखिया उधेड़कर सार्थक समीक्षा की तलाश की है वह स्तुत्य है. समीक्षक ने कहानी के वर्तमान बहाव को सही आंका है.

इवान तुर्गनेव की लघुकथा 'भिखारी' काफी समृद्ध है. प्रस्तुति के लिए भूपेश जी को साधुवाद.

एक अनुरोध है, कृपया स्तंभों को यथाशीघ्र प्रकाशन रूप प्रदान करें. व्यंग्य का अभाव बेहद खलता है. कुल मिलाकर इस अंक के लिए आपने जो परिश्रम किया है, इसे भुलाया जाना असंभव है. संपादकीय परिवार को बधाई एवं साधुवाद.

● मृत्युंजय कुमार सिंह 'मुन्ना', पो. महेंद्रू पटना

### मुखपृष्ठ

पिछले अंक के मुखपृष्ठ पर प्रकाशित 'पारदर्शी' के छायाकार हैं फाल.एस. गिराटा.

उल्लेखनीय

# लेखक-निर्देशक की सीमा रेखा

तुलनात्मक रूप से बंगाली, मराठी और मलयालम के मुकाबले हिंदी की साहित्यिक कृतियों पर आधारित कम फिल्में ही बनी हैं. परंतु पिछले कुछ वर्षों से टेलीवजन सीरियलों के प्रचलन तथा फार्मूला फिल्मों की असफलता के कारण कई फिल्मकार अब साहित्यकारों के पास उनके उपन्यासों या कहानियों के अधिकार लेने भी आने लगे हैं.

कापीराइट एक्ट की धारा ५७ के अनुसार किसी कृति के रचयिता होने का दावा तो लेखक का है ही, इसके साथ-साथ (अ) कथित रचना में कोई विकृति, क्षति या अन्य परिवर्तन उपस्थित करने पर या (ब) उक्त रचना के संदर्भ में किसी ऐसे व्यवहार की दशा में, जो लेखक की मान-प्रतिष्ठा पर आंच लगने का कारण हो, प्रतिबंध लगाने या हरजाने का दावा करने का अधिकार भी लेखक का है.

अब इसी कापीराइट की धारा ५७ तथा ६२ के अंतर्गत प्रसिद्ध उपन्यासकार योगेश गुप्त ने 'अंतहीन' फिल्म के निर्देशक दिनेश लखनपाल और अन्यों के विरुद्ध दिल्ली की जिला अदालत में याचिका प्रस्तुत की हैं. योगेश गुप्त के वकील श्री अरविंद जैन के अनुसार फिल्मकार ने न केवल श्री गुप्त के उपन्यास 'उनका फैसला' के साथ न्याय नहीं किया है बल्कि फिल्मकार उपन्यास के पात्रों के अंतर्संबंधों को समझने में भी असमर्थ रहा है और उसने उपन्यास के अंत को उलट-पलट दिया है.

योगेश गुप्त हिंदी के सुपरिचित साहित्यकार हैं. उनके अब तक हिंदी में ग्यारह उपन्यास और चार कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं. तथा दो कहानी संग्रह अंग्रेजी में प्रकाशित हुए हैं. उन के उपन्यासों में 'उनका फैसला', 'उपसंहार', 'अनायास', 'अकारण' और 'अंधेरा और अंधेरे' विशेष चर्चित रहे हैं. 'उनका फैसला' पहली बार सन् १९७७ में प्रकाशित हुआ था. तब इस उपन्यास पर प्रसिद्ध आलोचक नामवर सिंह ने लिखा था, ''उनका फैसला' उस सामंती पूंजीवादी व्यवस्था के कायदे कानून पर एक करारी चोट है जो गरीब को आत्महत्या करने के लिए मजबूर करती है. यह उपन्यास निम्न मध्यवर्गीय कुंठा का मार्मिक दस्तावेज है. योगेश गुप्त की यह कथाकृति पढ़ने के लिए ही नहीं बल्कि सोचने के लिए भी विवश करती है.''

'उनका फैसला' के लेखक के अनुसार 'अंतहीन' फिल्म के अंत में यह दिखाया गया है कि नायक सुरेश की पत्नी आर्थिक स्थितियों से तंग आकर अपने तीन बच्चों के साथ आग लगाकर आत्महत्या कर लेती है और नायक को उसके लिए फांसी की सजा हो जाती है, जो कानून की दृष्टि से गलत है. इस तरह फिल्म का यह अंत कानून का मजाक उड़ाने वाला बन गया है और इस अंत का उपन्यास से कोई साम्य नहीं है, क्योंकि उपन्यास में तो नायक पर अपनी पत्नी और बच्चे की हत्या का आरोप लगाया जाता है और इसी की सजा उसे मृत्युदंड के रूप में मिलती है. नायक इस सजा को केवल इसलिए स्वीकार करता है क्योंकि वह उन आत्महत्याओं के लिए स्वयं को नैतिक रूप से दोषी मानता है.

योगेश गुप्त के अनुसार सन् १९८२ में दिनेश लखनपाल ने इस उपन्यास पर फिल्म बनाने की इच्छा प्रकट की और लेखक से उपन्यास के फिल्मीकरण के अधिकार देने का अनुरोध किया. योगेश गुप्त द्वारा अनुमति देने के बाद दिल्ली में मार्च अप्रैल १९८४ में इस फिल्म की शूटिंग हुई.

परंतु लेखक और फिल्मकार के बीच पैसे के लेन-देन संबंधी करार तेरह मई १९८६ को हो पाया. इस करार में योगेश गुप्त को पच्चीस हजार रुपये देने का वादा किया गया है परंतु अब तक उन्हें केवल दो हजार पांच सौ रुपये ही दिये हैं.

अब 'अंतहीन' फिल्म के वीडियो अधिकार भी बेच दिये गये हैं और ये वीडियो कैसेट बाजार में उपलब्ध हैं. 'अंतहीन' फिल्म के वीडियो कैसेट के कवर पर तथा प्रचार-पोस्टरों में, कहीं भी यह उल्लेख नहीं किया गया है कि यह फिल्म योगेश गुप्त के उपन्यास 'उनका फैसला' पर आधारित है. योगेश गुप्त का कहना है कि इस तरह से उन के नाम का उल्लेख न होने पर उनकी प्रतिष्ठा को आघात लगा है. उन्होंने अपने रिश्तेदारों और मित्रों से कहा था कि फिल्म 'अंतहीन' उनके उपन्यास पर आधारित है. परंतु कैसेट के कवर पर नाम न होने के कारण लोग उन्हें झूठा ठहरा रहे हैं. कैसेट के कवर पर दी सूचनाओं से तो यही भान होता है कि इस फिल्म के लेखक और निर्देशक दिनेश लखनपाल ही हैं.

इन्हीं सब तथ्यों को आधार बनाकर योगेश गुप्त के वकील श्री अरविंद जैन ने अदालत से 'अंतहीन' फिल्म के प्रदर्शन पर रोक लगाने की प्रार्थना की है.

मुकदमे की पहली सुनवाई २२ दिसंबर, १९८७ को हुई. इसमें एडीशनल सेशन्स जज श्री एस. एम. अग्रवाल ने अगली तारीख १४ जनवरी, १९८८ तक के लिए फिल्म की रीलीज और टेलीकास्ट पर रोक लगा दी है और फाल्कन वीडियो सर्विसेज को आदेश दिया है कि वे यह हिसाब दें कि वह अब तक कितने कैसेट्स बेच चुके हैं.

**मनमोहन चड्ढा**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


# न्यूनतम समय में अपना धन दुगुना करें

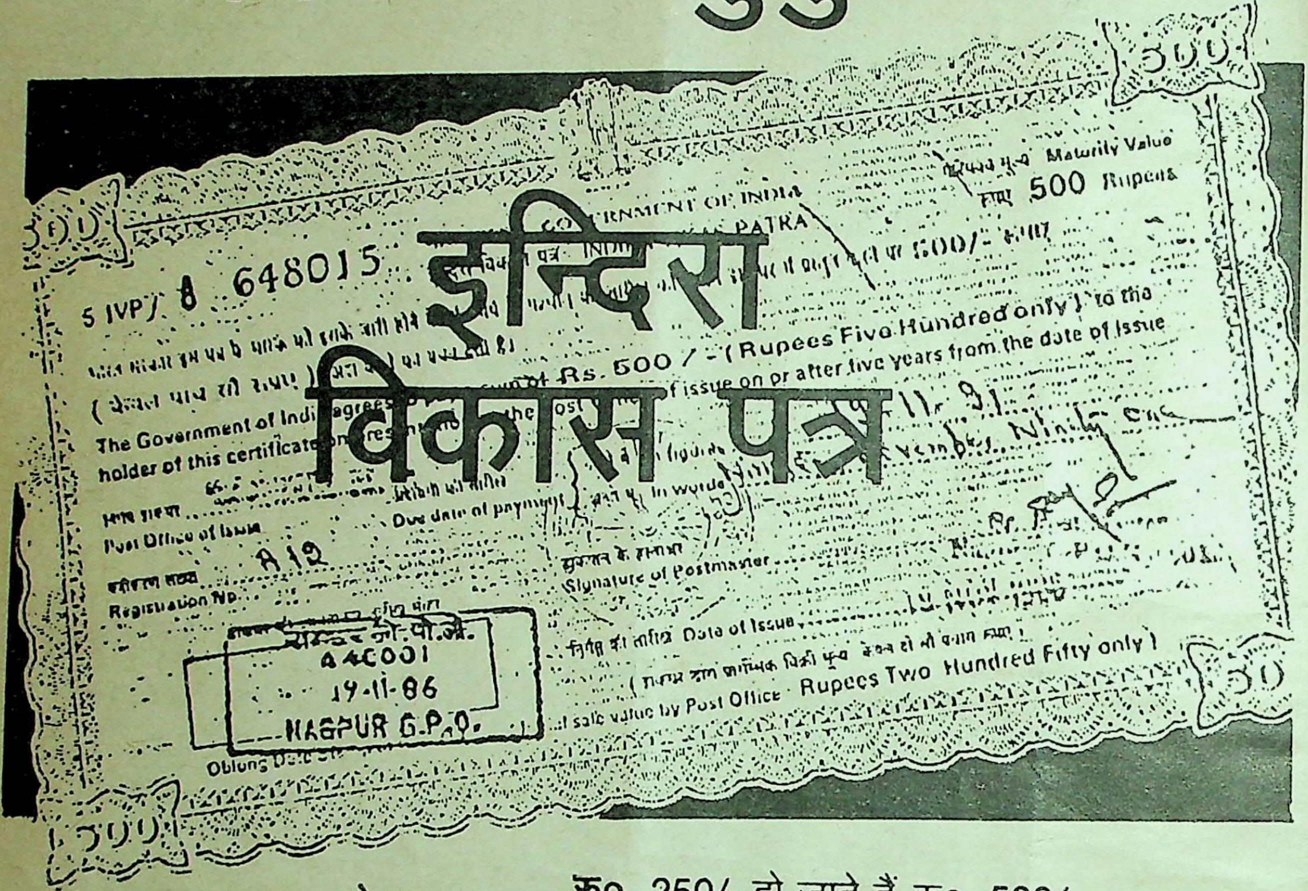


**केवल 5½ वर्ष में**

रु० 250/- हो जाते हैं रु० 500/-
रु० 500/- हो जाते हैं रु० 1,000/-
रु० 2,500/- हो जाते हैं रु० 5000/-

**विशेष आकर्षण**

- आवेदन पत्र की आवश्यकता नहीं
- अधिकतम सीमा नहीं
- जिसे चाहें, आप दे सकते हैं
- खराब हो जाने अथवा कट-फट जाने के स्थिति में दोबारा भी मिल सकते हैं

**ग्रामीण जनता तथा आयकर न देने वालों के लिए सबसे सुविधाजनक सरकारी बचत योजना**

**किसी भी डाकघर से खरीदें**

राष्ट्रीय बचत संगठन
भारत सरकार

davp 87/352


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## अपनी बात

# खिले हुए गुलाब और मुरझाए चेहरे...

आज स्थितियां ऐसी हो गयी हैं कि सामान्य जन न किसी जन्म-दिन पर न नववर्ष के आगमन पर और न ही किसी उत्सव पर दिल में खुशियां महसूस कर पाता है. इस बार के नववर्ष पर भी हम खिले हुए गुलाब और मुरझाए चेहरे आने वाले 365 दिनों की ओर देख रहे हैं. यह स्थिति इस अंक के आवरण से ही स्पष्ट है बीते हुए वर्ष से ही सूखे का सिलसिला शुरू हुआ है और हम नहीं जानते कि इस वर्ष में कब तक चलेगा जहां अनिश्चय के साये घिरे हुए हों वहां खुशियों का इजहार हो भी कैसे सकता है और यदि होगा भी तो वह मुखौटा भर होगा. मंहगाई के बोझ से दबा घुटा आदमी उत्सव नहीं मना पाता.

बीते हुए वर्ष ने सामान्य जन की जिंदगी को जितना त्रासद बनाया है उससे कई गुना अधिक त्रासदियां साहित्य जगत में भर दी हैं. 1987 ने कई यशस्वी और मूर्धन्य रचनाकारों को हमसे छीन लिया है. पिछले लगभग पांच दशकों से हिंदी कविता को लगातार प्रभावित किये रहने वाले और हिंदी उपन्यास लेखन पर अनेक प्रश्न चिन्ह और विवाद खड़े करने वाले नई शैली के सृष्टा अज्ञेयजी पार्थिव रूप में हमारे बीच से हमेशा के लिए चले गये. छायावादी युग की गरिमामयी धरोहर महादेवी जी यशःशेष हो गयी. अपने आपको गंवई मानने वाले और अपने नाटकों, उपन्यासों तथा कहानियों में माटी की सौंधी गंध बिखेरते रहने वाले रचनाकार डा. लक्ष्मीनारायण लाल की निश्छल मुस्कान अब कभी नजर नहीं आयेगी. तेज तर्रार पत्रकार जिनकी पहचान ब्लिट्ज के लास्ट पेज के रूप में बन गयी थी और जिन्होंने भारतीय कहानी और भारतीय सिनेमा को वर्षों तक प्रभावित किये रखा वह ख्वाजा अहमद अब्बास भी अब हमारे बीच नहीं रहे. इसी तरह फिक्र तौंसवी, लक्ष्मीनारायण मिश्र,देवराज दिनेश, आदवन सुंदरम. डी.आर.मनकेकर, पुरुषोत्तम प्रतीक और कमर मुरादाबादी आदि छोटे-बड़े कई रचनाकार हमसे छिन गये.

1987 में प्रकाशन जगत से जुड़ी कीमतों और पाठकों के अंतर्संबंधों पर भी प्रश्न चिन्ह लगे हैं. लगभग हर वर्ष पुस्तक मेले आयोजित किये जाते हैं लेकिन उन मेलों में आने वालों और खरीदने वालों की संख्या का अनुपात क्या रहता है? यह एक विचारणीय सवाल है. इस सवाल के ही तहत दूसरे सवाल भी हमारे सामने खड़े हो जाते हैं. यदि पुस्तक मेलों से पहले या मेलों को दौरान उन सवालों पर विचार कर लिया जाए और कोई हल निकालने की प्रक्रिया शुरू की जाए तो संभव है पुस्तकों की बिक्री के लिये सरकारी खरीद का मुंह न देखना पड़े. सबसे बड़ा और अहम सवाल पाठकों की गिरती हुई संख्या का है. कमोबेश इसी से जुड़े हुए सवाल हैं- लिखे शब्द के प्रति अनास्था और अरुचि.यह स्थिति कब और कैसे पैदा हुई, इसके पीछे कौन से तत्व काम कर रहे थे, या कर रहे हैं. उनसे कैसे बचा या जूझा जा सकता है? इन्हीं से जुड़ा एक सवाल और भी उठता है और वह है–ऐसे मेलों की उपयोगिता और उपादेयता. इस वर्ष के मेले के संबंध में सूखे की स्थिति देखते हुए यह सवाल और भी जरूरी हो जाता है. ये मेले प्रकाशकों और एन.बी.टी. के लिये किसी अंश तक भले ही उपयोगी हों लेकिन पाठकों से इसका क्या संबंध बन पाता है.

इन मेलों की सार्थकता और उपयोगिता तभी बन सकती है, जब इनका आयोजन करने वाली संस्था एन.बी.टी. की कोई सार्थकता पाठकों की दृष्टि में बने. अभी स्थिति तो यह है, कि आम पाठक यह तक नहीं जानता कि एन.बी.टी. नाम की कोई चिड़िया होती भी है. और वह कौन से जंगलों में पाई जाती है. सच्चाई तो यह है, कि एन.बी.टी. ने सरकारी बाग की हरी घास चरने के अलावा प्रकाशन जगत में कोई सार्थक भूमिका नहीं निभायी है. जबकि यह संस्था ईमानदारी, लगन और मेहनत से कुछ करे तो बहुत बड़ी और सार्थक भूमिका निभा सकती है. नये और अनुभवी निदेशक से हम नयी और सार्थक शुरूआत की आशा कर सकते हैं. और इसीलिये हम चाहते हैं, कि इस मेले से पहले ही बहुत-सी स्थितियां स्पष्ट हो जाएं और बहुत से सवालों के जवाब भी मिल जाएं. इस संबंध में 'सारिका' अपने अगले अंक से कुछ और भी पहल करेगी.

हमने इस उपहार अंक से तीन नये नितांत रूप से पाठकों के स्तंभ शुरू किये हैं. हालांकि ये स्तंभ सारिका में पहले भी रहे हैं, लेकिन इस बार से इनकी नयी ही शुरूआत मानी जा सकती है. ये स्तंभ हैं 'नई पौद', 'नए हस्ताक्षर' और 'सारिका कथा पहेली' अगले अंक में हम तीन और स्तंभों की शुरूआत कर रहे हैं. वे होंगे-'बोलती तस्वीर', 'अनजानी प्रेम कथाएं', और 'सारिका कहानी मंच' से... 'नवांकुर'. हमें विश्वास है, कि ये नये स्तंभ सारिका में पाठकों की रचनात्मक हिस्सेदारी बढ़ाएंगे और वे इन्हें पसंद भी करेंगे. □

अ. भा. दुबल...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

**जन्म : 25 जनवरी, 1961**
**संप्रति : दूर-संचार अभियंता**
**संपर्क : 240 डी, अरुण लॉज, दक्षिण धाद्का, आसनसोल-713302**
**सारिका में यह पहली कहानी**

**सृंजय**

# भगदत्त का हाथी

सदानंद पंडित ने समय का अनुमान लगाया....सूरज देवता कोनसिया घर के मुंडेर पर ताड़ भर ऊंचा रह गये थे. नींम की छाया पूरबी चरन तक सरक आयी थी. "अढ़ाई से ऊपर हो गया जजमान! बारात तो छिनेगांव से बारह-साढ़े बारह बजे ही निकल पड़ी होगी. इमलिया घाट पर उनका पड़ाव भी डल चुका होगा." मानो वे संजय की तरह दूर बैठे-बैठे सारे दृश्य देख रहे हों, "अब इधर भी बिनौकी मंगवाने की तैयारी होनी चाहिए, उधोसिंह जी! मेहरारूओं से कह दें कि यहां का लोकाचार जल्द फरिया लें. इमलिया घाट कोई लंका कोस नहीं जो आने में देर लगे. छव बजते न बजते बारात जनवासे पर आ लगेगी."

उद्धव सिंह ने कुम्हारिन के माथे से भरुका का खांचा शीघ्रता से उतरवाते हुए बड़े लड़के से कहा, "रामजवाहिर! ई चीज-बस्त का हिसाब-किताब बाद में. माई के पास जाके कहो कि पंडिज्जी बिनौकी मंगवाने के लिए हुकुम दे रहे हैं."

रामजवाहिर गांव-जवार से इम्दाद में आये खाट-खटोले, चादर-तोशक पर 'कठपिनसिन' से निशान लगाकर लिस्ट बना रहा था. उसने 'कठपिनसिन' कान पर खोंसी और कापी कांख से दबाते हुए भीतर चला गया. औरतें पहले से ही तैयार थीं. रासमणि को पियरी साड़ी पहनायी गयी, सिंदूर और काजल की एक के बाद एक खिची सात लकीरों वाली पीली पट्टी ललाट पर चिपकायी गयी. उसने मुंह में सुपारी रखी, एक हाथ में कजरौटा और दूसरे हाथ में खोइया फैलाया. उद्धव बहू ने बेटी के घुटने और कुहनी पर हल्दी लगाते हुए ग्यारह रुपए व पांच लच्छे कच्चे-पीले सूत से खोइया भर दिया. रासमणि टोले-मुहल्ले की ओर बढ़ चली. उसके साथ-साथ औरतों का गिरोह झूमर गाते हुए चलने लगा :

**बाग में मिलSS ना, बगइया में मिलSS ना,**
**कब होइहें मिलनवा मेरो रे गुंइया...**

रासमणि का दिल बाग-बाग हो रहा था. झूमर के प्रत्येक बोल के साथ जैसे वह अपने 'गुंइया' से अभिसार करने लगी हो और कितना ही मिलने के बावजूद प्रीत की गगरी भरने से बाकी रह जा रही हो. हाय, प्रीत तो वही....बार-बार जिसे पाकर भी मन न अघाय, हृदय का कलश छलक-छलक कर खाली ही रह जाय. न जाने कैसे होंगे वह? सदानंद पंडित और बाबूजी के बीच वर और घर से संबंधित बातचीत को वह किवाड़ों की ओट होकर कितने चाव से सुनती थी. पंडितजी जैसे रूप-गुण का बखान करते वह तो रासमणि की कल्पनाओं से मेल ही खाता था. उमर तनिक ज्यादा है तो क्या हुआ? अपनी कौन कम है. चौबीस की तो इस माघ में हो गयी. बाप रे, गांव-गंवई में चौबीस बरस की धिया कुंवारी रह जाये. कितने तो ताने सुनने पड़ते थे रासमणि को. सखी-सहेलर भी हमदर्दी के बचन बोलते व्यंग्य-बाण छोड़ जातीं. दादी तो उठते-सुनते पचास गंडे बातों से परिछावन करती रहती. अपने जाने रासमणि ने किसी पखेरू तक का रोयां न दुखाया, किसी काम से 'ना' नहीं कहा, लेकिन थोड़े परिश्रम के बाद ही सीने में धड़का होने लगता. दम फूल-फूल जाता. बाबूजी ने ओझा-गुणी, बैद-हकीम किसी को नहीं छोड़ा, फिर भी वह आये दिन बेहोश हो जाती. सदर अस्पताल के डाक्टर से दिखाया गया तब कहीं जाकर असल रोग का पता चला. कैसे तो उसने बताया था, कलेजे में चार-चार ठो कबजा रहता है, जिसमें से दो ठो जाम हो गया है और यह दो बार लंबा बेहोश हो चुकी है, यदि तीसरी बार हुई तो बचेगी नहीं. डाक्टर ने कड़ा काम करने से साफ मना कर दिया था, लेकिन उसे क्या पता कि खेती-बाड़ी वाले घर में कोई लड़की का 'सिरजना' लेकर आये और कान न करे. उसकी दवाई चलती रही

..."मरजाद की रक्षा हर हाल में होनी चाहिए...बेटे वालों के पास जो गया वह लौटने से तो रहा..." कैसी है यह मरजाद रक्षा, जिसके प्रश्न पर गांव वालों में अनोखी एकता पैदा हो गयी...? युवा-कथाकार की "सारिका" में पहली कहानी

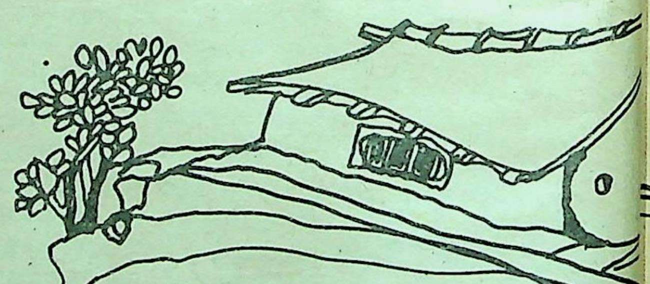



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और उसी के साथ चंद्रलोचन गुनिया के बताए अनुसार वह और बाबूजी केतु ग्रह का जाप भी करते रहे. उनमें से ही किसी का अकबाल कि पिछले कुछ सालों से ठीक चली आ रही है. वैसे हलका-फुलका काम भी करने से धड़का तो होता है, लेकिन तीसरी बेहोशी नहीं हो पायी, अन्न भी लगने लगा, देह बहाल हो आयी. घर के लोग जान चले थे, रासमणि आज नहीं तो कल मर जायेगी. यही सोचकर बाबूजी उसका विवाह नहीं करना चाहते थे, लेकिन वह तो मरजिया हो गयी...मर-मर के जी उठनेवाली. विवाह की कहीं 'साइत' बैठती भी तो जलनेवाले मोखालिफ लगी-लगायी काट देते अथवा कौन जाने...उसका नसीब ही बांक हो उठता! बाबूजी ने हार-थक कर बात चलानी छोड़ दी. इस पर भी चैन कहां?

लोगों के ऊंच-नीच समझाने पर, मां के उकसाने पर बाबूजी सदानंद पंडित की शरण में गये. अंततः उन्होंने उबार लिया. कहते हैं, पंडितजी यदि चाहें तो खाट-पलंग का आपस में कोहबर रच जाये, वह तो मानुष ठहरी. छिनेगांव के एक लड़के से बात पक्की ठहरी. रासमणि के सोये भाग जगे, ढीली लगन चरचरायी. लेकिन एक बात पर उसकी बुद्धि खौल उठती है....हाथ इतनी सकेत रहते हुए भी बाबूजी को पैंतीस हजार तिलक में चढ़ाने पड़े. दक्खिनभर वाले नाभ खेत पर स्याही पोतनी पड़ी. उस दिन बाबूजी कितना डहंके थे, बेटी के कारण महतारी जैसी भूमि से दगा करना पड़ा. लेकिन करें भी क्या? दबाव ही ऐसा था कि अधेला-पाई भर भी कम हुआ तो तुम जानो तुम्हारा काम जाने.

वह अपने अतीत की नींव पर भविष्य का महल तामीर करती हुई एक घर से दूसरे घर की ओर बढ़ी जा रही थी. गांव की दादी, चाची और लजौहीं भौजाइयां खोइचा भर देतीं और वह आगे बढ़ जाती. सब की सब आंखें मूंदकर असीसतीं कि भगवान ने जैसे इसके दिन लौटाये वैसे आगे भी निबाहें. सुमेसर बो भौजी के घर के नजदीक आते-आते अचानक रासमणि को लगा कि छाती में हिलकोर उठा है. तेज लुतकी के जलने जैसी चिलक हुई बायीं तरफ. उसने समझा शायद दिन भर के उपवास के कारण ऐसा हुआ है. कुछेक डग आगे बढ़ी तो गला सूखता-सा लगा. वह मां के कान में फुसफुसायी, ''माई रे, कसैली मुंह से निकाल दूं?''

''ना, ऐसा ना करना,'' मां घबरायी, ''बस थोड़ी देर की बात है.''

वह चुप लगा गयी. तब तक सुमेसर बो भौजी ने अंकवार भेंट कर बिनौकी दी और वह लड़खड़ाते कदमों से आगे बढ़ी. तेज प्यास महसूस हुई तो उसने मां को फिर बताया.

''इतनी तेज धूप है.'' मां ने दुलार से समझाया, ''धमायी हुई हो, बुचिया! गटागट पानी पीने से लग जायेगा. बस दो-चार घर ही तो और रह गये हैं. घर चल के दही का शरबत पी लेना.'' मां ने उसके चेहरे पर चुहचुहाए पसीने को पोंछ दिया.

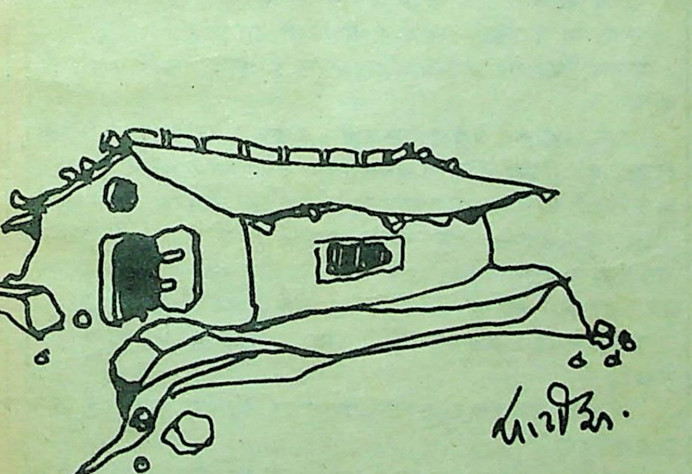

## नये हस्ताक्षर

**किसी भी उम्र और वर्ग के ऐसे रचनाकारों के लिए यह स्तंभ प्रारंभ किया जा रहा है जो स्तरीय लेखन के बावजूद अब तक किसी बड़ी पत्रिका में प्रकाशित नहीं हो सके हैं.**

इनसे बेखबर साथ की औरतों का उछलना, कूदना और गाना जारी था. गीत-गवनई की मस्ती में वे कभी झूमर, सोहर तो कभी मांगलिक गाली उठा लेतीं. सुनरी भाटिन ने एक नया ही गीत छेड़ दिया :

रासमणि को बर्दाश्त करना कठिन लगने लगा, जैसे वह एक बहुत बड़े पिंजरे में घिर गयी हो, उसके सामने हरे नहीं, बल्कि चितकबरे सुग्गे उड़ने लगे, न जाने कैसी भयावह खबर देने को आतुर सुग्गे. जी घबराने-मिचलाने लगा, कपाट में कुम्हार के चाक जैसा कुछ घूमने लगा. वह गश खाकर बैठ गयी. मुंह में रखी सुपारी गुलेल की गोली की तरह 'फक' से निकल पड़ी. हाथ का कजरौटा दूर जा गिरा, खोइचा के रुपए और सूत के लच्छे धूल में जा मिले और उसकी आंखें भी सुपारी की तरह जमकर ठोस हो गयीं.

गीत अचानक थम गया, जैसे उफनते दूध पर पानी के छींटे पड़ गये हों. सब औरतें प्रश्नाकुल हो गयीं. किसी ने उसका सिर गोद में रखा, कोई आंचल से हवा देने लगी. थोड़ी देर बाद रासमणि ने जरा-सी पलकें खोलीं...दृष्टि सामने की छान पर अटक गयी...वहां कुछ नहीं था या क्या पता कुछ था भी. रासमणि ने अस्फुट स्वर में कुछ कहा भी, लेकिन वाक्य पूरा न हो पाया.

न जाने किस केतकी वन के अजगर का फुफकार आया और सब कुछ झांवर कर गया. बहिनी-भौजाइयां कटे रूख की भांति गिर पड़ीं. सदमे की बाढ़ सबकी जड़ों तले की मिट्टी बहा ले गयी. काल के आघात ने आखिर मानुष को ही कलंकी बनाया. सुनरी भाटिन जीभ काट-काटकर फुसफुसाने लगी, ''मैंने देखा है सुमेसर बो को अपनी चोली के पखुवा (बगल) से भभूत की पुड़िया निकालते हुए.''

''ई कलजिब्भी. मेरा रोंवा दागने लगी, रे दैया!'' सुमेसर बो भौजी रोने लगी.

''जाने दो. अपनी आंख से नहीं देखा तो तुमको कैसे कहूं?'' सफाई देते-देते उद्धव बहू की दांती लग गयी. अनुभवी सयानियों ने कजरौटे की डांटी से दांती छुड़ायी तो सावन की पुरवैया की तरह रूलाई हहराने लगी. सब छाती पीटकर हाय-हाय करने लगीं.

अभी-अभी जहां हंसी-खुशी की लहरें ठाठें मार रही थीं वहा चीख-पुकार का ज्वालामुखी फूट पड़ा. गांव भर के कलेजे पर फफोले उठ आये. अशुभ संवाद सुनकर दुश्मनों तक ने आहें भर लीं, हित-कुटुंब की तो बात ही और थी. उद्धव सिंह बार-बार मुंह में गमछा ठूंस लेते, लेकिन वियोग था कि हिचकी के रूप में निकल ही आता. खारे आंसुओं के अजस्र रिसाव से पपोटे जलने लगे: ''हाय रे दैव! किस जनम के पाप का फल मिला.'' वे विलाप कर उठे. मर्द एक तो रोते नहीं, मगर



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब वे अछुदाह होकर बिलखने लगे तो सुननेवाली का हिया चीथ गया.

हित मित्रों ने जी कड़ाकर उनको समझाना चाहा, "धीरज धरो, उधो भाई! यह मृत्युभुवन है. यहां किसी का वश नहीं चलता. जीवन और मृत्यु तो रात-दिन के समान हैं, एक के बाद दूसरे का चक्कर चलता ही रहता है."

"भाई हो, ऐसी असमय मौत पर तो..." उद्धव सिंह मर्माहत होकर बोले, लेकिन उनकी आवाज टूट गयी.

सदानंद पंडित बहुत उदास हो चले थे. कांपती आंवाज में कहा उन्होंने, उनकी माया के आगे जीव की एक नहीं चलती. जिस तरह मेघ बंजर और उपजाऊ का खयाल नहीं करता उसी तरह मृत्यु समय-असमय का ध्यान नहीं करती. हिरण्यकशिपु ने किसी भी समय न मरने का वरदान पाया था, लेकिन मृत्यु ने उनके लिए समय निकाल ही लिया." उन्होंने उद्धव सिंह को कंधों से पकड़ा और खाट पर बिठा दिया, "जजमान! जैसे हो उसे सहना पड़ेगा. बोझ या तो बरद पर पड़ता है या मरद पर. मरद की छाती सूखी इसीलिएं होती है कि वह माया का भार वहन कर सके. भगवान ने लुगाइयों की छाती में रस देकर यह भार सहने की क्षमता हर ली है. सो जब आप ही ऐसा करेंगे तो उन अबलाओं का क्या हाल होगा? उनका बल पुरुष होता है. आप धीरज धरें और घर की दुखियारियों को ढाढ़स बंधायें."

"मैं कमजोर हूं, महाराजजी!...मैं अभागा हूं....इतना कठकरेजी मैं नहीं बन सकता..." वे फफक कर रोने लगे, "यह भार कैसे सहूं?"

शोक किसी संक्रामक रोग की तरह सबको लपेट चुका था. लोग अभी पीड़ा की उत्ताल लहरों में गोते खा ही रहे थे कि प्रबल तूफान की तरह हांफते नन्हकू हज्जाम एक विचित्र संदेशा ले आये, "कुछ बाराती शामियाने के पासवाले पोखरे पर पहुंच गये हैं और कपड़े-लत्ते बदल रहे हैं."

"आहि दादा, अब क्या हो?" सांप के मुंह से किसी तरह छूट गये भयातुर लंगड़े मेंढक की तरह उद्धव सिंह तड़फड़ाने लगे, "ई कोइला लगा मुंह लेकर किधर भागूं, ए भाई?" उन्होंने सदानंद पंडित के पैरों पर अपना सिर पटक दिया. पंडितजी की ठेसाह छिगुनी भी कुचल गयी, लेकिन उन्होंने दर्द को चिरायते के घूंट की तरह पी लिया.

उद्धव सिंह ने हज्जाम को सुनाया, "नन्हकू, बारातियों से जाकर कह दो कि अब यहां क्या रखा है. आप लोग लौट जायें...जाओ भाई!"

हठात् रामजस काका उठे और दोनों बाहों को निषेध की मुद्रा में उठाते हुए कहने लगे, "ई का कहते हो, उधो? इस तरह बारात लौटाने का मतलब जानते हो?...जिन्नगी भर की बदनामी."

"हांSSS....बदनामी!" रामजस काका की बात पर सभी सोचने को बाध्य हुए, "जरूर बदनामी होगी, जब आ गये हैं तो जलपान वगैरह करवा दिया जाय."

"होनी को कौन टाल सकता है?...और हमारा दोष भी क्या है?" रामनरेश सिंह बोले, "लड़के का बाप आ जायें तो उनको सारी बातें समझा दी जायेंगी."

उद्धव सिंह मतिभ्रमों-सा चिल्लाने लगे, "अब तो खड़े-खड़े इज्जत चली जायेगी, मेरे पंचो! अब मैं क्या करूं? कोई मुझे अकिल सुझाए. समधी मुझे कोस-कोस कर मुआ देगा. जब ऐसी लड़की थी तो धोखा क्यों दिया?" वह औचट में खड़ा हुए तो ओसारे के पट्टडेहर से टकरा गये. कुछ पल के लिए आंखों के आगे अंधेरा छा गया.

"यह करम विपच्छ नहीं तो और क्या है!" रामनरेश सिंह ने दुख प्रकट किया, "आज तक इस गांव से किसी की बारात नहीं लौटी है...फ़ अSS...अ." उन्होंने अफसोस का एक लंबा निःश्वास छोड़ा, "हे दइब! ऐसा बेदिन किसी को मत करना."

"जब भगवान ने ही हमें हीन कर दिया तो क्या करें?" रामजस काका ने सिर ठोंक लिया, "ना तो किसकी मजाल थी जो यहां से बारात लौटा ले जाता."

उद्धव सिंह कुहर कर बोले, "काका हो! मैं पहिले ही कहता था कि रासमणि का विवाह करना ठीक नहीं...मुझे पता था, एक-न-एक दिन ऐसा होना है, लेकिन आप लोगों ने ही उकताकर, भोंक-भोंककर मुझे ऐसे फेर में डाल दिया."

"किसे पता था, भई, इस अनहोनी के बारे में?"

नन्हकू हज्जाम तभी से कुछ बोलना चाह रहे थे. रह-रहकर उनके होंठ हिल पडते थे, लेकिन वे हिचकवश चुप लगा जाते थे. रोकना मुश्किल जान पड़ा तो बोले, "रामनरेश भाई, बात न धरें तो कुछ मैं भी बोलूं?"

"कहो न, कौन रोकता है." आज्ञा रामजस काका ने दी.

नन्हकू सकपकाते-से बोले, "मेरा लड़का राज इनर कह रहा था कि उसके साहेब कि हां एक बार बरिआत आयी थी. इधर बरिआत आयी उधर लड़की अपने कौनो छैला-जार के साथ भाग गयी. दोनों शायद पहिले से ही आपस में लटपटाये हुए थे. बाकिर साहेब बड़ा चतुर था, उसने भनक न लगने दी और अपनी कुंवारी साली को उसी लड़के के साथ ब्याह दिया. आखिर ऊहो का करे? दहेज में 'इरिज-फिरिज' और न जाने का-का दे दिया था. बाद में खूब हो-हल्ला हुआ. बाकिर ऊ कहावत है न...भइल विवाह मोरा करबS का?"

"हूं ऊं ऊं..." नन्हकूकी बात पर एक ने सोचा तो सबने सोचना शुरू किया.

"बारात आ जाये तो दुआरे भी लग जाये." एक आवाज आयी.

"दुआरे?" उद्धव सिंह ने कहनेवाले की ओर अचकचा कर देखा, "झूठ-मूझ का दुआरे लगाकर क्या होगा, भाई?"

"खैर, अभी तो इस कुसंवाद को किसी तरह पता नहीं चलने देना है." रामनरेश सिंह ने चुप का इशारा होंठों पर उंगली रखकर किया तो सबके ऊपर सोच की एक अदीठी चादर-सी तन गयी.

"भला ऐसी बात छुप सकेगी?" कई शंकालु स्वर उभरे.

## दृष्टि सीमा

सुरेंद्र सुकुमार

परमात्मा ने मनुष्य को पृथ्वी पर भेजा और कहा, "संपूर्ण पृथ्वी तुम्हारे भोग के लिए है जाओ और आनंद करो." पृथ्वी पर आकर मनुष्य के मन में एक विचार उठा वो पुनः परमात्मा के पास गया बोला, "प्रभो मैं एक छोटी-सी वस्तु मांगना चाहता हूं" परमात्मा ने कहा, "सब कुछ तुम्हारा है फिर क्या मांगना चाहते हो?"

मनुष्य बोला, "प्रभो बातों से मत बहलाइए".

परमात्मा ने कहा, "व्यर्थ के झंझट में मत पड़ो."

मनुष्य जिद पर अड़ गया परमात्मा ने कहा, "नहीं मानते तो मांगो"

"प्रभो जहां तक मैं देख सकूं वहां तक जमीन पैरों से नाप कर लेना चाहता हूं" मनुष्य ने चालाक बनते हुए कहा. परमात्मा ने एक बार और सोचने को कहा पर मनुष्य नहीं माना. अंत में परमात्मा ने कहा, "तथास्तु!" तब से लगातार मनुष्य आंख की सीमा तक की जमीन नाप रहा है सीमा बढ़ती जाती है मनुष्य दौड़ रहा है, आनंद उससे बहुत दूर है. स्वामी जी ने गंभीर स्वर में यह तथ्य बताया.

चलते समय धनवान शिष्य ने पूछा, "स्वामी जी मेरे योग्य कोई सेवा?"

"हां गंगा के किनारे, भगवान का मंदिर बनवाना चाहता हूं कुछ दान दीजिए."

"स्वामी जी मंदिर बनवाकर भगवान को क्यों सीमा में बांध रहे हैं 'सबहि भूमि गोपाल की'" कह कर शिष्य ने अपनी राह पकड़ी□



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

''बिलकुल छुपेगी,'' सदानंद पंडित बहुत सहजता के साथ बोले, ''शास्त्रों में कहा गया है, जिस तरह काग अपने मैथुन कर्म को, बिलार अपनी विष्ठा को सबसे छुपा लेता है, उसी तरह बुद्धिमान मनुष्य को चाहिए कि वह बुरी मृत्यु की घटना को किसी के सामने उद्घाटित न करे.'' पंडितजी ने उद्धव सिंह को झकझोर कर सचेत किया, ''जजमान, रामनरेश जी बुद्धिमानी की बात कर रहे हैं. आप शांत मन से इस पर विचार कीजिए, फिर मुझसे कहिए. मैं सब संभाल लूंगा.'' उन्होंने अपनी लुटिया-डोर उनके आगे बढ़ायी, ''जाइए कुल्ला-कलाली कर आइए और इस दरद को छाछ की तरह पी जाइए.''

''पंडिज्जी,'' वे व्यथित हो गये, ''मेरी साध अधूरी रह गयी.'' उन्होंने मन का उत्ताप निकाला, ''मेरो मन कछु और है, करता के कछु और.''

''अरे भाई,'' पंडितजी ने हौसला बढ़ाया, ''समझिए तो कि आत्मा नहीं मरती, सिर्फ चोला बदलती है. आप भी इस रुआंसी सूरत को उतार कर उसी तरह प्रसन्न मन होइए, जिस तरह नागराज केंचुल उतारकर प्रमुदित हो जाते हैं.''

उद्धव सिंह कातर होकर बोले, ''आप लोग मुझसे क्या चाहते हैं? किस रास्ते पर ले जाना चाहते हैं मुझे?''

''रास्ता है.'' रामजस काका चट्टानी स्वर में बोले. वे तभी से नन्हकू हज्जाम और रामनरेश सिंह से गुपचुप सलाह-मशविरा कर रहे थे. ''रास्ते की झलक नन्हकू ने दे दी है. फरक इतना है कि अबकी शादी रासमणि की नहीं, किसी दूसरी की होगी, लेकिन बारात खाली नहीं लौटेगी....बोलिये पंडिज्जी!'' काका ने लोगों पर सरसरी निगाह डाली.

सभी आश्चर्य के मारे कुछ कदम पीछे हट गये, ''हं-कृ...आं...?''

अपनी बात का मोल लगते देखकर नन्हकू का चेहरा गर्वोन्नत हो गया. उद्धव सिंह अभी भी लोगों की ओर मर्माहत होकर देख रहे थे, ''यहां तो भर मुंह खून फैला है, काका! ऐसे में चुटकी बजाते शादी के लिए कौन लड़की तैयार होगी? इस हादसे को कैसे दबाया जायेगा? आखिर रासमणि के मरने की खबर मिलेगी ही.''

राम नरेश सिंह पूछ बैठे, ''काका, मैं तनिक शामियाने तक जाऊं?''

''जाओ, लेकिन अंडबंड कुछ बोलना मत.'' काका ने सिर हिलाया, फिर कुछ समझते हुए से बोले, ''एक काम करो, अकेले न जाकर दो-तीन आदमियों को साथ ले लो और वहां बारातियों को किसी तरह बझाए रखो. गांव के किसी बुतरू-बच्चे को पास मत फटकने देना.''

''यदि वे द्वाराचार वगैरह के लिए उकतायें, तो हम क्या जवाब देंगे?'' साथ जाने वाले में से एक ने पूछा. काका दुविधा में पड़ गये.

पंडितजी तनिक रुष्ट हुए, ''कहोगे क्या!'' फिर तुरंत ठंडा होकर उन्होंने ही उपाय निकाला, ''बहाना बना दोगे कि सीवान पर के इनार में हमारे ही पुरखे का एक सांड़ गिर गया है. अधिकांश लोग उसे निकालने चले गये हैं. उनके आते ही यहां विधि शुरू हो जायेगी.''

''अभी पूरी बारात आयी भी नहीं है. सबके आते-आते काफी देर लगेगी.'' नन्हकू ने बताया.

उद्धव सिंह बेचैनी में कभी खड़ा होते तो कभी बैठ जाते थे. चित्त को सामान्य करने में उन्हें कठिनाई हो रही थी. एक तरफ बेटी की मौत की पीड़ा और दूसरी तरफ गांव का पानी उतर जाने का अंदेशा...इन दोनों के बीच की रस्साकशी में वे झूलने को अभिशप्त थे. उन्हें कहीं कोई आधार नहीं मिलता था, जैसे कोई पतंग धागे से कटकर हिचकोले खाती हुई उड़ी जा रही हो, अचानक वह किसी बबूल के पेड़ पर जा गिरी हो और हवा के झोंके से उसमें कांटे बिंध जाते हों हर बार एक नयी चिंदी उखड़ जाती हो. उन्होंने फरियादी मुद्रा में कहा, ''जो काम होने जा रहा है, बहुत जोखिम है उसमें. मुझे तो उलझन इसी में है कि 'मरनी' को दबाया कैसे जाय? ऊपर से आप लोग शादी किसी और कैसे करेंगे?'' वे भग्नोत्साह होकर बैठ गये.

काका बुरी तरह झुंझलाये, ''लदनी घोड़ी की नाईं बारंबार थसकने से काम नहीं चलने को. अरे कड़ा बनो, कड़ा.'' उन्होंने आंखें मीसते हुए कहा, ''दुख किसे नहीं है! मैं जो बोल रहा हूं तो क्या मुझे तकलीफ नहीं होती? लेकिन क्या करूं?'' आंखों को जबरिया मीसने से काका के भी दो-चार बूंद आंसू निचुड़ ही आये.

''काका हो! एक दो आदमी की बात रहती तो मैं कहता दबा लो, लेकिन इतने लोगों को भुलवाया कैसे जाय?'' वे फिर सिसकने लगे, ''हे भैरो बाबा! मेरे ऊपर गाज गिरा दो कि इस जंजाल से छुटकारा पा लूं.''

कुछ और लोगों के मन में भी अंदेशा था, ''सबसे कठिन है स्त्रियों को मनाना.''

पंडितजी झल्ला पड़े, ''दुत्त मर्दे! आप सबों से इतनी छोटी-सी बात नहीं दबती?'' उन्होंने कहने वाले की ओर उपहास से देखा, ''और राजा भगदत्त ने अपने हाथी को दबाकर अक्षौहिणी सेना को चकमा दे दिया था.''

''हाथी को दबा लिया था?...कौन?'' दुखी लोगों में पंडितजी के लहजे ने एकबारगी औत्सुक्य-सृष्टि कर दी, ''वह कैसे?''

पंडितजी ने अंगुलियां चटखायीं और आत्मविश्वास संजोकर बोले, ''प्राग्ज्योतिषपुर के राजा थे भगदत्त. उनके पास ऐरावत कुल का एक ऐसा चतुर्दंत हाथी था, मानो मंदर सो देखत नर डरई; योजन ऊपर पांव सो धरई...दंत विशाल कहत नहीं आवै; मनहुं श्रृंग कैलाश सुहावै. हाथी ने पांडव दल को तुरई के खेत की तरह रौंद दिया. एक बार तो राजा भगदत्त ने कृष्ण और अर्जुन दोनों को मूर्च्छित कर दिया. भगदत्त को यह वरदान प्राप्त था कि जब तक हाथी मारा नहीं जाये, तब तक उनके शरीर पर खरोंच नहीं आ सकती. मूर्च्छा टूटने पर अर्जुन ने ग्लानिवश प्रण ठान लिया कि एक ही बाण में हाथी को मार गिराऊंगा, अन्यथा धनुष न छुऊंगा. भगदत्त ने भी डपटकर कहा कि तुम्हारे बाण से यदि हाथी गिर गया तो समझ लो मैंने हार मान ली. अर्जुन ने कान तक खींचकर ब्रह्मबाण मारा तो सही, लेकिन क्या मजाल कि हाथी को कुछ हुआ हो, सिवाय तनिक चिंघाड़ने के. बाण के मस्तक से टकराने के बाद भी हाथी न हिला, न डुला, न आगे बढ़ा, न पीछे हटा, न तिलमिलाया और न गिरा.'' वह रुक गये और लोगों के चेहरे पर आये भाव पढ़ने लगे. उनकी दोहा-चौपाई मिश्रित कथा कहने की शैली ने कल्पनातीत प्रभाव डाला. ऐसी कठिन परिस्थिति में भी लोग हाथी के बल से बुरी तरह प्रभावित-से हो गये.

सबने विस्मय से मुंह बा लिया, ''अरे, ऐसा बली था वह हाथी!''

''उससे भी बली थे राजा भगदत्त!'' पंडितजी कान खुजलाते हुए बोले, ''सच कहूं तो हाथी कब का मर चुका था...छुट्यउ प्राण गिरन गज चहयो; तब भगदत्त जंघ सो गह्यौ.'' उन्होंने अपनी पृथुल जांघों पर थपकी देनी शुरू की, ''राख्यो साधि झुकन नहीं पायो; सकल सैन चकित ह्वै जायो.'' पंडितजी उद्धव सिंह को अंदर तक टोहने लगे, ''राजा भगदत्त की वाहवाही होने लगी. दोनों ओर की फौज विस्मित खड़ी थी कि राजा ने क्या गजब कर दिया! अर्जुन धरती में गड़े जा रहे थे, अब कौन-सा मुंह लेकर युद्ध करते वह?''

इसी बीच एक नौजवान शमियाने से लौटा. लोग अचानक उसकी ओर मुड़े. उसके ललछौंहे चेहरे से लगा कि वह काफी उत्तेजित है. उद्धव सिंह ने आंखों के द्वारा उससे प्रश्न किया, मानो मुंह से बोल फूटते ही अनर्थ हो जाएगा. नौजवान तैश में आ गया, ''सारे सब, द्वाराचार के लिए रामनरेश चाचा पर कुंकिया रहे हैं और कटुबोल भी बोल रहे हैं कि तुम्हारे गांव में सांड़ भी होते हैं. पहली बार मालूम हुआ. यहां तो सब गऊमुंहे दिखाई देते हैं.'' लड़के ने उलाहना दिया, ''रामजस काका ने मना कर दिया था, सो मैं चुप रह गया, वरना उनको निकाल कर दिखा देता कि देखो हमारे गांव में कैसे सांड़ हैं.''

पंडितजी ने हस्तक्षेप किया, ''ओ-हो-हू! जबान खराब मत कीजिए. उनका पद है मसखरी करने का. यह तो खुश होने की बात है.'' उन्होंने हड़बड़ाहट दिखाते हुए कहा, ''चलिए...सब लोग चलें....द्वाराचार की



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यवस्था की जाये."

रामजस काका ने उसी आवेग में अलगनी से मलमल का कुरता उतारा और उसे हवा में दो-तीन बार झटकारते हुए पहन लिया. "रहमत मियां, आप लोग शहनाई-नफीरी 'इस्टाट' कीजिए." रोशन चौकी बजाने वालों को आदेश देते हुए वे पगड़ तहिया कर सिरपेंच बनाने लगे.

"काका, औरतें तो रो ही रही हैं."

"सात औरतों से भी ज्यादा कदराही तुम्हारे अंदर है. तुम्हारे इस लच्छन से तो लगता है पूरे गांव का पानी उर जायेगा." काका बिगड़ गये, "जाकर औरतों को मना नहीं करना है."

किसी ने खबर दी, "आंगन में हुजूम लगा है. वे समझाने पर मान थोड़े रही हैं. कुछ बोलने पर लाश से चिपटकर रुलाई और तेज कर देती हैं."

पंडितजी का मुंह व्यंग्य से टेढ़ा हो गया, "औरतें सुहराने से नहीं मानती हैं जी! उनको दबाना पड़ता है. मानी पुरुष पहले बातों से पुचकारते हैं जरूर, मगर नहीं मानने पर ताड़ना का सहारा भी लेते हैं. उधो सिंह जी, आप भीतर जाकर उनको रोकिए तो..."

"हां-हां, जो नहीं मानती, उसे हुमचकर दो-चार चटकन लगाओ, आप सटक जायेगी."

"बिलकुल," पंडितजी ने उकसाया, "ईख, आटा और स्त्रियों का मर्दन करना ही उचित होता है. आपद् धर्म में सब कुछ जायज है."

रहमत मियां ने नफ़ीरी शुरू की तो लोगों ने एक विचित्र अनुभूति-सी रेंग गयी.

कई मर्द लुगाइयों को चुप कराने चले. रासमणि की 'मिट्टी' को घेरकर वे कारन कर रही थीं. मर्द बमकने लगे, "अब रोना-धोना बंद करो. बहुत हो चुका सियापा."

उन लोगों ने रासमणि की मृत देह को उठाया और भूसेवाले कमरे में बंद कर आये.

उद्धव सिंह पत्नी को आगे की योजना से अवगत करा रहे थे. पहले तो वह सन्न रह गयी. पूरी बात सुनने के पहले ही उसने सिर पर आसमान उठा लिया, "ओ रे मेरो पंचो! एक तो ऐसा अशुभ हुआ...घर से लाश अभी निकली नहीं..." उसने पति की ओर अंगुली उठायी, "...और ये कह रहे हैं कि किसी दूसरी बेटी का विवाह होगा." वह लयबद्ध रोने लगी, "इनका दिमाग तो नहीं घूम गया? अरे कोई पंडिज्जी को बुलाए. ई विवाह कैसे होगा?...सबकी मति कैसे मारी गयी, रे दइया!"

पंडितजी द्वाराचार के लिए दूब बाछा रहे थे. वे वहीं से समझाने लगे, "शांत भी रहोगी, जजमानिन! अपने आप में कुछ भी शुभ-अशुभ नहीं होता. मनुष्य के फायदे के लिए जो कुछ भी हो वह शुभ होता है. युवतियां पीड़ा सहकर भी नाक-कान छिदवा लेती है, क्यों? आभूषण पहनकर सुंदर लगने के लिए, जार को रिझाने के लिए ही ना!"

"एक बार तो ऐसा असगुन हुआ, यदि फिर कहीं कुछ..."

"जजमानिन, आग से जले घर में फिर आग लग जायेगी, इसकी आशंका से कोई चूल्हा जलाना बंद नहीं कर देता." उन्होंने उनसे उलझना छोड़कर सीधे उद्धव सिंह के कान में कहा, "मैं जितना समझाता जा रहा हूं यह उतना ही सिकहर चढ़ती जा रही है."

वे आगे बढ़े और पत्नी को एक तेज धक्का दिया, "मुंह की ठेपी (ढक्कन) खुल जाये तो बंद होने का नाम नहीं लेती, ना? अपना ठोर बंद करोगी कि नहीं? तभी से वकील-मुख्तार की तरह जिरह कर रही हो."

स्त्रियां मारे डर के पीछे खिसक गयीं. उनकी घिघ्घी बंध चली थी.

लोग मंत्रणा करने लगे. ठीक तो है...मरजाद ही रक्षा हर हाल में होनी चाहिए. बारात लौटाने की बदनामी से भी बड़ा है पैंतीस हजार रुपयों का डूब जाना. बेटावालों के पास जो गया वह लौटने से तो रहा. इससे भला कि किसी का विवाह हो जाये. मरजाद रक्षा के प्रश्न पर गांववालों में एक अनोखी एकता पैदा हो गयी. लोग इसके लिए कोई भी उपाय करने को तैयार थे. मगर अभी भी एक मुश्किल थी कि विवाह किस कन्या का हो.

जगमोहन सिंह बगलें झांकने लगे तो शिवकुमार सिंह से पूछा गया, "सावित्री के बाद मनोरमा भी तो ब्याहने लायक हो चली है. न हो तो उसी को..."

शिवकुमार सिंह भी तीन-पांच करने लगे. अपनी बारी आते देख कुलभूषण सिंह खुद बोल उठे, "वैसे मेरी सूरजकांति भी चौदहवां बरिस में गोड़ रख रही है, लेकिन इनको तैयार करना पड़ा मुश्किल है."

"कुच्छो मुश्किल नहीं है."

"मौत हो गयी है न काका! लड़कियों को तो जानते हैं, शुभ-अशुभ के पचड़े में वे कुछ अधिक ही रहती हैं. पत्नियों को डराया-धमकाया भी जा सकता है, लेकिन बेटिया परायी अमानत...सब अपना-अपना भाग लेकर आयी हैं. इन पर दबाव डालना मैं ठीक नहीं समझता." कुलभूषण सिंह ने किसी तरह समझाना चाहा.

"हां भई, डायन भी अपना सगुन मनाती है." जगमोहन सिंह दबी जुबान में बोले.

रामनरेश सिंह के कोई बेटी नहीं थी, इसलिए वे कड़ककर बोलने लगे, "अशुभ का खौफ लगता है सबके मन पर छा गया है. समझाना-बुझाना व्यर्थ हो रहा है. लेकिन यों नकारने से भी काम नही चलेगा. मेरी बेटी रहती तो मैं किसी का मुंह नहीं जोहता, सबसे पहले तैयार होता. अरे भाई, कोई तो आगे आये."

सब चुपचाप सुन रहे थे, लेकिन अपनी बेटी देने का साहस किसी में नहीं था. सन्नाटा-सा छा गया इस समस्या पर. अचानक कौलेजिया रमेसर बोला, "क्यों नहीं शिवदानी काकी की बेटी जानकी को ब्याह दिया जाय?"

"अरे राम, वह तो बाल विधवा है!"

"उससे क्या?" रमेसर ने भरसक खंडन किया, "पति को छूये बिना गवने के पहले ही वह विधवा हो गयी है. सिर्फ एक बार सिंदूर पड़ जाने से क्या उसका स्त्रीत्व ही खत्म हो गया? देखिए, मुझे तो इस विकट समस्या से उबरने का एक यही उपाय दीखता है."

"विधवा विवाह हमारे यहां बारन (निषेध) जो है." रामजस काका

## आप हार गयीं

आचार्य श्री रामचंद्र शुक्ल की मितभाषिता बहुत प्रसिद्ध थी. वे थोड़े से थोड़े शब्दों में अपनी बात गंभीरता से समझाने की अभूतपूर्व क्षमता के स्वामी थे.

तभी एक नवोदित कहानी लेखिका ने अपनी समकालीन एक कवयित्री से कहा कि वह आचार्य जी से एक बार में कम से कम पांच छह शब्द कहलवा सकती हैं.

कवयित्री ने कहा, "शुक्लजी आपके कहे अनुसार कह जरूर देंगे. पर ये कम से कम शब्दों से काम चला लेने में माहिर हैं. वे मितभाषिता का रंग यहां भी जरूर बतलायेंगे."

कहानी लेखिका ने तभी उससे अच्छी खासी रकम की शर्त लगा ली. दोनों ही आचार्य जी के पास गईं तो कहानी लेखिका कुछ बेधड़क बनने का प्रयत्न करती हुई बोली, "बाबूजी, आपकी मुझ पर बड़ी कृपा है. आज मैंने शर्त बदी है कि मैं एक बार में कम से कम पांच शब्द आपके श्रीमुख से कहलवा लूंगी."

बाबूजी ने मंद-मंद मुस्कराते हुए दोनों को देखा और फिर कहानी लेखिका से कह उठे, "तुम हार गयीं."

...और वे दोनों भी ठहाका लगा उठीं. बाबूजी की मुख मुद्रा और मितभाषिता के सम्यक प्रयोग पर.

दुर्गाशंकर त्रिवेदी



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को यह राय कुछ जंची नहीं. उनके होश में ही कई औरतें विधवा हुई हैं, इसी गांव में, लेकिन दुबारा विवाह तो किसी का नहीं हुआ. उन्होंने पंडितजी से राय मांगी, ''रीति-सम्मत है यह.''

''ऐसी कुरीति नान्ह जातियों में है.'' पंडितजी ने निरुत्साहित ही किया, ''लेकिन बड़े लोगों में भी ऐसा होने लगे तो इस दुनिया के रामजी मालिक हैं.''

''इसे कुरीति कहेंगे, पंडितजी? बल्कि असल पुण्य का काम यही है. अभी जानकी की उमर ही क्या हुई? तिस पर घर में किसी मर्द का साया नहीं...मां भी रांड है उसकी. एक दुखियारी की जिंदगी संवर जायेगी.''

असहमति के साथ-साथ लोगों में खुसर पुसर भी चलने लगी. अपनी बेटियों के लिए अपशकुन माननेवालों को इससे बेहतर मौका न मिलता. यदि यह बला जानकी के सिर टले तो आप भी बचो और गांव की नाक भी बचा लो. जगमोहन सिंह, शिवकुमार सिंह और कुलभूषण सिंह प्रकट तो, कुछ बोले नहीं, लेकिन जगमोहन सिंह ने रमेसर को हौले से उकसाया, ''तुम्हीं ऐसा करा सकते हो, रमेसर!''

''भई, उस लड़के को भी देखना होगा. क्या वह किसी विधवा को वरण करने के लिए तत्पर है?'' पंडितजी ने पांसा फेंका.

''उसकी राय का प्रश्न कहां उठता है?'' रमेसर ने चिढ़ते हुए पैर पटक कर विरोध किया, ''लड़के की मानी जाये तो किसी भी लड़की से बलात् विवाह की गुंजाइश नहीं ठहरती.''

''ठीक है. लड़के की राय नहीं तो कम-से-कम जानकी की राय तो लेनी चाहिए.''

''इसका जिम्मा मैं लेता हूं...अभी आया.'' रमेसर दौड़कर एक औरत के पास चला गया और जानकी के बारे में पूछ-ताछ करने लगा. औरत ने बताया कि शादी वाले घर में भला वह कैसे आती. हां, रासमणि की 'मरनी' सुनकर आयी थी, फिर चली गयी.

रमेसर जानकी के घर चला गया. वह गगवर मिट्टी से बाल धो रही थी. वह उसकी अनछुई जवान कद-काठी और अखरे मांग को देखकर सिर धुनने लगा. अपनी सहानुभूति को सच्चाई में बदलने के लिए उसने जल्दी-जल्दी में सब कुछ बताया.

जानकी ने शीघ्रता से बाल धो लिये. अंगोछे से पानी झाड़ते हुए सिसक-सिसक कर कहने लगी, ''भइया रमेसर, मजाक करने को मैं ही मिली? मेरे करम की रेख ऐसी ही रहती तो आज मैं यों दुत्कारी जाती? उससे मत बोलो, ऐसे मत हंसो, तीखा-चटपटा मत खाओ, सिंगार-पटार मत करो, तेल-साबुन के बदले मिट्टी लगाओ, किसी के शुभ काज-परोजन में छाया मत दिखाओ...जहां इतने चटपटे रिवाज हों, वहां मेरे विवाह की बात कैसे उठी, भैया? लोग मुझे नेत-धरन में रहते देखना चाहते हैं, लेकिन गली-खोरी में कहीं अकेले मिल गयी तो मटकी (सैन) मारने से भी बाज नहीं आते.'' वक्त की मार ने उसे असमय प्रौढ़ और सशंक बना दिया था, ''लोग इसे पचा पायेंगे?''

''कोई दूसरा अवसर रहता तो सच में नहीं पचा पाते, मगर आज परिस्थिति ही विकट है. उन्हें किसी लड़की का ब्याह कर देना है, बस!'' रमेसर उसका हौसला बढ़ाने लगा, ''तुझे देखकर कसक उठती है रही! इस मौके का फायदा उठा ले. बस, एक बार 'हां' कह दे.''

''मेरे कहने या न कहने से क्या होनेवाला है. मैं 'ना' भी कहूं तो गांववाले मुझे जबरदस्ती ब्याह सकते हैं...मैं यदि 'हां' ही कहूं तो लोग मेरी शिकायत ही करेंगे.'' जानकी के भीतर सोच-विचार की एक लहर-सी चलने लगी. एक तरफ लोक-लाज, दूसरी तरफ भाग-साज.

रमेसर अपनी सफलता की रास थामे जा पहुंचा लोगों के पास उसने स्वीकृति की बात बतायी तो किसी को विश्वास नहीं हुआ.

''एक बोली में ही तैयार हो गयी?'' रामजस काका को अभी भी प्रतीति नहीं थी.

''कहीं रमेसर उसे जबरिया तो तैयार नहीं करवा रहा है?'' पंडितजी को खटका हुआ.

रमेसर क्रुद्ध हो उठा. वह चीख पड़ा, ''आप लोग खुद चलकर पूछ क्यों नहीं लेते?''

जानकी के अंदर वह एक आशा जगा गया था. आईना हाथ में लिये वह प्रमोहन भाव से अपनी सूनी मांग निरख रही थी.

इतने लोगों को एक साथ आते देखकर वह बरसा में भीगी बेंत की छड़ी की तरह झुक गयी. उसके हाथ से आईना सरक गया और कांच की किरचें बिखर गयीं. अलग-अलग टुकड़ों में उसकी खंड-खंड छवि झलमलाने लगी.

''कलजुग कहना भी ठीक नहीं होगा. घोर भठजुग है यह.'' पंडितजी छान लगे घोड़े-सा ऐंठ कर रह गये, ''गोसाईं जी ठीक ही कह गये हैं—सौभागिनी विभूषण हीना; विधवन के श्रृंगार नवीना.''

रमेसर उनको कड़ी फटकार देना चाहता था, लेकिन क्रोध को दबा लेना अवसर की मांग थी. वह अधिकार भरे स्वर में बोला, ''जानकी दीदी, जरा इनके सामने हां कह दे. ये लोग मुझे झूठा मान रहे हैं.''

पंडितजी को मौका मिल गया, ''सुनो लोगों! जानकी सतवंती धिया है. ऐसी-तैसी नहीं कि विवाह के लिए झट से तैयार हो जाये. बाल विधवा में महारानी आदिशक्ति का वास होता है. उससे बरजोरी करना अनिष्टकारी भी हो सकता है.''

जानकी पंडितजी को अजीब निगाहों से घूरने लगी. उन पीड़ित आंखों की भस्मकारी लपट को झेल पाना पंडितजी के लिए कठिन था. चेहरा घुमाकर वह बोले, ''यदि आंतरिक इच्छा है तो सबके सामने स्वीकार तो

रामजस काका निष्ठुर भाव से पूछने लगे, ''सच में तैयार हो तुम? हो तो लाज-शरम त्याग कर बोलो. अलपा का माड़ो (अल्पना के लिए बना कमजोर दिखावटी मंडप) बनने से नहीं चलेगा.''

एक ही बात बार-बार पूछने पर उसने कछुए की तरह अपना चेहरा घुटनों में गाड़ लिया. प्रश्न उसके कानों के पास हथौड़े बजाने लगा. मन की इच्छा मन में ही रह गयी. लाज के मारे वहां रहना भी दूभर हो गया. वह आईने के नुकीले टुकड़ों को रौंदती घर में भाग गयी और दरवाजा अंदर से बंद कर लिया. तलुवे से चूते खून की लंबी धारा पसर गयी.

रमेसर पागलों की तरह सांकल खटखटाने लगा, ''तू सबके सामने बोली क्यों नहीं? यही तो चाहते हैं ये कि तुम चुप लगा जाओ.''

मगर दरवाजा चरमराया तक नहीं. सांकल खटखटाना नाकामयाब रहा.

रमेसर झींकने लगा, ''अब मैं किसी का विवाह नहीं होने दूंगा.'' वह लपककर शामियाने की दिशा में जाने लगा,

उद्धव सिंह ने दौड़कर लंगड़ी मारते हुए उसे नीचे गिरा दिया. उसकी छाती पर असवारी कसते हुए वह दहाड़ने लगे, ''अभी तुम्हारे बराबर जांगर है मेरे अंदर, बेशी भीखनई करोगे तो तुम्हें बैंगन का चोखा बना डालूंगा.''

''बड़ा बिषहर लड़का है! इसका भी हाथ-पैर बांधकर इसी कमरे में बंद कर दो.'' पंडितजी बोले, ''न जाने कब कैसी पगलेटई कर बैठे.''

बंधन की यातना से रमेसर डर गया. उद्धव सिंह उसको अभी भी दबाये हुए थे. उसने जगमोहन सिंह की तलाश की. वे न जाने कब खिसक गये थे. अब जहां इतने बलेसर वहां एक रमेसर क्या कर लेगा, यह सोचकर वह मुंह न खोलने की कसमें खाने लगा.

सबको लगा कि एक बहुत बड़ा अनर्थ होने से टल गया.

भेद तो छुप गया, लेकिन अब? उद्धव सिंह को लगा कि प्रत्येक आदमी उनसे यही सवाल कर रहा है, अब क्या करोगे उद्धव सिंह? बेटी के बदले नेती कहां पाओगे? उनकी हताशा और व्यग्रता परवान चढ़ने लगी. ''ओखली में जब मेरी मुंडी पड़ी है, तब मूसल की मार मुझे ही सहनी पड़ेगी.'' वह पंडितजी की ओर घूमते हुए बोले, ''महाराजजी, अपनी भागमणि का ब्याह कर दे रहा हूं.''

''ये ल्लो! अब तक किसी को सूझा ही नहीं.''

''यह तो अति उत्तम है.'' पंडितजी ने पूरे जोशोखरोश के साथ



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समर्थन किया, "बेटी के रजस्वला होने के पहले जो पिता कन्यादान कर दे, अवश्य वह बैकुंठ का अधिकारी होता है."

उद्धव बहू ने सुना तो आपा खोकर चिकरने लगी, "हाय मोरे दइया! आठ बरस की अनबूझ मोरी बिटिया, इसे बिहिटि पहिनने तक लूर नहीं इतने बड़जेठू दुलहे से कैसे ब्याही जायेगी? कोई तो रोके इसे." उसने पंडितजी के पैर पकड़ लिये,

उद्धव सिंह ने पत्नी की गर्दन दबोच ली, "बस, बहुत नखरा हो गया, राम जवाहिर की माई! अब बेशी नगरनाच जन दिखाओ, नहीं दो जान दह लूंगा." उन्होंने इतने जोर से गर्दन दबायी कि पीड़ा से वह अधमरी हो चली. पत्नी उनकी बांहों पर झूल गयी तब उनकी समझ में आया कि अभी-अभी जो गर्दन उन्होंने पकड़ी हुई है वह किसी गौरैया की गर्दन है. उन्होंने पकड़ ढीली की और डांटने लगे, "समझ ले...अब कलुवाबीर की ओझाई की जरूरत नहीं पड़नी चाहिए. क्या भागमणि के लिए मुझे मोह नहीं है? फिर भी दस भाई जो कहें वह मानना पड़ता है."

गर्दन दब जाने से वह खांसने लगी थी. किसी तरह उसने अपनी कसक निकाली, "बाकिर ई विवाह कैसे होगा? न इसके नाम से सगुन उठा, न कोई मंगल हुआ?"

"कहा गया है," पंडितजी बोले, "शास्त्र अचिंतित पुनि-पुनि देखे. शास्त्रों में जिस पर चिंतन नहीं हुआ है, उसे भी अपनी समझ-बूझ पर जांच-परखकर कर लेना चाहिए. मंगल तो छनभर में हुआ जाता है, जजमानिन! जो पंडित जनमपत्री लिखता है वही श्राद्ध भी करवाता है और विवाह भी. आप मेरे बताये शुरू तो करें."

मर्दों ने समवेत स्वर में धमकाना शुरू किया, "खाली चुप रहने से नहीं होगा. अब जल्दी-जल्दी मंगल-गीत भी गाओ, नहीं तो कपाट रंग दिया जायेगा."

मारे भय के औरतों के कंठ से गीत के खरज बोल फूटे :

**कोरी नंदिया में दहिया तऽ अमरीत जोरन**
**ए से हो दहिया खइहें रासमणि देई होइहें अछ्य अमऽऽऽ र...**

गीत एकाएक थम गया. रोकते-रोकते रासमणि का ही नाम उचर गया गीत में...पिछली आदत के तहत. औरतों के लिए यह अंतहीन विडंबना थी. एक तो मौत, दूसरे रोने-धोने की छूट तक नहीं, ऊपर से मंगल-गीत गाने का खौफनाक दबाव. औरतें अपनी भूल पर आप चिहुंक कर फिर सिसकने लगीं.

उद्धव सिंह ने पत्नी को खा जाने वाली दृष्टि से देखा. वह बांस के कोंपल की तरह कांपते हुए भंडार घर में भाग गयी. उन्होंने भीतर जाकर पत्नी को कसकर चांटा मारा, "ससुरी, नाकबुद्धि! ठीक कहते है कि मेहरारूओं के नाक न हो तो गू खा ले. अभी भी तेरे छोटे माथे में नहीं समाया कि विवाह भागमणि का...एक बार फिर सुन ले...भागमणि का..." उन्होंने फिर चांटा मारा, "दूसरा गीत शुरू कर बदमाश! नहीं तो कोइरी के देवता की तरह चुपचाप पड़ी रह."

वह भाव शून्य हो गयी. दो-दो थप्पड़ इतने जोर से लगे कि कान झन्ना गये. गाल और कनपट्टी पर उंगलियों के नील पड़ गये. दुख, त्रास और चोट के सम्मिलित संघात ने खड़ा रहने में भी लाचार कर दिया. वह मैदेवाले कनस्तर का सहारा लेकर उझक गयी.

औरतों ने उस अधूरे गीत के बदले दूसरा गीत शुरू किया :

**शुभ बोलु...शुभ बोलु...शुभ बोलु ए बाम्हन**
**शुभ ले बाहर भइली भागमणि शुभवा...अंचरन्ह ढांकि ले ली जे सिन्होरा ले बाहर भइले शुभ दुलहा**

आखिर विवाह का कार्यक्रम इस मंगल गीत के साथ शुरू कर ही दिया गया. लोगों में उत्साह आया, शहनाई-नफीरी में जान आयी, गीतों ने लय पकड़ी और सारे तामझाम में शोक रामजस काका के मलमल के नये कुरते के नीचे दबी फटी-चीकट गंजी की तरह ढंक गया.

कुशल यही थी कि शामियाना गांव से दूर बाग में पोखरे के पास गड़ा था. यहां के टंट घंट वहां सुनाई न पड़ते थे और गांव वालों ने भी इस मामले में अद्भुत मिलाप का परिचय दिया.

द्वाराचार की विधि जल्द निबटायी गयी. बाराती पुनः शामियाने में जाकर बैठे. पहले जलपान की व्यवस्था दुआर पर निश्चित थी, लेकिन दूरी बरतने के लिए तश्तरियां अब वहीं भिजवा दी गयीं. उद्धव सिंह ने समधी के सामने पटोर से ढंका पानी भरा लोटा रखकर 'आज्ञा' मांगी. समधी अपना समधियाव दिखाने लगे, "मुझे पता नहीं था कि आप लोग अतिथि-सत्कार में इतने लापरवाह हैं, पहले लगा था कि एक महीन पानीदार घर में संबंध करने जा रहा हूं, लेकिन..." वे त्रुटियां गिनाने लगे, "कभी से हम बैठे हुए हैं, लेकिन कोई झूठे मुंह भी पूछने नहीं आया कि हंकासे हो या पियासे हो. हमारा पौनी दुआर पर जाने लगा तो उसे भी रोका गया. यह लोटा-पटोर ले जाइए. हमें आज्ञा की जरूरत नहीं है."

इधर के सयाने-परबीन हथजोरी करने लगे. मान-मनौबल का क्रम कुछ लंबा खिंचा तो समधी एक बाल सिंह जरा नरम पड़ गये, "ऐसे ही बहुत विलंब हो गया है. दस-एगारह बजे तक समूची बारात का भोजन हो जाना चाहिए, तभी हम डाल-दौरा मंडवे में भेजो."

अंधे को जैसे आंख मिली, बेटीवालों ने रीति के मुताबिक 'आप जैसा कहें वैसा हो' कहकर समधी को तुष्ट कर लिया. जनवासे का इंतजाम कुछ व्यवहारपटु लोगों पर छोड़कर बाकी लोग घर लौटे.

मगर समस्यायें अनगिनत थीं. भागमणि को औरतों ने जब सिंगार करने के लिए उठाया तो वह कुहराम मचाने लगी, "दीदी के दुलहे से मेरा ब्याह नहीं होगा."

रामजवाहिर ने बहन को पुचकारा, "काहे री? अब तो ई तेरा दुलहा हुआ."

वह सुबकने लगी, "ना, ई दीदी का दुलहा है, दीदी का दुलहा अच्छा नहीं है."

रामजवाहिर ने दुलार में धमकी को भी शामिल कर लिया, "तू का जानती है री कि दुलहा कैसा है और कैसा नहीं?"

"दादी जब खिसियाती थी दीदी पर," वह नाक सिकोड़ने लगी, "तब नहीं कहती थी कि इस करमजली का एक तो कहीं ब्याह नहीं होगा, यदि होगा भी तो दुलहा इसी के जैसा सकपकाह मिलेगा."

"बड़ी पर्दबिच्छी (तेज डंकवाला बिच्छू) बाड़ू ए बबुई." दादी बड़बड़ाने लगी, "बेसी पकठप्रान जन बनऽ हमरा प लांछन लगा के."

## व्यवसाय

### प्रवासी विनयकृष्ण

सुविख्यात साहित्यकार व दार्शनिक जॉर्ज बर्नार्ड शॉ ने एक बार किसी फोटोग्राफर से कुछ फोटो खिंचवाये. यथासमय दो सौ पौंड का बिल आया. शॉ ने फोटोग्राफर को दस-दस पौंड के बीस चेक हस्ताक्षर करके दे दिये.

फोटोग्राफर ने अचरज से पूछा, "हजूर, दो सौ पौंड का एक ही चेक देने की बजाय आप मुझे दस-दस पौंड के बीस चेक क्यों दे रहे हैं?"

शॉ ने हंसकर कहा, "तुम व्यवसाय जरूर करते हो, पर तुम्हारी व्यावसायिक सूझबूझ संदिग्ध है. भई, सीधी-सी बात है कि आजकल मेरा हर हस्ताक्षर पच्चीस पौंड में बिक रहा है. तुम सारे चेक बेचकर पांच सौ पौंड कमा सकते हो. और जो आदमी ये चेक खरीदेगा, वह मेरे हस्ताक्षर के लिए उन्हें अपने पास ही सुरक्षित रखेगा. बैंक में न भुनने से ये चेक मुझे भी दो सौ पौंड का फायदा कराएंगे—समझ गए न!"



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"दुत्त मरबिगौनी दुलहा बड़ा नीक है." औरतें मुंह में पल्लू ठूंसकर सूखी हंसी हंसते हुए बोलीं, "आग नियर गोरा और पान के पत्ते नियर ढुरहुर दुलहा है."

"ना, मेरा ब्याह मेरे दुलहे से होगा?" वह इतराने लगी.

दूसरे लोग भी समझा रहे थे, "बुचिया, विवाह करोगी तो मिठाई मिलेगी, नया कपड़ा मिलेगा." भागमणि को मिठाई दी गयी. दो-चार मिठाइयां खाने के बाद उसने हठ त्याग दिया और नया कपड़ा मांगने लगी. अचानक लोगों को होश आया कि इसके लिए शादी का जोड़ा तो बना ही नहीं, बने भी कैसे? अब क्या किया जाये? 'इत्ती बूटी' लड़की पंचगजी साड़ियों में डूबकर रह जायेगी. तो क्या रासमणि की साड़ियां फाड़कर छोटी कर ली जायें? लेकिन फटी साड़ी में और बहुरुपिया जैसी लगेगी भागमणि. लोग नीरू बज्जाज के पास दौड़े. यदि उसके पास कपड़े मिल गये तो उसके भाई बीकू दर्जी से सिलवा लिया जायेगा.

लाख सावधानियों के बावजूद समधी को रासमणि की मौत की खबर मिल गयी. लोगों को रमेसर पर शक था. लेकिन उसने तो कसम खायी थी, उसे शामियाने के पास जाते हुए भी किसी ने नहीं देखा था. रामनरेश सिंह उस पर ताबड़तोड़ घूंसे बरसाने लगे, "जानता कि तू ऐसा कुलबोरन निकलेगा तो पैदा होते ही तुझको नून चटा दिया होता मैंने. अब से मुझे बाप मत कहना. तू मेरी बूंद का है ही नहीं.

आंख-मुंह सुजाकर ही वह वहां से हट पाया.

एकबाल सिंह छनमना कर रह गये. मरनी को दबाकर आठ-नौ साल की बच्ची से विवाह करने की गुप्त योजना पर वे क्रोध से सुलग रहे थे. उन्होंने साफ-साफ बात कर लेना उचित समझा. ऐसा न कि बतानेवाला झूठ बोल गया हो. वैसे बेटीवालों का हावभाव संदेहास्पद भी था और नहीं भी. उन्होंने चचेरे भाई मंगलेश्वर सिंह से राय ली. वह भी बेचैन हो गये. उनका स्वर क्रमशः उग्र होता गया, "तब तो बहुत बड़ा फरेब हुआ हमारे साथ. द्वाराचार में भरसक अबेर हुई थी! इनार में सांड़ गिरने का तो बहाना था. सांड के साथ क्या सब गांववाले भी गिर गये थे? ठहरिए, मैं पूछता हूं उधउआ से. सिर्फ देखने में 'सोझबक' लगता है, लेकिन है एक नंबर का चिड़ीमार."

एकबाल सिंह ने उनका कंधा हौले से दबाया, "तुमसे कुछ कहने का मतलब नगर-ढिंढोरा सुनना होता है. कायदे से ही कोई सुराग ढूंढ़ा जाता है. गुरुहस्त के समय हम दोनों चलेंगे और लड़की दिखाने के लिए बाध्य करेंगे. वैसे मुझे यकीन नहीं होता. यदि कुछ हुआ रहता तो ये इस तरह हंस-बोल पाते?"

"औरतें भी गीत-गैनई कर रही हैं. मरनी होने पर वे जरूर रोती-चिलकतीं. खुशी हो या गम्मी उनसे ही तो पता चलता है." मंगलेश्वर सिंह भी सांय-सांय बोलने लगे.

तब तक हज्जाम बुलावा लेकर आया, वरपक्ष के आठ-दस लोग गुरुहस्त कराने चले. समधी ने उद्धव सिंह को एकांत में ले जाकर कहा, "मैं जरा दुलहिन को देखना चाहता हूं."

"त-त-तो अभी क-कैसे देखिएगा?" मारे घबराहट के वे हकलाने लगे, "प-पहले तो आपने क-कुछ कहा नहीं?"

एकबाल सिंह ने सीधे ढंग से अपनी शंका व्यक्त कर दी कि उन्हें कुछ अनाप-सनाप सुनने को मिला है. उद्धव सह बदहवास हो गये. उन्होंने पंडितजी को बताया. वे ढुलकते हुए आये और समधी को तोष देने लगे, "सरकार की चिंता बेवजह है, किसी चुगले ने आपका कान तो नहीं भर दिया? तभी आप ऐसे अधीर हो रहे हैं. मुझे तो जानते हैं न. एक तरह से मैं ही सूत्रधार हूं इस विवाह का. मैंने दोनों तरफ से अगुवई की है. आपने जितना कहा, उतना दहेज भी दिलवा दिया. आप मुझ पर आंख मूंद कर भरोसा करें."

उद्धव सिंह बेतहाशा दोनों हथेलियां रगड़ रहे थे. पंडितजी ने उनको आदेश दिया, "जजमान! गुरुहस्त के बाद लड़की दिखा दीजिए." उन्होंने कोनसिया घर की ओर इशारा करते हुए कहा, "इसी कोठरी में दिखा दीजिएगा. जब संबंध कायम करना है तो आपस के सारे शक मिट जाने चाहिए." वे समधी की ओर उन्मुख हुए, "अभी की विधि तो संपन्न हो ले."

एकबाल सिंह मान गये. गुरुहस्त करने की आज्ञा देते हुए वह गहने की पेटी में से सिर से लेकर एड़ी तक के आभूषण खुद निकालकर देने लगे. मंड़वा सोने-चांदी के गहनों की चमक से गहगह करने लगा. औरतें गाली गाने लगीं :

**समधी करार कइले सोने का गड़ना, पीतर के नइखे ठिकाना जी**

गाली सुनकर समधी की की बांछें खिल गयीं. वे दुगने उल्लास में गहनों को साफे की कोर से पोंछ-पोंछ कर झमकाने लगे. औरतों को सुनाने के खयाल से वे ऊंची आवाज में बोले, "ये समूचे गहने मैंने सेठ बसंतलाल चमनलाल के यहां से निखालिस सोने के लिये हैं. समधिनजी को इसकी पक्की रसीद दे रहा हूं. वे जरा जतन से अपनी फुफुती में संभाल कर रखेंगी."

गुरुहस्त की समाप्ति पर उन्होंने अपना इरादा दुहराया.

"दूसरे लोगों को जाने दीजिए. आप रह जाइए. लड़की देखने में गोहार की जरूरत तो है नहीं." राम नरेश सिंह बोले.

समधी को दुआर पर छोड़ बाकी लोग शामियाने में चले गये. रामजस काका उनके बगल में बैठते हुए बड़े मधुर स्वर में बोले, "सरकार, गुरुहस्त तो हो गया. आपने कहा था न कि एगारह बजते-बजते बिजे हो जाना चाहिए. अब तो केवल दस मिनट बाकी है बारह बजने में. यदि हुकुम हो तो बारात को जीमा दिया जाये..."

"कोई बात नहीं. आराम से बिजे करवाइए. मैं इसके बाद ही देखूंगा." समधी जी ने भले मन से साथ दिया.

बेटीवाले कुछ देर के लिए ही चिंता मुक्त हो सके...बस, बारात खिलाने में जितना समय लगा उतने भर के लिए. अब तो बखेड़ा बढ़ के रहेगा. उद्धव सिंह की सांस तेज चलने लगी, नदी को तैर कर पार करनेवाला किनारे से थोड़ी ही दूर पर हांफ गया हो जैसे.

काका बेतरह चिढ़ गये. उन्होंने आंगन में जाकर आक्रोश निकाला, "वह अभी भी मलूकदास की तरह बैठा हुआ है. दिखाने के बहाने कोठरिया में बुलाओ और न हो तो हाथ में आईना पकड़ाकर बंद कर दो उसी में. जब तक शादी नहीं हो जाती, ससुर अपना ही मुंह निरखता रहे रातभर."

मन ही मन तय हो गया कि आगे क्या करना है. समधी को बुलाया गया. वे बेधड़क कोठरी में घुसे और खाट पर आसन मार ली. काफी देर तक इनकी ओर से कोई सुगबुगाहट न हुई. समधी उकता गये, "अब देरी किस बात की?"

"आं...देरी?" कई लोगों ने दरवाजा घेर लिया, "लड़की आप देखेंगे ही?"

वे तनिक रोष में बोले, "तब क्या आपको देखूंगा? नाहक शक को बढ़ावा दे रहे हैं."

"छोड़िए...मत देखिए. हमारी बात पर भरोसा कीजिए. लड़की हर तरह से जोग है." एक आदमी ने कुभाव से कहा, "लड़की दिखाने का हमारे यहां रिवाज भी नहीं है."

"जोग है तो दिखाते क्यों नहीं?" समधी के संदेह की पुष्टि होने लगी.

"नहीं मानियेगा तो..." रामजस काका ने आव देखा न ताव, दुलकते हुए गये और भागमणि को गोद में उठा लाये. वह छलुवा कबूतर की तरह बैखलायी हुई-सी टबर-टबर ताक रही थी. उसका ताकना देखकर सबका कलेजा दरक गया.

समधी को जैसे ततैया ने डंक मारा हो, वे ढेंकी की तरह उछल पड़े, "अरे बाप रे! ऐसा धोखा? बहुत बड़े मक्कार हो तुम लोग. पहले तो रोगी लड़की के साथ विवाह ठीक किया, जब वह मर गयी तो इस बच्ची को हमारे गले मढ़ रहे हो. यह विवाह कभी नहीं होगा." उन्होंने चीखते हुए-से उद्धव सिंह की बांह पकड़ ली.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामजवाहिर को लगा कि वे बाप को पटखनी देनेवाले हैं. उसने लाठी तान ली, "बहुत हो चुका अब खाट पर चुपचाप बैठे रहिए. बेसी टंडेलई किये तो समूची लाठी नाभी तक हुलकार दूंगा."

समधी का तो मानो खून सूख गया...तो मीठी-मीठी बातें करते हुए कोठरी में बुलवाकर इन लोगों ने चक्रव्यूह में फंसा लिया है. वे बिफरने लगे, "मुझे क्या उठौवा-चलौवा जान लिया है या मेरे लड़के को आपने कीन लिया है? जो चाहेंगे उसे मैं क्या मानता जाऊं? हरगिज नहीं..." वे क्रोध में हाथ भांजने लगे, "अकेला निहत्था पाकर आप लोग बाघ बन रहे हैं? मर्दानगी दिखानी है तो 'रन' में चलिए." वे सबको ललकारते हुए बाहर खिसकने लगे, "नतीज़ा बड़ा खराब होगा, वरना सी धेमन से मुझे जाने दीजिए."

"आं...हां, किधर चले आप?" दो-तीन आदमियों ने उनको बलपूर्वक बैठा दिया.

"ए भाई, यहां तनिक भी दया-माया नहीं है क्या?" समधी ने गुहार मचायी, "यहां कोई मुखिया भी नहीं है?"

एक आदमी आगे निकल आया, "यह मैं हूं यहां का मुखिया, इसवर दयाल चउबे. बोलिए, क्या चाहते हैं?"

"आप मुखिया होकर भी यह अन्याय देख रहे हैं?" एकबाल सिंह ने न्याय की दुहाई देकर उनके विवेक को जगाना चाहा.

"कोई अन्याय नहीं करता." मुखिया जी ने प्रतिवाद किया, "विवाह के लिए तैयार होइए और तब देखिए मेरा इंसाफ...एकदम दूध का दूध और पानी का पानी...दोनों अलग."

"मुखिया ऐसे हैं तो सरपंच कैसा होगा?"

"हुकुम सरकार! मैं हूं सरपंच, तिरलोचन ठाकुर. दरकार हो तो कहिए पूरी पंचायत बुला दूं." सरपंच जी ने आंखें मटकायीं, "यह मामला सुन कर ही तो हम आये हैं. हमारा फैसला यही है कि आप चुपचाप मान जाइए."

"मैं फौजदारी मुकद्दमा दायर करूंगा आप लोगों पर." समधी चिल्लाये.

"चुप रहो चांडाल कहीं के! यहां से जाने पाओगे तब न...." कई लोग एक साथ बोलने लगे, "जानते हो पुलिस थाना यहां से अट्ठारह कोस दूर है, इस दियारे में हमारा ही कानून चलता है."

समधी अपमान से पटुवा गये. उन्हें लगा कि धरती उलट गयी है, तिरसठ का छत्तीस हो गया है. कहां बेटेवाले लड़की को जीतकर ले जाते थे और आज?

"आप लोगों को शुभ-अशुभ से भी डर नहीं लगता? इसी लच्छन से बेटी मरी है आपकी. और फिर विवाह करना चाहते हैं. आखिर मेरा भी लड़का है. उसे कहीं कुछ हो-हवा गया तो...." समधी जी डबडबा गये. अचानक उन्हें पंडितजी का स्मरण हुआ.वे पुकारने लगे, "पंडिज्जी कहां गये? उनके चलते ही मैंने इस घर में विवाह की हामी भरी थी. जो जानता कि ऐसी अगुवई करेंगे तो कभी 'हां' नहीं करता. कहां हैं पंडिज्जी? सामने तो आइए...."

पंडितजी इस लंका कांड से निरपेक्ष से हो गये थे. उन्हें मार-पीट से क्या लेना-देना! पंडित का काम सिर्फ मंत्रणा देना होता है. मगर बुलाहट होने पर आये. पंडितजी को देखते ही समधी अल्लाने लगे, "आपके रहते मेरी ऐसी दुर्गति हो? अगुवा हैं तो आप मेरी ओर से भी हुए. इन लोगों को समझाइए जरा..."

"मैं यहां का शहरकोतवाल नहीं हूं कि लोग मेरी धौंस मानेंगे." पंडितजी बोले, "इस तरह गंवारपन क्यों करते हैं आप लोग? यदि यह अड़ जायें कि विवाह नहीं करना है तो आप लोग इनका क्या उखाड़ लेंगे? आप सभी बाहर जाइए तो, मैं जरा इनसे बतिया लूं."

पंडितजी के इस परिवर्तन पर सबको विस्मय हुआ, लेकिन उनकी कोई नयी चाल समझकर सभी उनके अदब में हट गये.

एकांत पाते ही एकबाल सिंह ने दुखी होकर कहा, "पंडिज्जी, आप भी चाहते हैं कि मैं जिंदा माछी जबरदस्ती निगल लूं?"

"इसमें जबरदस्ती और जिंदा माछी निगलने की कौन-सी बात है?"

"एक कमसिन लड़की उतने बड़े मेरे बेटे के साथ जोग कैसे बैठेगी?"

"अब आपको भी दुनियादारी सिखानी पड़ेगी? अरे लड़की के जोबन और जांघ की होनहारी देखी जाती है न कि उमर. कुबजा कौन डापुट स्त्री थी...सात टेढ़े टेढ़...लेकिन कृष्ण भगवान अपनी तन्वंगी पटरानियों को छोड़कर उसी पर जान छिड़कते थे." पंडितजी ने देखा कि तर्कों का सहारा बहुत दूर तक मदद न करेगा. वे असली मुद्दे पर आ गये, "सब समझ रहा हूं कि आप झूठ-मूठ की तरंग क्यों बांध रहे हैं. अब और एक पैसा नहीं मिलेगा. यदि आपकी पोल खोल दूं तो कहीं का नहीं रहेंगे. बेटे का कहीं ब्याह नहीं हो रहा था और जब मैंने ठीक करवा दिया तो नौटंकी दिखाने लगे? पूरे पैंतीस हजार नगद चेटियाते वक्त नौटंकी दिखाते, तब जानता आपको?"

"उसमें से पांच हजार बभनौती तो आपने ही ले ली है."

"मेरा लेना इतना अखरता है तो मैं लौटाए दे रहा हूं." पंडितजी रुष्ट हो गये, "मगर आप भी सारे रुपए लौटा दीजिए. मैं भी नहीं चाहता कि आप माछी निगलें." पंडितजी समधी को सोचने-समझने का मौका दिये बिना वहीं से चिल्लाने लगे, "उधो सिंह जी, इनको जाने दिया जाये. ये विवाह नहीं करेंगे. मगर हां, अपने पूरे रुपए वसूल लीजिए इनसे. लगनपत्री का 'भैलू' हैंडनोट से कम नहीं होता."

"रुपया?" समधी शशोपंज में पड़ गये. रुपया तो सांप के गले का छछूंदर बन गया....निगलते बने न उगलते. उन्होंने एक नयी चाल चली. हाथ-पैर कंपाते हुए वे मुंह से अजीब-सी ध्वनि निकालने लगे.

लोगों ने घबड़ाकर उनको पकड़ा, "मिरगी आती है, क्या?"

"आप लोगों को भगवान से भी डर नहीं लगता?" समधी हांफते हुए अंगदी बंदर की तरह किट-किट करने लगे, "मुझे इस तरह दिक किये जा रहे हैं...आप लोगों को पता आप लोगों को पता होना चाहिए कि मैं हनुमान जी का भक्त हूं. उनकी असवारी आती है मुझ पर."

"हां, इतना ख्याल रखिएगा, समधी जी!" उद्धव सिंह बोले, "मैं भी राहु-केतु का जाप करता हूं. राहु केतु को तो आप जानते हैं न? गरहण के दिन किस तरह वे चान-सूरज तक का भास बिगाड़ देते हैं.?

रामजस काका ने भी ठोंका लगाया, "ई भी सोच लीजिएगा, अगर आपके हनुमानजी ने ना-नुकर किया तो हमारे राहु केतु उनका लंगूर उखाड़ लेंगे."

"अं-हं-ह...." पंडितजी ने हस्तक्षेप किया, "हनुमानजी सबके हैं. बेकार की हरिनिंदा मत कीजिए." उन्होंने कानों पर हथेली की छोपनी लगा ली.

अपने हनुमानजी की ऐसी-तैसी पर समधी की सिट्टी-पिट्टी गुम हो गयी. उन्हें सारे देवी-देवता याद आने लगे. अब तो किसी तरह लाज बचानी थी. वे हथजोरी करने लगे, "आसपास यदि हनुमान जी का मंदिर हो तो राह बता दें. मैं जाकर पूछ लूं."

मुखिया जी ने जैसे खतरा ताड़ लिया हो, बोले, "और उधर से फरार हो गये तो?"

"ना...ना. अब ये कहीं नहीं जा सकते. भगत आदमी इतना सतवादी जरूर होता है." पंडितजी बोले. फिर भी पांच-सात लोगों के घेरे में उन्हें मंदिर ले जाया गया. वे काफी देर तक मंदिर के भीतर बैठे रहे.

राम जाने हनुमानजी और उनके बीच क्या मंत्रणा हुई, मगर जब वे बाहर निकले तो उनके चेहरे पर कांईयापन कौंध रहा था. कई बार टोकने पर उनकी झल्लाहट फूटी, "हां, हनुमानजी की आयसु हुई है कि विवाह करने में कोई हर्ज नहीं है. लेकिन पतोहू को काग बोलने के पहले ही बिदा करा लेना."

उद्धव सिंह ने अजिजी से कहा, "आप की इच्छा सर्वोपरि है, समधी जी!"

"मेरी कि हनुमानजी की?" समधी ने काट खाने की मुद्रा बना ली.



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"अजी उनकी ही. हम धियावालों का सिर हरदम नीचे. ब्याहता पर आपका अधिकार है, चाहे उसे लिवा जायें, चाहे रहने दें." उद्धव सिंह नतमस्तक हो गये.

समधी एकबाल सिंह ने पूर्ण समर्पण कर दिया. बड़ी खातिरदारी के साथ वे मंडवे के पास बैठा ले गये.

शामियाने में बैठे-बैठे मंगलेश्वर सिंह ऊभचूभ हो रहे थे. लड़की देखने में भाई ने इतनी देर क्यों लगायी? बेचैनी सीमा लांघ गयी तो उन्होंने गांव के कुछ मेठों से मन की खटाई बता दी. समूची बारात की आन चढ़ गयी, "लहाश बिछा देंगे, देह की कुट्टी बना देंगे, लेकिन विवाह नहीं होगा. बेरीवालों की मर्जी कब चली है, जो आज चलेगी."

यह आफत अजानी तो न थी. पहले से तैयार मोटे-मोटे लट्ठ लिये मुस्टंडों ने पूरा शामियाना घेर लिया, "कोई हिले-डुले नहीं."

"क्या सबको ब्याह दोगे, अपनी बेटी-बहिनियों के साथ?"

"बकवांद मत करो. जिसके हाथ में अच्छत डाला उसीसे वास्ता है."

रार बढ़ी तो शोर बढ़ा. समधी को ढाल बनाये लोग पहुंच गये. समधी ने अपने गांवदारों को शांत करना शुरू किया, "गांव-जवार के भाइयो! जब मैं राजी हूं तो आप लोगों को मानने में अंडस कैसी?"

"राजी हो?" पूरी बारात जैसे सकते में आ गयी. लोग मंगलेश्वर सिंह को खोजने लगे, "सार, झूठ-मूठ का बवंडर करता है!"

"मरनी की बात सही है और दूसरी बेटी से शादी की बात भी." एकबाल सिंह ने सबका कोपभाजन बनते भाई का बचाव करते हुए कहा, "गुस्सा मुझे भी आया था. मैं भला इन पिद्दियों की धौंस में आता, लेकिन मेरे हनुमानजी का अनुशासन हो गया. इष्टदेव की बानी के आगे झुक जाना पड़ा."

"पाद का बहाना खांसी. जो मन में आये सो करो. भयवंद (भ्रातृत्व) के चलते हमें बोलना पड़ा." गांववालों ने अपने को इस परपंच से साफ हिलगा लिया.

समधी बेटे को समझाने लगे कि वह भी राजी-खुशी स्वीकार कर ले.

लड़के ने सुना तो दिल थाम लिया. जब हाड़ में पहली हल्दी लगी उसी बखत सपनों की बारात सजा वह जा पहुंचा दुलहिन के पास और अहसास के हाथों उसकी मांग में सिंदूर रच दी थी. तब से तो जो ललाई चढ़ी कि बाल सूरज की पहली जोत फीकी पड़े. सारी दुनिया रंगीन हो उठी, चौफेर रक्तवर्णी गुलाल-कुंकुमे उड़ने लगे थे...'लाल गलइचा, लाली पलंगिया, लाली रे तकिया.' हर रात बिला नागा ख्वाबों की सेज लूटता रहा वह. उमंगों के पंख पर सवार राम जाने वह किस-किस दुनिया के अजायब का दीदार कर आया. माया के सरोवर में रोज कंवल खिलते और अपने हाथों वह उनका दल उघाड़ता. लेकिन भाग्य और संयोग से गज और ग्राह ने कुछ यूं घमासान मचाया कि सारे के सारे कंवल कीचड़ में लोट गये, पूरे सरोवर में डामर घुल गया.

बहुतेरे जतन के बाद कांपती आवाज में बोला वह, "जिससे गणना बैठी, लगन उचरी, वह राम-द्वारे सिधार गयी. मेरा भी तो मानुष का कलेजा है, कोई बरद नहीं हूं कि मउवार जिस-तिस नाद पर खूंटा गाड़ कर बांध दे." मन की कदराई काट वह शान बघारने लगा, "अपने पैर में कुल्हाड़ी मत मारें. यदि बरजोरी विवाह हुआ भी तो मैं लड़की को खूब तंग करूंगा. गोबर पथवाऊंगा इससे. छोड़ दूंगा तो भर जिंदगी करम धुनती रहेगी."

रामजवाहिर ने लपक कर उसकी काकुल पकड़ ली, "अपने घर इसे चूरा भी बना डालोगे तो हमारा क्या जायेगा? अब तो यह तुम्हारी बेकति हुई."

"कुआं उड़हनी बेटी बिअहनी...यानी इसके बाद आप लोगों को तनिक भी मतलब न रहेगा अपनी बेटी से?"

"तुम हरदम उज्जडपना करते हो, रामजवाहिर!" पंडितजी ने दुलहे को छुड़वा दिया और उसे अलग ले जाकर सीख देने लगे, मतलब तो खूब रहेगा बचना. बेटी तो हमेशा लेती है नैहर से. ऐसी ससुराल तुम्हें दीया लेकर ढूंढने से भी न मिलेगी. उधोसिंह बड़ा सखरज आदमी हैं. तीज-तेवहार पर कुछ-न-कुछ देते ही रहेंगे, हर-हमेस. बूढ़ा जाओगे तब भी इस घर में दामाद का मान-आदर घटनेवाला नहीं."

"वह तो शाम से देख ही रहा हूं, ऐसा खातिर बांस!" दुलहा जल भुन गया, "खातिर रह गयी और बांस ठेल दिया इन लोगों ने महमंड तक."

"हां बेटा, चुपचाप सिंदूर दान कर दो." समधी ने बेटे को उकसाया, "मैं अगाड़ी-पिछाड़ी खूब सोचकर ऐसा कह रहा हूं."

"आप भी ऐसा चाहते हैं बाबूजी?" लड़के को आश्चर्यमिश्रित दुख हुआ.

"मैं कौन हूं चाहनेवाला?" इस बार वह प्यार से बोले, "जब हनुमानजी ही ऐसा चाहते हों तो..."

लड़का चीखा, "शादी के बाद मैं कहीं भाग जाऊंगा."

"उफर (नष्ट) पड़ जाओ." समधी ने टका-सा जवाब दिया, "खेत बधार का एक भुरकुस ढेला तक न दूंगा तुम्हें. ऐसा जान लूंगा कि बेटे ने 'मुंह करखी' लगा ली या पतोहू ही विधवा हो गयी."

बेटीवालों को खुशी हो रही थी. अब तो समधी ही उनके प्रवक्ता बन गये हैं. पंडितजी ने कसकर कोर दबा रखी थी उनकी. बाराती चुप्पी मार गये थे...इधर से ध्यान हटाकर सब नाच देखने में खप गये थे.

दुलहे ने आखिरी कोशिश की, "जिसके साथ मन बसाया वही साथ तोड़ गयी. मन तो कोई जिस नहीं कि लासा लगाकर किसी के साथ साट दिया जाये. ऐसी 'अनेत' मत कीजिए...बेमन का ब्याह कनपट्टी पर सेनूर."

"स्तनपान दाहिने का किया जाये या बायें का, दूध की मिठास में कोई फर्क नहीं पड़ता." पंडितजी रसीली बातें करके दुलहे के सूखे मन को गलबलाना चाहते थे, "तरकुल बराबर कद के बड़े तो हो गये, पाहुन जी! लेकिन अकल के मामले में मोथा ही रहे. सिंदूर मांग में दररो या मनपट्टी पर, खाट उसी काम के लिए चरमरायेगी, जिसके लिए विवाह का विधान है."

"वह जब तक सयानी होगी, तब तक मैं ढलान उतर रहा होऊंगा." वह पस्त-सा हो चला, "पता नहीं आप सरीखा ग्यानी आदमी इस बेमेल जोग को कैसे स्वीकार रहा है?"

"लगता है तुम्हें वात्स्यायन मुनि की पोथी भी पढ़ानी पड़ेगी." पंडितजी की खिचड़ी मूंछों तले चिकनी मुस्कराहट फूट पड़ी, "गृहस्थाश्रम का भेद न मालूम होने से ऐसा बोल रहे हो. अरे, मरद की मणि परसते ही लड़कियां भक से जवान हो जाती हैं कीकर-करील की झाड़ की तरह. हृष्ट-पुष्ट तुमसे छोटी बेकति रहेगी तो बेमारी-हेमारी में सेवा-सहाय भी खूब करेगी."

"दूध पीती बच्ची मेरी सेवा क्या फोद करेगी." लड़के की नसें तन गयीं. वह सिर खुजलाने लगा, "उलटे उसके लिए ही मुझे गाय पालनी पड़ेगी."

एकबाल सिंह के कान खड़े हो गये. उन्होंने पंडितजी और बेटे को एक तरफ घसीट कर ले जाते हुए कहा, "कभी-कभी तेरे दिमाग से भी अलबेली जुगत फूट पड़ती है! भली याद दिलायी! अच्छा मौका है—गाय के लिए अड़ जाओ, कहो कि इसके लिए मैं दूध कहां से लाऊंगा?" वे सदानंद पंडित पर भी दबाव डालने लगे, "देखिए पंडिज्जी, सिर्फ आपके कहने से मैं थूका चाट रहा हूं. सिर्फ विवाह का रस्म पूर ले और पतोहू घर चली जाये इसके बाद तो उद्धव सिंह को आप मालूम पड़ जायेगा कि बाघ के दांत गिनने में कितना सुख मिलता है. लेकिन इसके पहले एक गाय दिलवा दीजिए, वरना मैं फिर मुकर जाऊंगा."

"यदि लड़की को कुछ हुआ तो आपको खपड़ी में भीख मंगवा दूंगा, एकबाल सिंह जी! मैं भी ब्राम्हण का बच्चा हूं और लड़की भी किसी डोम-धरिकार की नहीं है." पंडितजी की नाक लाल हो गयी.

"अरे-रे-रे ब्राम्हन-देवता, नराज न होइए. मैं तो खीस-पिरित में बोल गया ऐसा. वरना लड़की से मेरा कैसा बैर?" एकबाल सिंह अच्छी



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तरह जानते थे गांव जवार में पंडितजी के रसूख को. वे खुशामद पर उतर आये, "लेकिन, महाराज जी, मुझे एक गाय जरूर दिलवा दीजिए."

"गजब कफनघसीटू हैं आप भी!" पंडितजी कुटिलता से बोले, "आप के कहे अब ये भेंड़े का बाल तक नहीं देंगे." वे लड़के की आंख में अपनी तिरछी नजर घोंपते हुए उसका मन टोने लगे, "हां, दुलहा तैयार हो और मांगे तो मैं दिलवा सकता हूं."

एकबाल सिंह ने भकुआये खड़े बेटे को चिकोटी काटी, "मांगता काहे नहीं रे, उजबक का सार?"

उसका तो 'स्व' जैसे निचुड़ गया था. अपने बाप के गुन-गोरख से वह परिचित था, अब ससुरालवाले भी जबरजंग मिल गये. उसने खुद को परिस्थितियों के हवाल कर दिया. भागते भूत को जो मिले, कुनमुनाते हुए उसने गाय की फरमाइश कर दी.

उद्धव सिंह ने सुना तो लगा जैसे पैरों तले घी की गगरी ढुलक गयी हो. वे बेचैन होकर चक्कर काटने लगे, "अभी पिछले साल ही तो ददरी से चार हजार में गाय खरीदी है. अब यह नया बखेड़ा किसने लगाया?"

पंडितजी उनको वक्त की नजाकत समझाने लगे, "बौरहपना मत कीजिए. दुलहा तैयार नहीं हो रहा था. गाय के नाम पर किसी तरह मनवा सका हूं. चार हजार का नाम सुनकर कांखने लगे. इसी लड़की का कहीं दूसरी जगह विवाह तय करेंगे तो चालीस हजार लगेगा. अगर आप गज बचाने के लिए थान हारना चाहते हैं तो मैं अलग हट जाता हूं."

उद्धव सिंह ने बड़ी बेदिली से दहेज में गाय देना स्वीकार किया.

दुलहे के सामने पालकी रखी गयी. मंत्रबिद्ध-सा बैठते हुए वह सिंदूर-दान के लिए चल पड़ा.

मंगलेश्वर सिंह मन मसोसकर बैठ गये...चुपचाप, ऊपरले होंठ से निचले को दबाये. बारातियों की हालत देखकर तरस खाने लगे. गांना और दारू पी-पीकर सब की आंखें उबलने-उबलने को हो रही थीं. उनके मुंह से निकले चिलम और सिगरेट के धूंए का भभूका चारों ओर बिसांयध गंध फैला रहा था. सभी रंडियों के उत्तेजक नाच देखने और दुअर्थी गीत सुनने में मदहोश थे. पूरी बारात उन्हें किसी ऐय्याश फौज की तरह लगी जिसका सेनापति शत्रुओं से ठगा जा चुका हो और फौज को अपनी विलासिता के सामने जीत-हार का तनिक भी मलाल न हो.

पंडितजी ने खुशी-खुशी 'अंबे-अंबा-अंबालिके' के मंत्र-पाठ से विवाह-प्रक्रिया आरंभ की. पूरी विधि लगभग ढाई-तीन घंटे चली. कोई ऐसे-वैसे कर्मकांडी थोड़े थे सदानंद पंडित, काशी के आचार्य थे. कोई घंटे भर तो वे रासमणि की आत्मा को ही साधते रहे थे, ताकि भविष्य में किसी उत्पाद की आशंका न रहे.

अंतिम विधि के रूप में उन्होंने वर-कन्या को ध्रुवतारा देखने का निर्देश दिया. भागमणि पिसान की गंठरी की तरह पीढ़े पर पसरी जा रही थी. पंडितजी ने हिला-डुलाकर उसे सचेत करना चाहा. वे उसका चेहरा बार-बार आसमान की तरफ उठा रहे थे, लेकिन उनींदी आंखें धरती की ओर ही झुक जाती थीं. उन्होंने उकताहट महसूस की, "पाहुनजी, आप ही देख लीजिए. दोनों में से किसी एक के देखने से भी चलेगा. यह जो ध्रुवतारा है न...इस विवाह का साक्षी है. यह तारा इसके अटल होने का आशीर्वाद दे रहा है." वह वर से विशेष रूप में समझाते हुए बोले, "इस विवाह को अटल बनाने का पूरा भार अब आपके ऊपर है. सप्तपदी के बखत आपने जितनी शपथें खायी हैं, उन सबों को जीवनपर्यंत मानना पड़ेगा. नहीं माननेवालों को पाप का भागी बनना पड़ता है."

इसी के साथ उन्होंने सात बार शंख ध्वनि करके पूरे विवाह का शुभांत कर दिया.

शाम से ही चमक बिखेरते रहे तारे अब धीरे-धीरे औचक होने लगे हैं. आसमान के पूरबी भाल पर रात की आखिरी सौगात लिये 'सुकवा' झलकता है. समधी हड़बोंग मचाते हैं, "सुकवा उग गया है. अब विदाई हो जानी चाहिए. हनुमानजी के हुकुम के मुताबिक भिनसार में काग बोलने के पहले ही."

औरतें अब तक की पीड़ा और मेहनत से बोझिल हुई तनिक कमर सीधी ही करने वाली थीं कि विदाई की सुनगुन शुरू हो जाती है. बड़ी कठिन साबित हो रही है विदाई...कल के अघट से भी कठिन.

भागमणि सो गयी है मां की गोद में. झकझोर कर जगाया जाता है उसे, "माया तज बबुनी! विदा होना है."

कहां विदा होना है? क्यों विदा होना है? मां की गोद से चिपक कर बिसुरने लगती है भागमणि. क्या समझे वह नादान...

डरी हुई पनियारी आंखें पूछती हों जैसे, मां, मैं तो तुम्हारी गोद में सो रही थी, सहसा नींद उचट गयी. यह किसके दरवाजे पर बाजा बजा, किसका विवाह रचा गया?

अनभल जग की अजब यह रीत, बलात् बनावे किसी को मीत. यहां पाप है दिल से दिल का नाता, रिश्ता वही जो जग को भाता. मानुश दिल को लिये बेचारा, फिरता जग में मारा मारा.

कल तो केवल आदमी रोया था, आज माटी रोती है, हवा रोती है, दसों दिशाएं रोती हैं. बैल, गाय, चरन, इनार, बाग-बगइचा, फूल, पत्ते रोते हैं...कुल-परिवार, सारा गांव रोता है. कुंहकार सुनकर नीम का पेड़ जैसे कांपने लगता है और उस पर रैनबसेरा डाली चिरई-चुनमुन 'किचपिच-किचपिच' कर रोने लगती हैं.

उद्धव सिंह बेटी को छाती से लगा लेते हैं, "बबुनी होSS...ओS...."

"बाबूजी, तू हमरा साथ ना चलबSS...?", पतले-पतले होंठ कांपते हैं भागमणि के.

"वहां अकेले जाना होता है, बेटी!" वे बाहर तक छलक आयी रुलाई को किसी तरह रोक पाते हैं.

काका हड़बड़ाते हुए आते हैं, "उधो, देर मत करो. बेला बीती जा रही है. इसकी तैयारी का जिम्मा मेहरारूओं पर छोड़ दो. चलो, समधी से भेंट लिया जाये." उनका गला भी भरा जाता है. चुपके से भागमणि के सिर पर हाथ फेरने लगते हैं. नन्हें-नन्हें हाथ उनके गले से चिपटते हैं, "तुहुं साथ ना चलबSS...? केहु नइखे जात हमरा साथ. सभे हमरे के भेजल चाहता."

जंगाली बहू लउंड़ी बनकर साथ जानेवाली हैं. वह भागमणि को खींचकर अलग करती है. मां अपनी तरफ खींचती है, भौजी अपनी तरफ, चाची अपनी तरफ...इनके बीच सेमल के गाले की तरह फहर-फहर उड़ती है भागमणि.

धोती, धान और धन से भरा डाल लिये बेटीवाले मिलनी कारस्म पूर रहे हैं. बराती अपने-अपने ऊंचे आसन पर जम गये हैं. घराती अपनी-अपनी उमर और रिश्ते के हिसाब से गले मिलते हैं. खूंट में धान बंधी धोती पैरों पर रख दी जाती है, धन हाथ में थमा दिया जाता है और दोनों पक्ष परस्पर अंकवार बांधकर हुमच-हुमच कर मिल रहे हैं. सबसे आखिर में उद्धव सिंह समधी के गले लगते हैं तो समधी उन्हें कसकर चिपटाते हुए जकड़ लेते हैं, "कल तो बड़ा बाघ बन रहे थे, जोड़ीदार! अब आज फरिया लिया जाये कि किसकी छाती में कितनी पसली है."

सारा गिला जाता रहा और लोग मुस्करा पड़ते हैं. उद्धव सिंह फफकते हुए उनके पैरों पर झुक पड़ते हैं, "कुछ भूल-चूक हुई हो तो माफी मांगता हूं. अपनी आंख की पुतरी सौंप रहा हूं आपको, चाहे जैसे रखें."

गंभीर हंसी हंसते हैं समधी, "बेफिक्र रहिए. पतोहू मेरी जायी के समान रहेगी."

"कौन बाप बेफिक्र रह सकता है, समधी जी?" अचानक उद्धव सिंह की नजर डगर की ओर उठ जाती है.

भागमणि की डोली गांव की कुलदेवी के चौरे तक पहुंच गयी है. नीचे उतार कर कुलदेवी के चरणों पर उससे मत्था टेकवाया जा रहा है...जहां जाये, देवी मां सहाय!

उद्धव सिंह देखकर भी उधर नहीं देखना चाहते.

कारज संपन्न हो गया है. सारा कुछ एक चक्रवात की तरह गुजरा



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है....एक अदम्य वेग में सबने उड़ान भरी है...एक निश्चित ऊंचाई छूकर फिर लौट आये हैं. सब एक जगह मंड़वे का भोर अपने-आप में सारा अर्थ खोलता है—सब कुछ बह गया, सिर्फ गाद रह गयी है.

कोई नीम की जड़ पर बैठा, कोई चरन पर, कोई जमीन पर ही टाट-चटाई घसीट कर आड़े-तिरछे पसर गया है. जंभाइयां लेकर, बदन तड़काकर गत शौर्य की विरुदावली गायी जाने लगी है—किसने कब, क्या कहा, कैसा बर्ताव किया, किसने ऐन मौके पर ऐसा न किया होता तो क्या हो जाता.

हरारत मेटने के लिए रामजस काका चिलम सुलगा लेते हैं. पीठ पर चरन की टेक लगाकर परम तृप्ति के भाव से काका गहरा कश खींचते हैं, ''अब जाके तनिक जी में जी पड़ा, पंडिज्जी! उधो की कदराही देखकर मुझे तो बड़ा डर लग रहा था, लेकिन हनुमानजी की किरपा से सब नीके-नीक पार लग गया.''

उद्धव सिंह की ओर बदन घुमाते हुए सदानंद पंडित गदगद होकर बोले, ''जजमान की कदराही क्षणिक थी, वीरोचित थी. यह तो राजा भगदत्त से भी बली निकले.''

उद्धव सिंह थकान से चूर-चूर हो रहे हैं, पूरी देह पिरा रही है. मगर प्रशंसा सुनकर चौकन्ना हो जाते हैं, देखें और क्या-क्या कहते हैं पंडितजी. उनकी थकान और दर्द की तासीर भी बदल जाती है.

''अजी...हां,'' हठात रामजस काका को याद आता है, ''ए पंडिज्जी, उस हाथी का क्या हुआ?''

''बताया तो था.''

''पूरा बताने का मौका कहां मिला?'' जगमोहन सिंह बताते हैं, ''सिर्फ इतना कि अर्जुन ने धनुष डाल दिया और मरा हाथी भी जस का तस खड़ा रह गया.''

''अच्छा-अच्छा!'' पंडितजी थलथला कर हंसते हुए कथा-सूत्र जोड़ने लगते हैं, ''राजा भगदत्त अपनी चातुरी से रहस्य को छुपाकर मंद-मंद मुस्करा रहे थे. तब तक कृष्ण भगवान ने हतशौर्य हो चले अर्जुन की पीठ थपथपायी, 'साधु-साधु अर्जुन! अब उठा भी लो गांडीव.' अर्जुन मलिन-मुख हो बोले, 'नहीं भगवन! प्रतिज्ञा के अनुसार अब मैं पराजय स्वीकारता हूं.' कृष्ण भगवान ने हौले से भेद खोला,

**कहेउ कृष्ण पारथ सुनहु, प्राण तज्यो गजराज.**
**राख्यो है नृप जंघ गहि, अस्त्र तज्यो केहि काज?''**

रामजवाहिर को यह बात अविश्वसनीय-सी लगी तो हिचकते हुए वह शंका करता है, ''हाथी भला जांघों के बल टिक पायेगा?''

रामजवाहिर का प्रश्न रमेसर को बड़ा अच्छा लगता है. वह पंडितजी से उलझ पड़ता है, ''आप भी क्या बात करते हैं पंडितजी! किसी भी अच्छे ग्रंथ में यह कभी नहीं लिखा होगा कि सब कुछ आंख मूंद कर मानते चलो.''

पंडितजी का मन व्यंग्य से कसैला हो उठता है. फिर भी संदेह की बात उठ ही गई तो उसका निराकरण न करना उनकी पूरी पंडिताई के लिए चुनौती है. झुंझलाकर वे रामजवाहिर से कहते हैं, ''इसे ऐसे बूझो....तुम अपनी साइकिल से बिना उतरे सिर्फ पैर रोपकर उसे खड़ा नहीं कर देते हो? राजा भगदत्त क्या तुम लोगों की तरह पिलपिला आदमी थे...लेकिन बरिआर खां नाम. जांघ पर हाथी टिका लेना उनके लिए कौन बड़ी बात थी?''

''न जाने कब तक ये लोग मेरे हाथी से चिपके रहेंगे और उसका हौवा खड़ा कर दूसरों को भी डराते रहेंगे.'' रमेसर घायल चीते-सा गुर्राता है, ''यह कथा-पुराण ही होता रहेगा? रासमणि का प्रवाह नहीं करना है, क्या?'' वह अकेले उठ कर जाने लगता है.

रामजवाहिर शंका प्रकट करके फेर में पड़ गया है. वह क्षमा मांगने के अंदाज में कहता है, ''आप सुनाइए पंडिज्जी! मैं बूझ गया हूं.''

पंडितजी पुराने ढर्रे पर लौट आते हैं, ''हां...तो, भगदत्त की पोल खुलते ही अर्जुन ने एक अर्द्धचंद्राकार बाण से उनका मस्तक काट डाला. मृतक गयंद सहित नृप परेऊ; झलकत मुकुट जरावन जरेऊ. अर्जुन रण कीन्हीं यह करणी; योजन तीनि पर्‌यो गज धरणी.'' दार्शनिकों की तरह गंभीर होकर कहते हैं पंडितजी, ''प्रभु की लीला भी विचित्र है! वही हाथी कौरव दल को अब तक त्राण दिलाता आ रहा था, लेकिन उसका मृत शरीर जब धरती पर गिरा तो तमाशा देखती कौरव सेना के कितने ही महत्वपूर्ण वीर चींटियों की तरह कुचल कर मर गये.''

''मरा हाथी गिरा भी तो अपने ही आदमियों को कुचलते हुए....'' रमेसर जोर-जोर से हंसने लगता है. वह रासमणि की लाश पीठ पर टांग लाया है.

अचकचा देखने लगते हैं लोग...हतप्रभ हो चले लोग, मौन, स्थिर जैसे अपनी-अपनी जगहों पर कील दिये गये हों सभी.

पीठ पर रासमणि की कठान लादे किसी कापालिक की तरह लग रहा है रमेसर.

लाश अकड़ गयी है, चेहरा ऐंठकर विकृत हो चला है. हल्दी-उबटन से पीली हुई देह पर काले-भूरे पेटाढ़े रेंग रहे हैं. तेल चुपड़े बालों में भूसा सट गया है. तनिक भी हिल जाने पर चिनगारी की तरह झरझर झड़ रहा है भूसा. चूहे-छछूंदर जैसे जीवों ने रासमणि के नाक-कान का मांस नोच लिया है, साड़ी-ब्लाउज तक कुतर डाला है. साड़ियों के गुंझल में फंसी एक चुहिया लद से गिरती है और 'चीं-चीं-ईं' करती हुई एक तरफ भाग जाती है.

उद्धव सिंह विस्फारित आंखों से देखते रह जाते हैं बेटी को. लगता है, उनकी बायीं आंख से भागमणि निकल कर भाग रही है. उनकी दायीं आंख से रासमणि. □

०८०५८६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्म : 26 फरवरी, 1956
संप्रति : टिस्को मेंटिनेंस शॉप में कार्यरत
सारिका में आते हुए लोग स्तंभ में प्रकाशित व प्रकाशनार्थ तैयार कहानी संग्रह 'किरचों में विभक्त'
संपर्क : द्वारा संजय प्रिंटिंग प्रेस, प्रो. गम्हरिया, जमशेदपुर (बिहार)

जयनंदन

# सिर्फ पैसा

**दरअसल जब तक पीड़ा और कष्ट टुकड़ों में विभक्त रहेंगे, तब तक प्रखर और सार्वजनिक विरोध का वातावरण तैयार नहीं होगा. लेकिन कोई भी पीड़ा जब आम हृदयों की अनुभूति बन जायेगी तो उसी रोज बगावत शुरू हो जायेगी.**

मेरी कहानी यहीं पर समाप्त होती है कि मेरी कहानी में न पात्र है और न पात्र में कहानी. यहां सिर्फ पैसा है. वैसा पैसा जिसके उपार्जन में भावना, अस्तित्व, नैतिकता, संवेदना सब दांव पर लग चुकी हैं. लेकिन कहानी के लिए तो मानसिक धरातल को छूने वाली इन अनुभूतियों की सख्त जरूरत है न? ज़बकि औद्योगिक क्षेत्र में बसे मेरी कहानी के पात्र पैसा कमाने के लिए जीते हैं या जीने के लिए पैसा कमाते हैं.

आप कह सकते हैं कि हर आदमी यही करता है तो मैं इसे नहीं मानता. मान लिया जाये कि सिर्फ जीने के लिए पैसा कमाना है और पैसे के लिए जीवन जीना है तो फिर मान, प्रतिष्ठा, गौरव, गरिमा, अहम्, स्वाभिमान आदि शब्द कहां से आ गये हैं? इसका मतलब है कि पैसा कमाते हुए भी इन्हें बचाया जा सकता है.

मैं यही कहना चाहता हूं कि मेरे कहानी के पात्रों में यह सब नहीं बचा है. और जिसमें यह सब नहीं बचा है उसकी भला कोई कहानी क्या होगी. अगर आप मेरे इस विचार से सहमत नहीं हैं, तो मेरे उदार, प्रिय एवं कहानियों के नियमित पाठक! आप खुद ही तजवीज कर लें—क्या मेरे पात्र में कोई कहानी है या मेरी काहनी में वैसा पात्र है जिसके साथ दया, सहानुभूति एवं सौहार्द्र उपजते हों?

नमस्कार! लीजिए हडबड़ी में भागते हुए त्रिपुरारी का अभिवादन स्वीकार कीजिए. सुबह की पाली में छः बजे से उसे ड्यूटी पकड़नी है और बेचारा सात मील से साइकिल खींचता हुआ आ रहा है. समय से दो-चार मिनट पहले पहुंचने पर गेट की दुकानों में चाय-पान कर लिया करता है. लेकिन आमूमन ऐसा मौका कम ही मिलता है. आप फर्ज कीजिए कि उसे कितना पहले बिस्तर छोड़ देना पड़ता होगा. अगर कायदे से वह नित्य क्रिया-कर्म से निवृत होना चाहे तो उसके लिए एक घंटा और रख लीजिए. लेकिन ज्यादातर इसे भी छोड़ना ही पड़ता है.

कभी-कभी तो ऐसा होता है कि प्रेशर आया रहता है और उसे ड्यूटी के लिए तेजी से भागना पड़ता है. आज ही देख लीजिए न! सवा पांच पर उसकी नींद खुली. घड़ी देखी. फटाफट कपड़ा व जूता पहना. मुंह में दातुन दबायी और सायकिल पर सवार हो गया.

लाख ताबड़-तोड़ पैडल मारे लेकिन गेट पर पहुंचने से पहले साली सीटी बज ही गयी. सब लोग ट्ड्डिे की तरह फर्र-फर्र उड़ने लगे. किसी की चाय पीते-पीते जीभ जल गयी, कोई आधी ही चाय पी सका, कोई खुचरा

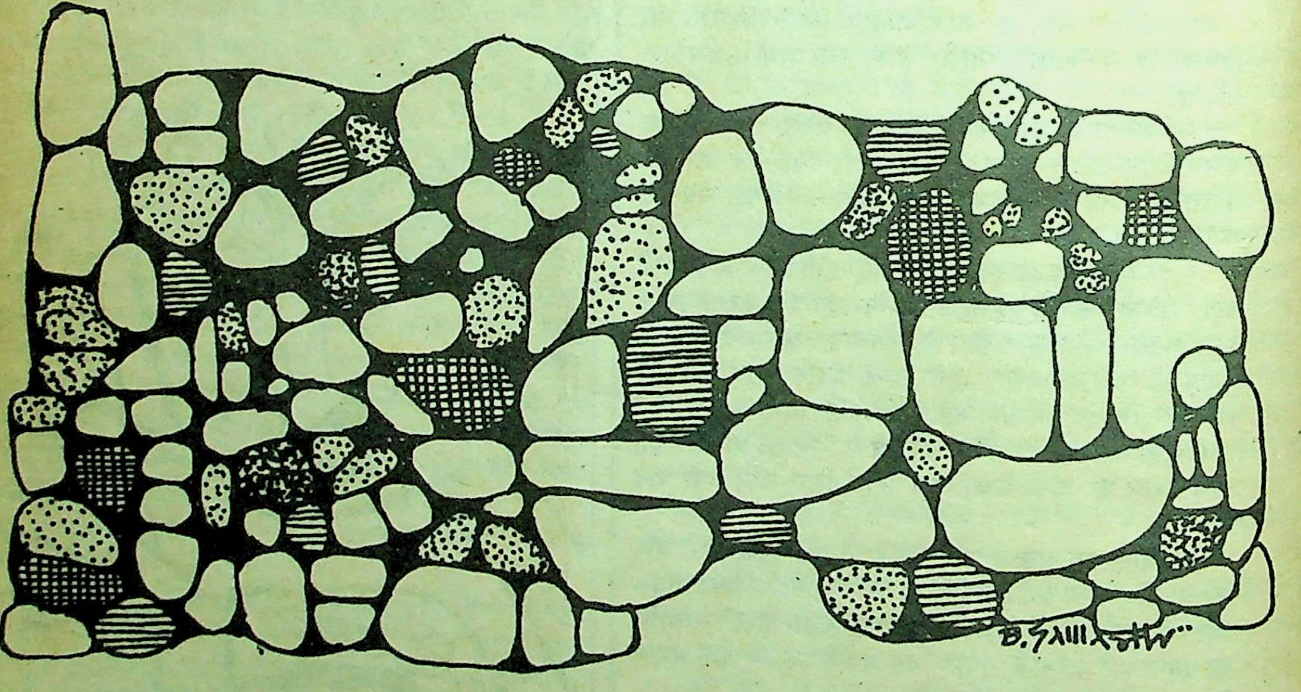



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पैसा भी न ले पाया, किसी का सिगरेट धरते हुए हाथ जल गया. त्रिपुरारी तो गेट पर रुका ही नहीं. चूंकि सीटी भी बज गयी थी और लैट्रीन का प्रेशर भी जान मारे जा रहा था. टाइम ऑफिस पहुंचते-पहुंचते दो मिनट लेट हो ही गया. बड़ा घिघिया-उघिया कर टाइम कीपर को मनाया. साइकिल लॉक करके जॉब पर जाने लगा तो रास्ते में ही सुपरिटेंडेंट खट्टा साहब भेंटा गया. लो साले इसको भी चेकिंग में आज ही आना था.

फिर क्या? दो मिनट के लेट में दस मिनट की धुआंधार फायरिंग शुरू. त्रिपुरारी चुपचाप सुनता रहा. सोचा—कुछ बोलने से वह और झाड़ने लगेगा. जल्दी छोड़ देगा तो पहले प्रेशर से निजात पाना जरूरी है. बेचारा बेदम-बेदम हो रहा था. लगता था कि अब पेट फटा कि तब.

जब मि. खट्टा का जी-भर गया तो त्रिपुरारी लगभग दौड़कर शौचालय पहुंचा. तब तक बेचारे का अंडरवियर अंशतः खराब हो चुका था. वहां भी वह जल्दी-जल्दी निपटाकर अंडरवियर धो-पोंछकर अपनी मशीन पर आया. नसीब देखिए, यहां भी फोरमैन ने उसे लपक लिया. लगभग गाली-गलौज की भाषा उसे फिर सुननी पड़ी.

आप सोच रहे होंगे—यह सब उसके लेट उठने के कारण हुआ. हां यह ठीक है. तो क्या वह जान-बूझकर लेट उठा. अरे भाई! कान के पास अलार्म लगाकर सोया था. तब भी नींद नहीं खुली. कैसे खुलेगी नींद? एक तो वह रात ग्यारह बजे ओवर टाइम करके लौटा. खा-पीकर बिस्तर पर जाते-जाते बारह बज गये. बच्चे की तबीयत भी बहुत जोरों की खराब थी. वह कल ओवर टाइम में नहीं रुकना चाहता था. लेकिन खट्टा साहब सर पर सवार हो गया—कोई बहाना नहीं चलेगा. जॉब अर्जेंट है रुकना ही पड़ेगा. रुक गया. नहीं तो अनुशासनात्मक कारवाई होती.

बदन के पोर-पोर पर थकान के पर्वत लादे बारह बजे सोया. पत्नी भी बच्चे की बीमारी के कारण करीब-करीब जागती ही रही. सुबह के समय उसे भी नींद आ गयी. बस बेचारे की बन गयी आज की यात्रा.

फोरमैन से काम समझ-बूझकर ड्राइंग-रूटकार्ड देख-वेख लिया. उसने बताया कि एक काम वेरी-वेरी अर्जेंट है. जिसके लिए प्रोडक्शन मैनेजर एक घंटे बाद आने वाले हैं. त्रिपुरारी ने क्रेन बुलाया. जॉब बांधा. लेथ चक को 800 आर.पी.एम. पर तथा टूल कैरेज को 1.2 एम.एम. प्रति रिवोल्यूशन पर सेट करके काम शुरू कर दिया. ओ.डी. फिनिश करने के बाद ड्रिल, बोर और थ्रेडिंग किया. फिर क्रेन से जॉब रिवर्स करके फिनिश कर दिया. काम करने की उसकी रफ्तार देखने से लगता था कि वह मशीन का ही कोई पार्ट है.

मैनेजर आया. जॉब का इंस्पेक्शन हुआ. पता चला ओ.डी. में .08 एम.एम. मैटीरियल डाउन हो गया है. अर्जेंट रिक्वायरमेंट और जॉब रिजेक्ट. और क्या होगा? सुबह-सुबह ही तो मूड चौपट कर दिया गया. मैनेजर का लताड़ पुनः शुरू. लो अब चार्जशीट मिलने का इंतजाम हो गया. पकड़ो यूनियन का पैर.

चाय-नाश्ता के लिए सीटी बजी. अनमनेपन से त्रिपुरारी कैंटीन पहुंचा. 15 मिनट का समय. लंबी लाइन. सात मिनट गुजर गये तो उसका नंबर आया. दो प्याजी, एक इडली और दो जलेबी लेकर बैठा. चखकर देखा—सब ठंडे और बेस्वाद. सोचा—इडली खा लेते हैं. आधी खाया तब तक सीटी बज गयी. देर होगी तो फिर डाटेगा. बिना चाय चखे ही वापस चला आया. फिर काम में भिड़ गया.

लंच हुआ तो मूड बेतरह उखड़ा था. कैंटीन में थोड़ा-सा भात-दाल खाकर मैदान में अकेले ही सुस्ताने चला आया. सोचा—आज भी अगर ओवर टाइम के लिए रुकना पड़ा तब बड़ी आफत हो जायेगी. पता नहीं पत्नी बच्चे को अकेले आज भी हॉस्पिटल ले गयी होगी या नहीं. उसकी आंख थोड़ी-थोड़ी लगने लगी. तब ही ऑफिस के क्लर्क शिवदयाल की आवाज उसे सुनायी पड़ी.

"भाई त्रिपुरारी! मालूम हुआ नये मुख्यमंत्री का शपथ ग्रहण हो गया."

त्रिपुरारी यों चौंका जैसे सप्ताह-भर की नींद से जागा हो. नया मुख्यमंत्री! तो पुराना मुख्यमंत्री जगदीश कब हटा?

"मालूम है, कौन आया है इस बार? शशिशेखर सिंह." उत्साह में शिवदयाल बोलता जा रहा था.

"ठीक ही है." टालने के अंदाज में त्रिपुरारी ने कहा.

"सिर्फ ठीक ही है? अरे यार तुममें तो कुछ फर्क ही नहीं पड़ा. स्साला इतना भ्रष्ट और निकम्मा मुख्यमंत्री से पिंड छूटा और उसकी जगह आशा की नयी किरण लेकर दूसरा आदमी आया और तुममें कोई हर्ष-विषाद नहीं."

शिवदयाल झंझलाकर कैंटीन की ओर बढ़ गया, "तुम लोग साले वर्कर के वर्कर ही रहोगे."

त्रिपुरारी सोचता रह गया—सचमुच वह वर्कर का वर्कर ही रह गया. कारखाने के अंदर भी और बाहर भी. घर में रेडियो है, अखबार है लेकिन उसे पता तक नहीं कि राज्य का मन्त्रिमंडल बदल गया. काम करने से जितना परेशान त्रिपुरारी नहीं हुआ था उससे ज्यादा पस्त वह शिवदयाल के इस वाक्य से हो गया.

लेकिन दूसरे ही क्षण उसे यह सोचकर थोड़ा भरोसा हुआ कि इधर सप्ताह भर से वह ओवर टाइम एवं बच्चे की तबीयत को लेकर ज्यादा व्यस्त रहा. इसीलिए उसे पता नहीं चला. लेकिन उसके साथ के और वर्कर तो जानते ही होंगे. चलो, हरजीत, शिवनाथ, रामबालक, इब्राहिम, थॉमस आदि से पूछकर पता कर ही लेते हैं. ये लोग समसामयिक विषय की खूब जानकारी रखते हैं. जैसे—आस्ट्रेलिया में आज भारत ने कितने रन बनाये—कोई इनसे पूछ ले, तुरंत बता देंगे. हॉलीवुड में कबीर बेदी ने किस फिल्म में एक्टिंग की. इन्हें पूरा पता है. इंग्लैंड में फैशन के लेटेस्ट कौन-कौन से डिजाइन प्रचलित हैं, इन्हें जुबानी याद है. फिर महज राज्य की एक राजनीतिक उथल-पुथल का समाचार तो इन्हें ज्ञात होगा ही.

परंतु त्रिपुरारी भौंचक रह गया यह जानकर कि अत्यंत जागरूक एवं चालाक कहे जानेवाले इन लोगों को भी इसकी कोई जानकारी नहीं थी. वह महसूसता है कि शिवदयाल ने ठीक ही कहा कि हम वर्कर के वर्कर ही रहेंगे.

ओवरटाइम के चक्कर से बचकर वह तीन बजे घर पहुंचा. उसे ऐसा लग रहा था कि आज वह ड्यूटी करने की जगह सौ-पचास जूते खाकर घर आया हो. थकावट से तो बदन टूट ही रहा था—प्रताड़ना और हया से भी मन बुझा-बुझा-सा था.

पत्नी कंपनी की डिस्पेंसरी से दवा ले आयी थी. लेकिन बुखार ज्यों का त्यों था. उसने दवा देखी तो चार पुड़िया फंकी थी और शीशी में लाल मिक्चर. इसी को कहते हैं इलाज की सुविधा. उसका मिजाज बौखला गया. उसने सारी दवा उठाकर घर से बाहर फेंक दी—और दारू भट्टी की ओर बढ़ गया.

वर्कर का वर्कर बने रहने की यथास्थिति से उबरने के लिए त्रिपुरारी में एक बेचैनी समा गयी. वर्कर का वर्कर बने रहने में जीवन सचमुच एकरस, बोझल, कठिन एवं ऊबाउ हो गया है. हमें वर्कर होने के बावजूद कुछ और होना चाहिए, कुछ अतिरिक्त सोचना, समझना चाहिए. तब ही कोई और आयाम मिलेगा, हर्ष-विषाद का टाइप बदलेगा. देश-दुनिया के विषयों पर मंत्री, अधिकारी या उससे संबद्ध कर्मचारी के अलावा जरूरी है कि हर आदमी उस पर अपनी एक राय बनाये, एक प्रतिक्रिया व्यक्त करे. तब ही जन-जागरण का सही वातावरण बनेगा. तब ही कोई भी परिणाम पर आम आदमी के सोच का प्रभाव पड़ेगा.

त्रिपुरारी एक विचार बनाता है—अब वह अच्छी-अच्छी पुस्तकों एवं स्वस्थ स्तरीय पत्रिकाओं का अध्ययन करेगा. वह रिक्रियेशन क्लब जाने लगा. कॉलोनी कैम्पस में कंपनी द्वारा खोला गया रिक्रियेशन क्लब. ड्यूटी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के बाद के समय को बिताने का ठिकाना.

उसने रीडिंग-रूम में बैठकर देखा—एक से एक स्तरीय एवं सशक्त पत्रिकाएं.

त्रिपुरारी ने देखा—हरजीत, त्रिलोचन, शिवनाथ बैठे थे. सब कोई न कोई पत्रिका में उलझे थे. भाई वाह! मानना होगा, इन लोगों की पसंद तो बेहद उच्च स्तरीय है. त्रिपुरारी में ढेर सारा उत्साह उमड़ आया. तब भी साला शिवदयाल हम लोगों को वर्कर का वर्कर समझता है. जरा अब कोई चीज पूछकर देख लेना. साले ऑफिस में काम करते हैं तो बाबू हो गये. उसे बड़ा फख्र हुआ अपने दोस्तों पर. उसने उचककर देखा कि देखें सब लोग क्या पढ़ रहे हैं.

हरजीत की आंखें किसी फिल्मी मासिक में अर्द्धनग्न नायिका की रंगीन तस्वीर घूर रही थीं. त्रिलोचन किसी साप्ताहिक में अपना भाग्य-फल देख रहा था. शिवनाथ की नजर चुटकुले पर टिकी थी.

त्रिपुरारी का सारा हौसला पस्त हो गया. साला शिवदयाल ठीक ही कहता है. निराश मन उसने भी एक कुर्सी संभाली और सामने एक साप्ताहिक खींच लिया. जिसके आवरण पर लिखा था—'असम समस्या का उग्र रूप-जन जीवन अस्त-व्यस्त'. क्या हो गया भई असम को. वह इसकी उलट-पलट करने लगा.

कुछ ही देर बाद थॉमस, इब्राहिम, रामबालक आ गये. हरजीत, त्रिलोचन आदि सस्वर खड़े हो गये—'चलो भाई चलो, आ गया सब, आ गया.'

दो मिनट रुकने का इशारा करके वे लोग भी पत्रिका उलटने लगे. त्रिपुरारी ने गौर किया कि रामबालक ने गैस और अपच की डॉक्टरी सलाह ढूंढ लिया था. थॉमस किसी सत्यकथा में बलात्कार प्रकरण की फोटो देखने लगा था तो इब्राहिम सबको यहां से हटने के लिए कह रहा था.

"अरे भाई! बंद करो इन पोथी-पत्रों को. पढ़ने के इतने शौकीन थे तो लोहा कूटने क्यों आ गये?"

"चलो भाई, चलो!"

"हां भाई चलो!"

सब लोग अंदर चले गये.

उनमें से कुछ ताश खेलने लगे तो कुछ कैरम बोर्ड. त्रिपुरारी ने लक्ष्य किया कि और जो पच्चीस-पचास वर्कर थे उनमें से ज्यादातर खेल-कूद में ही जुटे थे. दो चार लोग जो मैगजिन पढ़ रहे थे—उनमें से कोई क्रिकेट समीक्षा पढ़ रहा था, कोई फिल्म समीक्षा, कोई घरेलू व्यंजन बनाने की विधियां, तो कोई वैवाहिक विज्ञापन.

त्रिपुरारी ने असम समस्या से संबंधित सारी सामग्री पढ़ जाने का मंसूबा बनाया. और घंटे-डेढ़ घंटे में उसने सचमुच ही पढ़ लिया.

दुःख एवं आश्चर्य से वह दोहरा हो उठा कि असम की समस्या कितनी भीषण हो उठी है और इसके बारे में उसे नहीं के बराबर ही खबर थी. आदमी के कूपमंडूकता की भी हद हो गयी. स्साली दिन-दुनिया से कोई मतलब ही नहीं है.

उसे बड़ी बेसब्री महसूस होने लगी कि काश दो-चार दिलचस्प आदमी मिलते जिनके साथ बैठकर वह इस विषय पर कुछ बातें करता. नजरें घुमा कर उसने देखा तो कोई फुर्सत में नहीं था. सब शतरंज, ताश, टेबलटेनिस और कैरम में लीन थे.आखिर क्या राष्ट्रव्यापी समस्यायें इन्हें आंदोलित नहीं करती हैं? अगर करती हैं तो क्या ये सोने के समय जोरू के साथ इस पर बहस करते होंगे?

त्रिपुरारी एकाएक सोच लेता है कि यहां जो कुछ भी हो रहा है—भला या बुरा, ईश्वर की कृपा से बहुत है. नहीं तो इतने आलसी, मनमौजी, आत्मलीन और लगभग अचेत आदमियों की भीड़ में तो सब कुछ चौपट हो जाना चाहिए. आम लोगों की मानसिकता कितनी तटस्थ हो गयी है कि वे खेलकूद, फिल्म, व्यंजन एवं स्वास्थ्य चर्चाओं को ही स्वस्थ रुचि मानने लगे हैं.

उसका मन मचल उठता है—लगता है वह कॉलेज की उम्र को जीने लगा हो. काश! अभी शिवदयाल ही मिल गया होता तो असम के विषय में कुछ बातें होतीं तो शंकाओं का और समाधान हो जाता.

बहुत देर तक राह तकने पर भी जब शिवदयाल नहीं आया तो वह उसके क्वार्टर की तरफ ही निकल गया.

शिवदयाल घर पर ही मौजूद था. त्रिपुरारी को देखते ही उसने गर्म जोशी से स्वागत किया.

"आओ भाई. आओ. कैसे रास्ता भूल गये?"

"मैंने क्लब में तुम्हारी बहुत प्रतीक्षा की."

"मैंने क्लब जाना ही छोड़ दिया."

"क्यों कुछ बात हुई क्या?"

दोनों बैठ गये.

"यार वहां की ऊटपटांग बातचीत मुझसे सही नहीं जाती. लोग रीडिंग रूम में बैठकर ब्लू फिल्म की बातें करने लगते हैं, कलकत्ता के सोनागाछी की गप्पें हांकने लगते हैं, कभी-कभी तो खुद अपने मां-बाप को ही गाली बकने लगते हैं. कमीनगी की सीमा पार हो गयी है. यह सब मुझसे बर्दाश्त नहीं होता."

"आखिर कुछ सुनाओगे भी."

"सुनोगे? दो माह पूर्व की घटना है. रीडिंग रूम में तुम्हारे ग्रुप के सारे लोग थे. रामबालक, शिवनाथ, हरजीत, थॉमस, त्रिलोचन, इब्राहिम तथा दीनदयाल वेल्डर, करमसिंह मेकेनिक, सिद्धनाथ बनर्जी गेज मेकर. और रूपराम नंदी मार्कर के कॉलेजिएट सुपुत्रगण. वेस्टइंडीज में भारत की हार पर थॉमस एवं त्रिलोचन ने कपिलदेव की भर्त्सना की. इस पर दो-तीन कॉलेजिएट कटु प्रहार करते हुए अपभ्रंश बकने लगे और लगा कि अब वे हाथ छोड़ने पर उतारू होने वाले हैं.

"प्रसंग तुरंत बदला और फिल्म की चर्चा छिड़ गयी. किसी ने राज बब्बर की आलोचना की. इस पर दो-तीन आदमी बुरी तरह आग-बबूला हो उठे.

"प्रसंग बदला. किसी ने सरदारजी का कार्टून देखकर अटकलबाजी की कि यह फोटो राष्ट्रपति का है और उन्हें बेवकूफ कहते हुए गंदी गाली दे डाली.

"मेरा पक्का विश्वास था कि इस पर सबके-सब उखड़ जायेंगे. चूंकि जो आदमी कपिलदेव की भर्त्सना बर्दाश्त नहीं कर सकते. राज बब्बर की तौहीन नहीं सुन सकते, वे भला राष्ट्रपति पर कोई आक्षेप कैसे सह लेंगे?

"लेकिन मैं अपना-सा मुंह लेकर रह गया कि किसी ने चूं तक नहीं किया. यहां तक कि मैं भी यह बताने की हिम्मत नहीं जुटा पाया कि राष्ट्रपति के ऊपर कार्टून या व्यंग्य करने की मनाही है. मैं आदमी में बढ़ रही दुष्टता पर हक्का बक्का रह गया."

"देश की शासन-व्यवस्था का नामधारी ही सही, लेकिन सर्वोच्च पद के प्रति, जिसके नाम से देश का पुर्जा-पुर्जा संचालित होता है, लोगों में यह विरक्ति, यह जड़ता क्यों समाती आ रही है? क्या यह भी सिखाने की बात है कि राष्ट्रपति किसी भी देश के लिए सम्मान एवं गौरव-गरिमा का द्योतक होता है. फिर उसके प्रति भी लोगों के मन में आदर का लोप क्यों होता जा रहा है? यह आचरण कौन से भविष्य का संकेतक है? मुझे लगा यह गाली तीर की तरह मुल्क के कलेजे पर चलती हुई हर नागरिक की मर्दानगी को चुनौती देने लगी है."

"मैं चुपचाप घर आ गया और क्लब कभी नहीं जाने की कसम खा ली."

"आज क्लब में बैठकर लोगों की पसंद और दिलचस्पी के स्तर का जायजा मैंने भी लिया. मैं खुद शर्मिंदा और पशेमान हूं कि पैसा कमाने के लिए जैसे-तैसे ड्यूटी कर लेने के बाद घर और परिवार से परे हम किसी और चिंता के प्रति गंभीर नहीं होते. यही कारण है कि हम सब के दुःखों और तकलीफों का कोई अंत नहीं है. दरअसल जब तक पीड़ा और कष्ट टुकड़ों में विभक्त रहेंगे तब तक प्रखर और सार्वजनिक विरोध का



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वातावरण तैयार नहीं होगा. लेकिन कोई भी पीड़ा जब आम हृदयों की अनुभूति बन जायेगी तो उसी रोज बगावत शुरू हो जायेगी और फिर इसका निदान भी. देखो न! असम की आग आज आसमान छू रही है और मुझे धुआं भी दिखाई नहीं पड़ा. जबकि जरूरत थी कि उसकी आंच से हम भी तिलमिला उठते.''

''तो असम के बारे में तुम्हें कब मालूम हुआ.''

''आज ही पढ़कर जाना.''

''तब तो उम्मीद करते हैं कि पंजाब और श्रीलंका के बारे में तुम्हें कुछ भी मालूम नहीं होगा?''

''यकीनन नहीं.''

''हद हो गयी यार. लगता है धीरे-धीरे आदमी इतना एकनिष्ठ और खुदगर्ज होता जा रहा है कि किसी की जवान बेटी घर से भाग जायेगी और उसे एकाध साल के बाद पता चलेगा.''

शिवदयाल ठीक ही कहता है. लोगों की मानसिकता कितनी बौनी होती जा रही है. भारत की क्रिकेट में जीत हुई तो फुलझड़ी और पटाखे छूटे. अमिताभ बच्चन बीमार पड़ा तो लाखों ने दुआएं मांगी. मलखान सिंह ने सरेंडर किया तो लोगों ने दद्दा कहकर उनकी जय-जयकार में नारे लगाये. लेकिन जब असम समस्या का समाधान नहीं हो रहा है तो किसी को कोई चिंता नहीं है. पंजाब और श्रीलंका में क्या गड़बड़ी हो गयी है इसकी कोई उग्र चर्चा नहीं है, इधर कोई आक्रोश नहीं है.

त्रिपुरारी को अपने-आप पर बेहद खीज हुई. टेलीविजन और रेडियो के इस युग में भी हम इतना आत्मलीन और बेखबर हैं तो फिर हमें आदमी, विशेषकर प्रजातंत्र का नागरिक होने का क्या अधिकार है?

शिवदयाल पर त्रिपुरारी को बहुत गर्व होता है—भाई आदमी हो तो ऐसा कांशस कि देश-दुनिया की हर आहट उस तक पहुंचती हो. हालांकि ग्रेजुएट शिवदयाल का पगार कारखाने के अनपढ़ स्वीपर से भी कम होगा. लेकिन स्तर के दृष्टिकोण से शिवदयाल का तो कोई जोड़ ही नहीं है.

चाय आ गयी थी. दोनों सिप करने लगे. अचानक शिवदयाल को एक बात याद आ गयी.

''अच्छा त्रिपुरारी एक बताओ भाई! आजकल थॉमस, त्रिलोचन, रामबालक, नंदी तथा बनर्जी का लड़का मिलकर कॉलोनी में चंदा किस चीज का इकट्ठा कर रहे हैं?''

''अरे तुम्हें मालूम नहीं है, मोहिंद्र अमरनाथ यहां आनेवाला है. उसके अभिनंदन की तैयारी हो रही है.''

''लेकिन यह मोहिंद्र अमरनाथ है कौन.''

सुनकर त्रिपुरारी हैरत से भर उठा, ''क्या तुम मोहिंद्र अमरनाथ को भी नहीं जानते? अरे महान क्रिकेटर लाला अमरनाथ का महान् क्रिकेटर बेटा मोहिंद्र अमरनाथ—जिसने विश्वकप में भारत की जीत में सबसे जबर्दस्त योगदान दिया.''

''तो क्या भारत ने विश्वकप जीत लिया है?''

हे भगवान! त्रिपुरारी अवाक् देखता रह गया. उसे विश्वास नहीं हो रहा था कि यह प्रश्न शिवदयाल पूछ रहा है.

''तुम्हें यह तो पता है न शिवदयाल कि पिछले दिनों भारत में ओलंपिक का आयोजन हुआ था?''

''अरे हां भई यह पता है. जिसमें हर देश के खिलाड़ियों ने हिस्सा लिया था.''

चलो फख है कि तुम्हें यह पता है. लेकिन जो भी हो साले पोल खुल गयी तुम्हारी. लगता है तुम सिर्फ पॉलिटिकल चटनी ही चाटते हो. तुम भी क्लर्क के क्लर्क ही रह गये. इसके आगे इस कारखाने के कर्मचारी कुछ बन ही नहीं सकते. आठ घंटे की डांट-फटकार, बदसलूकी और हीनताबोध ने तुम्हारे सोच को पंगु बना दिया है...तुम्हें सीमित कर दिया है.''

चाय पीकर त्रिपुरारी निराश-सा मुंह बनाकर यह कहते हुए चल पड़ा, ''जाओ शिवदयाल! तुम्हारा भी मुखौटा उतर गया. बेटे! तुम भी अपनी ही लकीर को पीटते रह गये.''

उसे अपने-आप पर थोड़ा भरोसा हुआ—चलो उसे विश्वकप की जीत एवं ओलंपिक (?) के विषय में तो जानकारी थी.

वाह रे जानकारी! एशियाड और ओलंपिक में भी कोई फर्क नहीं.

उस रोज शाम के पहर एक दुर्घटना घट गयी. सड़क पर खेल रही त्रिलोचन की पांचवर्षीया बेटी को ट्रक वाले ने कुचल दिया. काफी भीड़ जुट गयी. ट्रक का मालिक भी साथ था. पुलिस और पब्लिक की मार से बचने के लिए ट्रकवाला हजार रुपये लेकर त्रिलोचन के पैर पर गिर पड़ा.

महीने का अंतिम सप्ताह था. बेहद कड़की का सप्ताह. इस समय दो हजार कमाने वाले की भी हालत यहां खस्ता रहती है. त्रिलोचन तो खैर हजार ही कमाता था और उस पर भी पहले से ही तमीज है या नहीं कि हजार भी कमाने पर हमेशा तंगी ही बनी रहती है. त्रिलोचन का हाल यूं था कि पगार पॉकेट में रखा भी नहीं कि महाजन तगादे में घेरकर खड़े हो जाते थे.

उसे जब एक मुश्त हजार रुपये आने की आस बंधी तो बेटी की दर्दनाक मौत की टीस अचानक कम हो गयी. अरे जो होना था सो तो हो ही गया अब जो मिल रहा है उसे ठुकराना चालाकी तो नहीं होगी. एक प्रेशर कुकर खरीदने एवं पलंग बनवाने की योजना कब से टल रही है. चलो इस बार पूरी हो जायेगी.

त्रिलोचन ने एक हजार रुपये में सुलह कर ली.

मामला सुलट गया जानकर भीड़ टलने लगी. तब ही शंभु शरण आ गये. शंभुशरण—जो यूनियन चलाने का व्यवसाय करते हैं. यानी यूनियन के प्रेसीडेंट हैं. उन्होंने त्रिलोचन को एकांत में बुलाया और कहा, ''भाई मामला सुलट गया, अच्छा हुआ. लेकिन मुझे भी पुलिस और मैनेजमेंट को जवाब देना होगा कि एक्सीडैंट कैसे हो गया.''

त्रिलोचन समझ गया. पॉकेट से पांच सौ रुपये निकालकर अरिया कर दिया. मन तो हुआ कह दे—हां साले दोगला, बेटी मेरी मरी और जवाब तुम दोगे जैसे कि मैंने जानबूझकर मार दिया हो. परंतु उसने कुछ नहीं कहा—वह जानता है कि यूनियन के नाम से वर्करों पर गुंडागर्दी और मैनेजमेंट की चमचागीरी की जाती है. पलंग के बजट को खटाई में डालता हुआ घर की ओर वह बढ़ गया.

घर में ही बेटी का शव था. अब ले जाकर दफना देना चाहिए. बीवी बड़ा रोना-धोना कर रही होगी. चुपके-से कान में प्रेशर कुकर के लिए इस पांच सौ रुपये की बात बता देगा. फिर जरूर उसका भी ढाढ़स बंध जायेगा.

त्रिलोचन इन्हीं मंसूबों के साथ चला जा रहा था. अभी वह घर भी नहीं पहुंच पाया था कि उसके साथ काम करनेवाले महाजनों ने उसे घेर लिया, ''भाई, पगार का तो तुम्हारा बंधा-बंधाया खर्चा है. अभी ही मौका है. कुछ हम लोगों का वसूल कर दो.''

उसकी उम्मीद पर मानों पहाड़ टूट पड़ा. अब सचमुच उसकी तबीयत रोने को करने लगी...और यह क्या, वह सचमुच रो पड़ा. पता नहीं मासूम बेटी की बुरी मौत पर या रुपयों के हाथ से निकलने पर. उसने बहाने के कई तरीके अपनाये. लेकिन उन लोगों पर कोई असर नहीं पड़ा. आखिरकार उसे पांचों सौ रुपये से हाथ धोना ही पड़ा.

बहुत निराश मन लेकर वह घर लौटा. पत्नी विलाप कर रही थी. त्रिलोचन के मन में बार-बार पलंग और प्रेशर कुकर घूम रहा था. काश! हजार रुपया और मिल जाता. इस विचार के साथ ही उसकी नजर अचानक छोटी बेटी पर टिक जाती है और फिर अपने टुच्चेपन पर वह खुद ही हैरान रह जाता है.

त्रिलोचन को चार्जशीट मिली. बस! वर्कर से कुछ और बनने के उसके सारे इरादे धुंधले पड़ गये. सुबह-शाम यूनियन के व्यापारी के तलुवे सहलाने का सौदा शुरू करना पड़ा. वहां पैरवी में जब-तब उसकी पत्नी भी जाती हुई देखी गयी. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## जैनेंद्र जी के जन्म दिन (2 जनवरी) पर विशेष

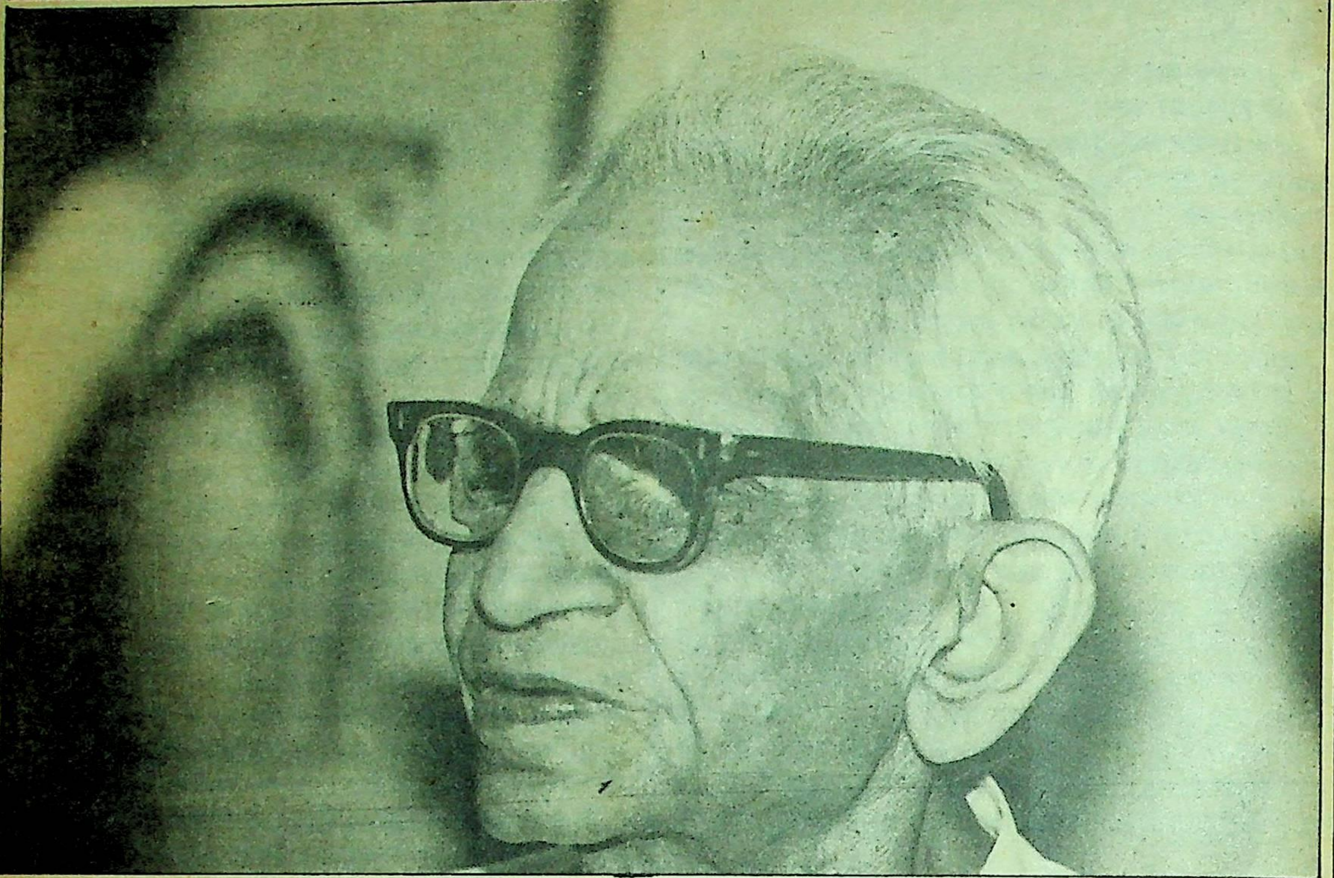

छाया : पवन महेंद्र

# वह इबारत दुरूह नहीं

से.रा. यात्री

यह उन्नीस सौ तिरपन जून महीने की बात है. मैंने उस वर्ष बी.ए. की परीक्षा दी थी और किसी परिचित की शादी में पहली बार दिल्ली गया था. भयानक लू-लपट का मौसम था—शादी में सम्मिलित होने की उत्सुकता नाम को भी नहीं थी. लेकिन जैनेंद्रजी से मिलने का आकर्षण बहुत प्रबल था और यही वजह थी कि मैं बाराती बनकर उस विवाह में शामिल हो गया था.

अपनी बात को थोड़ा और साफ करने के लिए मुझे थोड़ा पीछे लौटना पड़ेगा जिससे कि जैनेंद्रजी से जुड़ने की प्रक्रिया पर सम्यक प्रकाश पड़ सके.

मैं एन.आर.ई.सी. कालेज खुर्जा का विद्यार्थी था. खुर्जा तब एक छोटा-सा तहसीली कस्बा था. आबादी भी ज्यादा नहीं थी.

एन.आर.ई.सी. कालेज का पुस्तकालय प्रत्येक विषय की पुस्तकों से भरा पूरा था. विशाल लायब्रेरी में कतार दर कतार सैकड़ों

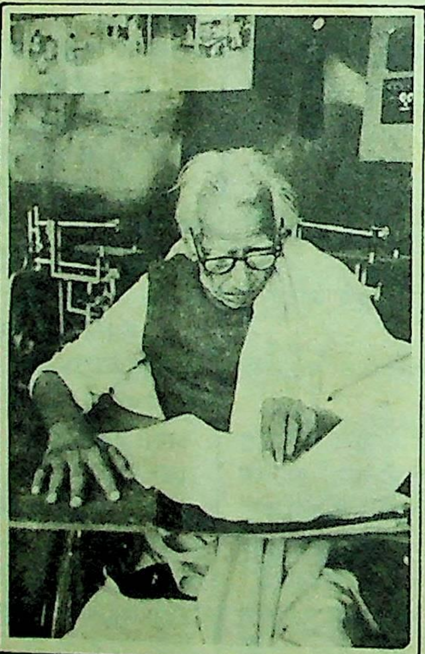

अलमारियां थीं जिनमें विविध विषयों की हजारों पुस्तकें उपलब्ध थीं.

मैंने इंटर में आते ही लायब्रेरी में घंटों बैठक लगानी शुरू कर दी थी. हिंदी के सभी आधुनिक कवियों की तब तक की प्रकाशित कृतियां पढ़कर खड़ी बोली के महान कवियों से परिचय प्राप्त कर लिया था. कथा साहित्य के महारथियों में केवल मुंशी प्रेमचंद ही ऐसे थे जिन्हें मैं कालेज में प्रवेश पाने से पहले ही काफी कुछ पढ़ चुका था.

आधुनिक कवियों के बाद कथा साहित्य के जिन बड़े लेखकों की रचनाएं मेरे हाथ लगी थीं उनमें भगवतीचरण वर्मा तथा वृंदावन लाल वर्मा प्रमुख थे. वर्मा द्वय के उपन्यासों में अद्भुत कथा रस था. और उनकी कृतियां पर्याप्त संख्या में कालेज की लायब्रेरी में उपलब्ध थीं. इन्हीं दिनों अलमारियों से पुस्तकें टटोलते हुए 'सुनीता' मेरे हाथ पड़ गयी. पुस्तक के लेखक का नाम जैनेंद्र कुमार था. इस नाम से तब तक



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं पूर्णतया अपरिचित था.

मैं कालेज लायब्रेरी में ही खिड़की के पास कुर्सी खींचकर 'सुनीता' पढ़ने बैठ गया. उपन्यास की भाषा बाकी उपन्यास लेखकों की जानी-पहचानी भाषा से एकदम अलग थी. उपन्यास में मैं ऐसा रम गया कि बाकी दुनिया से पूरी तरह बेखबर हो गया.

सुनीता पढ़ने के बाद मैं गहरी उलझन में पड़ गया. मैं तब सत्रह साल का वयःसंधि छूता लड़का था. उस कच्ची उम्र में मुझे सुनीता का आचरण एकदम विचित्र और विस्फोटक लगा. मैंने तब तक किसी नायिका को ऐसा आचरण करते नहीं देखा था कि पति के मित्र के प्रणयानुरोध से आग बबूला होकर अपने वस्त्र उतारकर फेंकने लगे.

हिंदी के उपन्यास तो मैंने तब तक कम ही पढ़े थे पर बंगला के सैकड़ों उपन्यास पढ़ चुका था. रवींद्र और शरत् की पुस्तकों से तो अलमारियां भरी ही रहती थीं. बंगला उपन्यासों की नायिका तो हाड़ मांस की बनी हुई लगती ही नहीं थी. नायक-नायिका घंटों तक एक दूसरे के नजदीक रहते थे पर क्या मजाल है कि उनकी उंगलियां भी परस्पर छू जायें. उन अनोखी सुंदरियों से प्यार तो भरपूर किया जा सकता था पर उनका स्पर्श वर्जित था. मेरी उम्र भी इतनी लजीली थी कि ब्यूटी इज ट्सी नाट टु टच (सौंदर्य निहारने के लिये है छूने के लिये नहीं है) की उक्ति पर मुझे कोई संदेह नहीं होता था. लेकिन सुनीता के आचरण ने मुझे भरपूर चौंका दिया. उपन्यास की भाषा भी अपनी तरह की और एकदम अलग-थलग थी. जैनेंद्र का यह उपन्यास अलग तरह का यथार्थ रेखांकित करता दिखलाई पड़ा.

जैनेंद्रजी के सुनीता के बाद मैंने कालिज की लायब्रेरी से उनके दूसरे उपन्यास खोज-खोज कर पढ़े. कल्याणी, त्याग पत्र, परख, सुखदा. सभी उपन्यास मुझे वहां मिल गये और उनके लेखक को जानने-देखने की भूख भी निरंतर बढ़ती चली गयी. धीरे-धीरे अगले दो-तीन वर्षों में किसी से यह भी पता चल गया कि जैनेंद्रजी दिल्ली के दरियागंज मौहल्ले में रहते हैं.

बी.ए. की परीक्षा देते-देते मैं कुछ-कुछ वयस्क भी हो चला था और एक शादी में दिल्ली जाने का सुयोग भी मेरे हाथ आ गया था.

दिल्ली पहुंचते ही मैंने अपनी अटैची जनवासे में पटकी और जैनेंद्रजी की खोज में निकल पड़ा.

जैनेंद्रजी पैंतीस वर्ष पहले भी उसी मकान में किरायेदार थे जहां आज भी उनकी रिहायश है. बस इतना बदलाव जरूर आया है कि तब ऊपर तल्ले तक पहुंचने के लिये एक खूब खुला-खुला अहाता पार करना होता था और अब उस अहाते को घेर-घारकर खूब संकरा कर दिया गया है तथा कुछ मशीनें वगैरह लगाकर छोटा-मोटा उद्योग खड़ा कर लिया गया है. मशीनों के चलने से काफी शोर भी होता रहता है. युग परिवर्तन की संकेतात्मकता इस बदली हुई स्थिति में पूरी तरह मौजूद दीख पड़ती है.

उस जून की भयानक दोपहरी में मैं ट्राम तांगे वगैरह से दरियागंज पहुंच गया. कुछ देर टक्करें मारने के बाद उनका मकान भी मिल गया. मैंने बंद द्वार पर दस्तक दी. एक सात-आठ साल के लड़के ने दरवाजा खोल दिया. मैंने उस गोरे चिट्टे-गदबदे और तीखे नाक नक्श वाले बच्चे से पूछा कि क्या जैनेंद्र जी घर में हैं. उसने बतला दिया कि उस समय जैनेंद्रजी घर में नहीं होते हैं बल्कि पूर्वोदय प्रकाशन के कार्यालय में मिलते हैं.

मैंने बच्चे से उसका नाम पूछा तो उसने अपना नाम प्रदीप बतलाया और वह परम उत्साह से मुझे जैनेंद्रजी के पास ले जाने के लिये तैयार हो गया.

एक जीने की सीढ़ियां चढ़कर मैं एक कमरे में पहुंच गया. एक अधेड़ वयस का भला सा मानस दिखाई देने वाला व्यक्ति चटाई पर बैठा अंग्रेजी की कोई मोटी-सी किताब पढ़ने में दत्तचित्त था. उस कमरे में कुछ ज्यादा सामान नहीं था—कहीं कोई तस्वीर वगैरह भी नजर नहीं आ रही थी. काठ की एक चौकी उस व्यक्ति के सामने रखी थी और दीवार से लगा एक तख्त पड़ा था जिस पर सफेद चादर बिछी हुई थी और शायद एकाध गोल तकिया भी पड़ा था.

उस व्यक्ति ने खद्दर की धोती और घर की सिली खद्दर की ही बनियाइन पहन रखी थी. देहयष्टि ज्यादा मजबूत तो नहीं लगती थी पर दुर्बल भी नहीं कही जा सकती थी. मैं उस उम्र में था कि किसी बड़े या बुजुर्ग की सही उम्र का अनुमान नहीं लगा सकता था. जैनेंद्रजी तब पचास के भी नहीं रहे होंगे. होंगे भी तो बस खींच तानकर ही पर वह मुझे बहुत गंभीर और बड़े लगे.

मुझे सामने देखकर उन सज्जन ने अपना चेहरा किताब से हटाकर मेरी ओर उठाया और किताब सामने की चौकी पर टिकाकर मेरी ओर देखा. खुले मस्तक पर चिंता की रेखाएं कुछ ठहर गयी-सी लगती थीं. पहली ही नजर में वह चेहरा और आंखें उस व्यक्ति को साधारण से कुछ अलग घोषित करती थीं.

धोती के छोर से हाथ में पकड़ा हुआ चश्मा साफ करते हुए वह बोले, "आइये, बैठिये," और प्रदीप की तरफ साभिप्राय निगाह उठाई.

प्रदीप ने कोने में रखी सुराही से पानी का गिलास भरा और मुझे लाकर दे दिया.

इतनी देर में मैं यह पूरी तरह समझ चुका था कि वह जैनेंद्रजी ही थे. उनके कहने से मैं उनके सामने चटाई पर ही बैठ गया. मैंने अपने नाम और शहर का उल्लेख करके लगभग गड़बड़ाते हुए उनसे मिलने की इच्छा बतलाई और उनकी तब तक की पढ़ी हुई पुस्तकों का हवाला भी दिया.

अब वह लगभग पैंतीस वर्ष पुरानी बात हो चुकी है इसलिए मैं बहुत विश्वास के साथ नहीं कह सकता कि मेरी उनसे बातचीत किस प्रसंग को लेकर आरंभ हुई थी. हां यह जरूर है कि उनमें किसी प्रकार का दुवैध या असमंजस नहीं था — न कोई मुलम्मा था, इसलिए मेरे जैसे निपट लड़के से वह अपनापे के साथ कितनी ही देर तक बातें करते रहे.

उन्हीं दिनों जैनेंद्रजी की दो पुस्तकें पूर्वोदय प्रकाशन से प्रकाशित हुई थीं. उन उपन्यासों के नाम 'विवर्त' और 'व्यतीत' थे. उन्होंने प्रदीप से अथवा उस दौरान वहां आ जाने वाले किसी अन्य कर्मचारी से दोनों उपन्यास मंगवाये तथा प्रिय-राम यात्री के लिए भेंट करने से पहले एक सूक्ति भी लिख दी: 'स्वयं को न रखना दे डालना ही मुझे आत्मोपलब्धि का उपाय मालूम हुआ है.'

उपन्यास तो पता नहीं इतने वर्षों में न जाने कहां जा पहुंचे होंगे पर वह सूक्ति मैं कभी विस्मृत नहीं कर पाया. जब भी कोई खोटा कर्म हो जाने का जाने-अनजाने दुयोग आ जुटता है तो खुद से निगाह बचाने की शर्म जैनेंद्रजी के प्रथम बार के साक्षात्कार को मेरे मानस नेत्रों में उजागर कर देती है और आत्मोपलब्धि की कुंजी का रहस्य खोल देती है.

मैं देर तक बोलकर चुप हो गया तो उन्होंने अपनी चिंता जतलाई कि मैं जिस स्थान पर ठहरा हूं वहां तक कैसे पहुंचूंगा. क्या मुझे रास्ते का ठीक ज्ञान है वगैरह.

मैंने अपने कुर्ते की जेब से विवाह का निमंत्रण पत्र निकाला और उन्हें दिखला दिया. जैनेंद्रजी ने सही मार्ग का निर्देशन किया और फिर मिलने के लिए कहा.

मैंने तब तक किसी बड़े लेखक को इतने निकट से नहीं देखा था. जैनेंद्रजी के पास घंटे-डेढ़ घंटे बैठने के बाद मेरा सिर किसी विचित्र से नशे से झूम उठा. उनकी दी हुई दो पुस्तकें लेकर चला तो पांव हवा में उड़ने से लगे, मैं जीने से उतरते हुए बेखुदी में यही सोचता रहा कि जब मैं ये पुस्तकें, जिन पर जैनेंद्रजी ने अपने हस्ताक्षर ही नहीं किये हैं बल्कि एक सूक्ति भी लिखी है, अपने सहपाठियों को दिखलाऊंगा तो वे चमत्कृत हो उठेंगे.

जैनेंद्रजी के माथे की चिंतापरक सिलवटें और धोती के खूंट से कई बार चश्मे के कांच पोंछने की क्रिया बराबर मेरे मानस नेत्रों में बरकरार बनी रही और उनके उपन्यास के ही एक पात्र का सिगार सुलगाने के लिए गाऊन की जेबों को थपथपाकर माचिस खोजने का प्रयास



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकारांतर से जैनेंद्रजी के चश्मा पोंछने के समानांतर लगता रहा.

जैनेंद्रजी से यही मेरा प्रथम साक्षात्कार था और इस भेंट ने मुझे बंगला के लेखकों से विलग कर हिंदी उपन्यासों के पठन की ओर उकसा दिया था.

'विवर्त' और 'व्यतीत' के कई बरसों बाद तक जैनेंद्रजी का फिर कोई नया उपन्यास पढ़ने को नहीं मिला. जैनेंद्रजी उतनी तेजी से उपन्यास लिखते भी नहीं थे.

हां बीच में जैनेंद्रजी से भेंट करने का एक अवसर और आया. यह उन्नीस सौ चौवन की बात है. मैं एम.ए. हिंदी का विद्यार्थी था और कालिज की साहित्यिक-राजनीतिक गतिविधियों को संचालित करने वाले स्टडी सर्किल का मंत्री था. स्टडी सर्किल में प्रायः विचारकों और साहित्यकारों को आमंत्रित किया जाता था. दिल्ली में रहने वालों तथा बाहर से दिल्ली आने वाले प्रसिद्ध साहित्यकारों को प्रायः माह में एक बार बुलाया जाता था. मैं स्वयं अथवा अन्य किसी विद्यार्थी को दिल्ली भेज देता था और आमंत्रित सज्जन मेरे अथवा अन्य किसी के साथ आ जाते थे. दो वर्ष की अल्पावधि में आचार्य नरेंद्र देव, जयप्रकाश नारायण, लोहियाजी, अशोक मेहता, रघुकुल तिलक, कमलादेवी चट्टोपाध्याय, सेठ दामोदरदास, प्रोफेसर मुकुट बिहारी, सुचेता कृपलानी तथा अन्य राजनीतिक-विचारक खुर्जा कालिज में पधार चुके थे. इसी क्रम में सबसे पहले जैनेंद्रजी को आमंत्रित किया गया तो उन्होंने अपनी स्वीकृति भेज दी.

निश्चित तिथि को मैं उन्हें दिल्ली लेने चला गया. मैं जानता था कि इतने बड़े साहित्यकार को ट्रेन या बस से लाना कठिन है इसलिए स्टडी सर्किल की ओर से उन्हें टैक्सी में लाने की स्वीकृति दे दी गयी.

मैं सीधा पूर्वोदय प्रकाशन पहुंच गया और उनसे पूछा कि कैसे चलना पसंद करेंगे. उन्होंने दुविधाहीन होकर कहा, ''जैसे भी ले चलोगे—मुझे तो कुछ पता नहीं है.''

मैंने कहा मैं तो बस से आया हूं और बस स्टैंड की जगह तो जानता हूं. आप चाहें तो टैक्सी से भी चल सकते हैं पर मुझे तो टैक्सी कहां मिलेगी यह मालूम नहीं है.

वह कुछ क्षण सोचकर पूछने लगे, ''क्या बस से मीटिंग के समय तक पहुंचा जा सकता है?''

अभी कुल ग्यारह बजे थे—मीटिंग का समय तीन बजे का तय हुआ था. तुरंत चल देने पर बावन मील की यात्रा तीन घंटे में मजे में तय हो सकती थी. मैंने उन्हें यह बात बतलाई तो वह बोले, ''टैक्सी का भाड़ा सौ रुपये से तो क्या कम होगा? यों भी रोज मर्रा बस तांगे वगैरह से ही इधर-उधर आना-जाना होता है—आज ही टैक्सी से क्यों चलें? चलिये फिर बस से ही चलते हैं.''

चलने से पहले उन्हें कोई तैयारी नहीं करनी थी—बस उठे और खूंटी पर से सदरी उतारकर पहन ली और तख्त पर रखे शाल को कंधे पर डाल लिया. जो भी व्यक्ति वहां था उससे मेरे साथ खुर्जा जाने की बात कहकर अविलंब चल पड़े.

मैंने पहली बार अनुभव किया कि कोई बड़ा व्यक्ति भी इतना प्रस्तुत मिल सकता है. जैनेंद्रजी से पहले मैं जितने भी लोगों को दिल्ली से लेने गया था उनमें से शायद ही कोई सभा के निश्चित समय पर पहुंचा हो. कुछ के लिए तो श्रोताओं को कई घंटों तक प्रतीक्षा करनी पड़ी थी.

चार सवारी वाले तांगे में दो सवारियां पहले से सवार थीं—बाकी मैं और जैनेंद्रजी हो गये. मैं बराबर सकोच में डूबा रहा कि जैनेंद्रजी को असुविधा में डालकर साथ ले जा रहा हूं पर जैनेंद्रजी ने इस ओर संभवतः कोई ध्यान ही नहीं दिया.

जैनेंद्रजी मीटिंग के समय से कुछ पहले ही सभास्थल पर पहुंच गये. चाय पान के बाद वह बोलने को तैयार हो गये. उन्होंने अपनी शाल उतारकर कुर्सी की पीठ पर डाल दी और कुर्सी पर आराम से बैठकर बोले, ''मुझे बैठकर ही बातचीत करने में सुविधा होती है. आप लोग प्रश्न पूछेंगे तो मैं कुछ कह सकूंगा.'' बात की बात में श्रोताओं की ओर से पर्चियां आनी शुरू हो गयीं और जैनेंद्रजी एक-एक पर्ची को पढ़कर बोलते चले गये.

इस तरह का कोई वक्ता पहले कालिज में नहीं आया था—यह एक अलग तरह का कार्यक्रम बन गया था. जैनेंद्रजी से पचासों प्रश्न

**ओखला प्रवास के दौरान जैनेंद्र जी अज्ञेय जी के साथ** छाया : प्रदीप

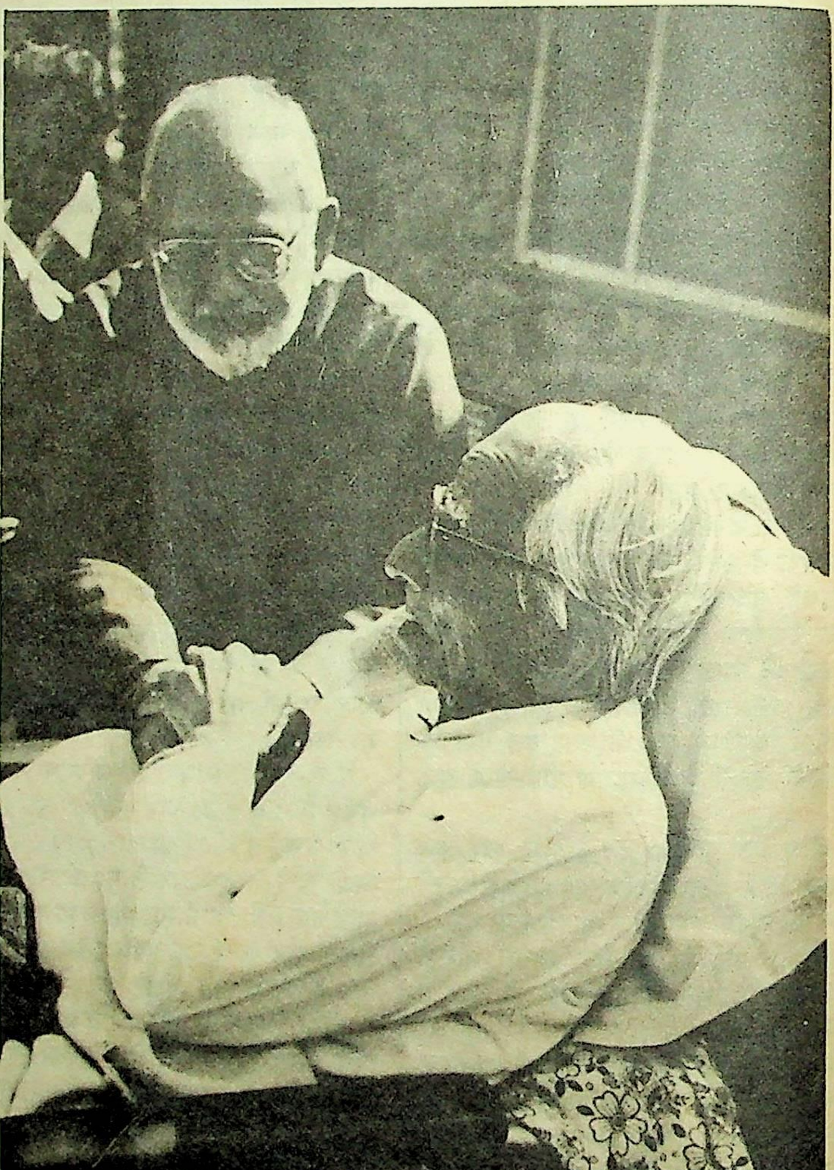



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूछे गये जिनमें से एक साहित्येतर प्रश्न मुझे आज भी याद है – 'हिंदी के साहित्यकार इतने दुबले क्यों होते हैं?'

शायद यह बात श्रोता ने जैनेंद्रजी का दुबला शरीर देखकर ही पूछी होगी.

जैनेंद्रजी ने किंचित मुस्कराकर पूछा, ''क्या आपने निराला जी को देखा है?''

निराला को उस नगर में किसी ने नहीं देखा था इसलिए कोई उत्तर नहीं आया.

सभा विसर्जित होने के बाद भी जैनेंद्रजी काफी देर तक विद्यार्थियों और अध्यापकों के साथ रहे और चलते समय उन्हें पांच सेर घी की एक कनस्तरी भेंट की गयी. घी की भेंट से वह कुछ चकित हुए और पूछने लगे, ''क्या इसको खाकर मुझे अपनी दुर्बलता दूर करनी होगी?''

उनकी जिज्ञासा पर हम सब हंस पड़े और एक अध्यापक बोले, ''यह घी आपकी दुर्बलता तो दूर नहीं कर पायेगा पर इतना तो होगा ही कि खुर्जा घी का घर है—बड़ी मंडी है—यहां की कोई प्रसिद्ध चीज आपके साथ चली जायेगी तो आपको हमारी याद बनी रहेगी.''

खुर्जा कालिज की भेंट के बाद फिर चार वर्ष निकल गये. मैं एम.ए. करने के बाद एक-दो वर्ष इधर-उधर भटका और फिर सागर विश्वविद्यालय में रिसर्च करने चला गया लेकिन रिसर्च भी मुझसे नहीं चल पाई और छोड़कर मैं एक महाविद्यालय में एक डेढ़ वर्ष काटने के पश्चात नौकरी छोड़कर दिल्ली चला आया.

दिल्ली की भीड़-भाड़ मेरे कस्बाई मन के अनुकूल नहीं थी पर कहीं भी रहकर कुछ काम-धाम करना ही था इसलिये मैं एक कुंआरे मित्र के साथ रहने लगा. मित्र किसी दफ्तर में क्लर्की करता था और मैं लोदी रोड पर उसके कमरे में लिखने-पढ़ने का काम करता था. अखबारों में विज्ञापन तलाश करके इधर-उधर आवेदन भेजता रहता था.

दिल्ली के एक छोर से दूसरे छोर तक भटकने के क्रम में मैं एक दिन दरियागंज जा पहुंचा. जैनेंद्रजी से 1954 में जो भेंट हुई थी उसे लगभग पांच वर्ष बीत चुके थे. मैंने सोचा अब तक तो शायद वह मुझे भूल चुके होंगे.

मैं पूर्वोदय प्रकाशन के जीने की सीढ़ियां चढ़ने के बाद कमरे में दाखिल हुआ तो मैंने देखा कि जैनेंद्रजी दीवार से पीठ लगाये तख्त पर बैठे किसी से बातें कर रहे हैं. उनके सामने कुर्सी पर बैठे एक सज्जन सिगरेट पी रहे थे और सिगरेट की राख फर्श पर ही झाड़ते जा रहे थे. मैंने इधर-उधर देखा और जैनेंद्रजी के नजदीक जाकर खड़ा हो गया. जैनेंद्रजी मुझे पहचानने की कोशिश करते रहे पर वह इस बीच मुझे भूल चुके थे.

मैंने अपना नाम बतलाया तो वह तुरंत पहचानकर पूछने लगे, ''हां-हां पिछली दफा मैं आपके साथ आपके कालिज में गया था—अब कहां हो, कब आये हो?''

मैंने पिछले कुछ वर्षों की कैफियत उन्हें संक्षेप में बतला दी और उनके सामने बैठे उस निर्द्वंद्व व्यक्ति को देखने लगा जो जैनेंद्रजी से उम्र में बहुत छोटा होकर भी उनके साथ बराबरी का संबंध बनाये हुये मालूम पड़ रहा था.

जैनेंद्रजी ने मुझसे कुर्सी पर बैठने के लिये कहा और ऊंची बाड़ की टोपी लगाये बैठे सज्जन का परिचय दिया, ''यह रांगेय राघव हैं – आगरे में रहते हैं.''

मैंने उस गौर वर्ण के तीखे नाक नक्श वाले नौजवानी की उम्र पार करते आदमी को जरा ध्यान से देखा. उसकी मुख-मुद्रा को देखकर गौतमबुद्ध का चेहरा बेसाख्ता ध्यान में आता था. बस उसकी ऊंची बाड़ की गांधी टोपी ही एक व्यवधान उपस्थित करती थी बाकी तो पूरा चेहरा-मोहरा बुद्ध की प्रतिमा से मेल खाता था.

उन दोनों लेखकों की बातें मैं गहरी दिलचस्पी के साथ सुनता रहा. उम्र का फर्क उन दोनों के बीच कहीं आड़े नहीं आता था. रांगेय राघव में कहीं कोई कच्चापन नहीं आता था. वह गहरे आत्मविश्वास के साथ बोलते थे.

उस रोज मैं लगभग दो घंटे पूर्वोदय प्रकाशन में रहा. जब चलने लगा तो जैनेंद्रजी ने सहजता से कहा, ''दिल्ली में हैं तो कभी-कभी आते रहिये.''

मुझे दिल्ली में कोई टिकाऊ नौकरी नहीं मिली और मैंने प्रायः दो वर्ष इधर-उधर भटकने में ही निकाल दिये. जब भी मौका मिलता मैं जैनेंद्रजी के पास चला जाता था. मैं नये लेखकों से भी ज्यादा परिचित नहीं था. इसलिये उनके पास आनेवालों को अधिक नहीं जान पाया—हां हिमांशु जोशी जो नये-नये दिल्ली आये थे और जैनेंद्रजी के पास पहुंचते रहते थे उनसे मैं थोड़ा-बहुत परिचित हो गया था.

जैनेंद्रजी अपने उपन्यास-कहानी बोलकर ही लिखाते थे. मेरे नजदीक यह एक जबरदस्त चमत्कारिक प्रक्रिया थी. वह उपन्यास इस तरह से बोलते थे गोया वह उन्हें मुंह जबानी याद हो और उनका उच्चारण स्वतः ही होता चला जा रहा हो. उनके बोलने में सोच की गंभीरता होती थी जो अपने अनुरूप भाषा का स्वरूप ग्रहण कर लेती थी. जैनेंद्रजी के बोलने में उनके भावों में गुंथी वैचारिकता अपनी पूर्ण लाक्षणिक तत्परता के साथ उभरती थी.

मैंने उनसे एक बार पूछा भी था—क्या आप पहले से ही सारी औपन्यासिक स्थितियों को मन में बुन संवार लेते हैं?

जैनेंद्रजी ने हल्के से मुस्कराकर कहा था, ''नहीं भाई, मैं तो लिखने से पहले यह तक भी नहीं जान पाता हूं कि मुझे बोलना क्या है. मेरे मन में लिखने से पहले एक क्षण पहले तक भी कोई कहानी या उपन्यास नहीं होता है. मैं भीतर से पूरी तरह खाली होता हूं और जो भी लिखने को तत्पर दीख पड़ता है उसे लिखना शुरू कर देता हूं. कोई लिखने वाला न आये तो मुझे वैसी कोई उलझन भी नहीं होती है. कुछ लिखने अथवा लिखाने का वैसा कोई आग्रह भी मेरे भीतर नहीं होता है. सच पूछो तो मैं लेखक हूं ही कहां.''

जैनेंद्रजी पूरे सोच से बनने वाली जहनियत के लेखक हैं. देह जैसी पूरी रचना और उसमें निर्मित होने वाली मांस पेशियां धमनियां तथा उनमें प्रवाहित होने वाला रुधिर सब कुछ अनाम तरीके से उनके सोच और लेखकीय स्वरूप में समाहित है. मैंने गत तीस पैंतीस सालों में उन्हें बोलकर ही लिखाते पाया है. पूरेपन का समष्टि भाव उनके भीतर न होता तो शायद पिछले साठ वर्षों तक वह इतना सब कुछ बोलकर न लिखते चले जाते. उपन्यास, कहानी, निबंध, विचार सभी उनके साहित्य को जबरदस्त विविधता प्रदान करते हैं.

मैं अनेक वर्षों तक उनके पास जाकर बातें करता रहा हूं और बीच में कभी कोई व्यवधान उपस्थित नहीं हुआ है. मैं और भी बहुत से बड़े लेखकों के पास भी जब तब जाता हूं पर ऐसा हमेशा नहीं होता कि वह मेरे लिये ही प्रस्तुत हों और सब तरफ से फुर्सत में हों. जायसी के अनुसार 'नागमती यह दुनिया धंधा' के रज्जु में सभी थोड़े बहुत बंधे ही मिलते हैं मगर जैनेंद्रजी तो जैसे सब तरफ से निफराम ही मिलते हैं. बेटा बहू उनसे कुछ भी ऐसा पूछने नहीं आते कि वह बातें छोड़कर उधर व्यस्त हो उठें. इतने वर्षों में उन्हें सूचना पहुंचाकर कभी नहीं मिलना पड़ा. मैंने मिलने से पहले कभी खत लिखकर समय नहीं मांगा. ना ही कभी फोन वगैरह के जरिये उन्हें सूचना भेजी.

गत पंद्रह बीस वर्षों में तो बीच में चाय-वाय आने लगी है बाकी बहुत दिनों तक तो हम दोनों के मध्य कुछ भी ऐसा नहीं आता था जिसे व्यवधान की संज्ञा दी जा सके. बहुत दिनों तक मेरे लिये यह कल्पना भी दुरूह थी कि वह एक सांसारिक जीव भी हैं. उन्होंने भी बच्चों का पालन पोषण किया है और शादी ब्याह के जटिल प्रसंग भी देखे-भुगते हैं.

वह सही अर्थों में मितव्ययी और अपरिग्रही हैं. उन्होंने स्थितियां भी तदनुरूप ही चुनी हैं. कभी कोई नौकरी नहीं की—किसी दरबारीपन में नहीं पड़े. फलस्वरूप वह किसी के लिये जरूरी गैर-जरूरी वाचित-अयाचित भी नहीं हुये. परिवार में कभी कोई विग्रह या द्वंद्व की दरार नहीं आयी. हां ऐसा संभव नहीं है पर उन्होंने निवृत्ति मार्गी का अनुसरण करते हुये ही प्रवृत्ति को प्रश्रय दिया है. आज हम हिंदी के लेखक की पचास साठ साल पहले की सही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जातिक परिस्थितियों का अनुमान नहीं लगा सकते जब बरसों बरस लिखते-छपते चले जाने पर भी टकों के दर्शन नहीं होते थे और लेखक साधुवाद-धन्यवाद के सहारे जीवित रहता था. प्रकाशक पूरी पुस्तक पर पचास रुपये भी कहां देते थे? कहानी का दो रुपये पारिश्रमिक भी गनीमत समझा जाता था. आज जैनेंद्रजी को बड़े पुरस्कार और सम्मान मिल रहे हैं. यह सही है पर इन उपलब्धियों को उन्होंने अपने लेखन से कभी नहीं जोड़ा और अपने व्यक्तित्व को इन चीजों से प्रभावित भी नहीं होने दिया.

मैं जैनेंद्रजी के पास जब भी जा निकला हूं उनसे लंबी बातचीत हुई है. कभी कोई विशेष विषय नहीं होता है. यों ही चर्चा चल निकलती है, देश, समाज, नीति, राजनीति, धर्म तथा साहित्य पर घंटों निर्बाध हम दोनों संलाप करते रहते हैं. बीच में वह कभी उठकर किसी काम से नहीं जाते. इतने वर्षों में हम दोनों जान गये हैं कि हम दोनों के बीच जो भी संवाद हो रहा है वह अपने आप में ही एक उद्देश्य हेतु उसे कहीं हाई लाईट होने की मजबूरी नहीं है.

विदेशी लेखकों की जैनेंद्रजी से कई बार चर्चा हुई है. विदेशी लेखकों में टालस्टाय और दोस्तोवस्की दो ऐसी महान विभूतियां हैं जिन पर बातें करना जैनेंद्रजी को विशेष रुचिकर लगता रहा है. इन दोनों के बारे में बातें करते हुये उनकी वाणी खास तौर से मुखर हो उठती है. हमेशा यही लगता है जैसे वह उन दोनों से निजता के स्तर पर जुड़े हुये हों. उनका मनसतत्व खूब उभरकर सामने आया है. ऐसी ही एक चर्चा के दौरान मैंने एक बार उनसे पूछा था, ''टालस्टाय और दोस्तोवस्की में से आपको कौन अधिक प्रभावित करता है?''

जैनेंद्रजी संभवतः इस प्रश्न से अपने मन में अनेक बार आमने-सामने हो चुके थे. वह एक क्षण भी गंवाये बिना बोलने लगे, ''निश्चय ही दोस्तोवस्की मुझे ज्यादा यानी सर्वाधिक प्रभावित करता है.''

मुझे उनकी बात सुनकर अचरज ही अधिक हुआ. टालस्टाय व्यक्तिगत जीवन में गहरे निष्ठावान, आदर्शवादी और असाधारण रूप से सादगी की ओर प्रवृत्त थे. महान लेखक होने के साथ-साथ जबरदस्त ढंग से आत्यात्तिकतापूर्ण नैतिक थे. जैनेंद्रजी की जीवन पद्धति भी उन्हीं के मार्ग का अनुसरण करने वाली थी, जबकि दोस्तोवस्की बाहर से घोर अनुशासनहीन, जुआरी-शराबी, अन्यमनस्क और बीमार आदमी था. मैंने जब यही बात उनसे कही तो वह बोले, ''टालस्टाय और दोस्तोवस्की दोनों ही महान आस्थावादी तथा अनन्य रूप से असाधारण कलाकार थे, लेकिन टालस्टाय घोर नैतिक निष्ठावान और आदर्शवादी होकर भी स्वयं को कभी ढीला और मुक्त नहीं कर पाये. संशयहीनता उनसे निभ नहीं पाई. यहां तक कि [illegible] भी तनावहीन और अकुंठित नहीं हो पाये. टालस्टाय-परिवार, पत्नी, संसार किसी को सहज होकर स्वीकार नहीं कर सके. व्यक्तिगत स्तर पर भी गहरे मारक द्वंद्वों में ही नहीं पड़े रहे बल्कि आत्म निर्वासन ही भुगतते चले गये. इसके विपरीत दोस्तोवस्की जागतिक रूप से घोर अनाड़ी और अस्थिर होकर भी गहरी आस्था और भाव प्रवणता में डूबा रहा है.''

जैनेंद्रजी को अनायास जैसे अपने मन का विषय मिल गया हो, वह उन दोनों महान विभूतियों के बारे में निर्बाध रूप से अपने विचार प्रकट करते चले गये. ''टालस्टाय तो पैदायशी काउंट्र थे. उन्होंने कभी अर्थाभाव नहीं देखा. पीड़ितों के प्रति गहरी वेदना उनके मन में थी पर उन्हें उबारने की ललक भी कहां पूरी कर पाये. टालस्टाय कभी वह नहीं कर पाये जो कि वह गहरी निष्ठा के साथ कर्तव्यविभूत होकर करना चाहते थे. इसके विपरीत दोस्तोवस्की वयस्क होते ही घोर अर्थाभावों से जूझता रहा. अपने विचारों की पुख्तगी के लिये निर्वासन और फांसी तक भुगतने को तत्पर रहा. लिखने और जीने की जैसी उत्कट जिजीविषा दोस्तोवस्की में दीख पड़ती है वह किसी दूसरे लेखक में मुझे नजर नहीं आयी. अनुभवों का भंडार दोस्तोवस्की का जीवनाधार और धारदार लेखन सामग्री दोनों ही बना रहा. महान कलाकार हों या महान व्यक्ति, दोनों ही अभागे रह जाते हैं. अगर उनके मन की गांठ खुल नहीं पाती. मन को विगलित किये बगैर क्या जीया जा सकता है?''

मैं कभी-कभी हिंदी के लेखकों के संबंध में भी चर्चा छेड़ देता था. जैनेंद्रजी, प्रेमचंद के बारे में बहुत आत्मीयता से बातें करते थे. जो वह मुझे बतलाते थे वह किसी न किसी रूप में हिंदी पाठकों को बहुत कुछ मिल भी चुका है. दूसरे लेखक अज्ञेय ही ऐसे थे जिनको लेकर वह बहुत-सी बातें करते थे. अज्ञेय को लेकर जैनेंद्रजी हमेशा भावुक हो उठते थे. शायद इसका एक कारण तो यही था कि हिंदी में अज्ञेय को परिचित कराने का दायित्व सर्वप्रथम उन्होंने ही वहन किया था. अज्ञेयजी का पूरा नाम सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन है और वह लाहौर के क्रांतिकारियों में महत्वपूर्ण थे. उन्हें सजा हुई तो उन्हें दिल्ली में रखा गया. अज्ञेय जी ने अपनी कहानियां अपने वास्तविक नाम से जैनेंद्रजी को भेजीं और जैनेंद्रजी ने रचनाओं पर उनका असली नाम न देकर अज्ञेय नाम दिया और इसी नाम से रचनायें प्रकाशनार्थ पत्र-पत्रिकाओं में भेजीं. आगे जाकर वात्स्यायन का नाम अज्ञेय ही हिंदी संसार में प्रतिष्ठित भी हुआ.

अज्ञेयजी लंबे वर्षों तक जैनेंद्रजी के साथ जुड़े रहे. उनके घर में भी रहे, उनके साथ शांतिनिकेतन भी गये और उन्होंने जैनेंद्रजी के उपन्यास 'त्याग-पत्र' का अंग्रेजी में 'दा रेजिग्नेशन' नाम से अनुवाद भी किया. अज्ञेयजी से जैनेंद्रजी को यह शिकायत तो कभी नहीं रही कि अज्ञेय ने उनका अवदान मुखर होकर कभी स्वीकार नहीं किया, हां यह शिकायत जरूर बनी रही कि अज्ञेय अहं से कभी नहीं उबर पाये. और ज्ञेय होने की सहजता उनसे हमेशा दूर रही. एक प्रसंग ऐसा भी आया कि अज्ञेय जैनेंद्रजी से खिंचते चले गये. हुआ यह कि 'नदी के द्वीप' की एक प्रति उन्हें शिवदान सिंह चौहान से पढ़ने को मिल गयी.

चौहानजी की प्रति लौटाते समय अपनी सहज प्रतिक्रिया भी लिख भेजी जिसमें उन्होंने यही कहा था कि लेखक के आत्मदान में चूक है. अज्ञेय के उपन्यास के संबंध में जैनेंद्रजी की यह एक सहज प्रतिक्रिया थी और इसे प्रसारित प्रचारित करने का कोई उद्देश्य नहीं था लेकिन चौहानजी ने बार-बार मना करने के बावजूद इसे प्रकाशित कर दिया जिससे जैनेंद्र बहुत आहत हुये और अज्ञेय ने भी इस टिप्पणी को बहुत गंभीरता से लिया.

वैसे अज्ञेय जैनेंद्रजी के घर आते ही रहते थे. जैनेंद्रजी की पत्नी के प्रति परम आदर भाव रखते थे—उनका व्यवहार भी सहज स्नेहपूर्ण होता था. श्रीमती जैनेंद्र भी उन्हें वात्सल्य के स्तर पर स्नेह देती थीं, जैनेंद्रजी के बड़प्पन को अज्ञेयजी भी भीतर तक गहराई से स्वीकार करते थे. मृत्यु से पहले वह जैनेंद्रजी के पास आये थे और उनकी रुग्णता को लेकर काफी द्रवित भी थे.

जैनेंद्रजी अज्ञेय से कितनी गहराई से जुड़े हुये हैं इसका पता इस तथ्य से स्पष्ट हो जाता है कि अज्ञेय की मृत्यु का उन्हें भी आभास नहीं दिया गया.

आज लेखक जैनेंद्र की महानता के संबंध में विशेष रूप से कुछ भी कहने की आवश्यकता बाकी नहीं रह जाती है—हिंदी कथा साहित्य के वह अपने अलग ढंग के मूर्धन्य लेखक हैं. दैहिक रूप से वह निश्चय ही अस्वस्थ हैं पर उनके जैसे कर्मरत व्यक्ति को अक्षम देखना सहन नहीं हो पाता. साथ ही साथ यह भी नहीं भूलना चाहिये कि उन्होंने पराजय स्वीकार नहीं की है. वह पस्त नहीं हुये हैं. जीवन के प्रति उनकी ललक उनके आंसुओं के निर्झर से प्रवहमान हो उठती है. तन मन से स्वस्थ होने के लिये वह चिकित्सकों और परिचर्या करनेवालों को भरपूर सहयोग दे रहे हैं. देह की यह लड़ाई कठिन अवश्य है, पर उनके मन में कहीं कोई गांठ नहीं है. इसलिये वहां बिखराव व विभ्रम की कोई गुंजाइश नहीं है.

मैं मन और आत्मा से परम आश्वस्त हूं कि एक बार फिर उनकी वाणी और कलम का निर्झर फूटेगा और उनसे फुर्सत में मुलाकातें और बातें होंगी. □



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्म : 1937, अल्मोड़ा (उ.प्र.)
कृतियां : 'जंगल में आग', 'कछुए की पीठ पर', 'गोबर गणेश', 'किस्सा गुलाम,'
संप्रति : अध्यापन
संपर्क : 3/2 प्रोफेसर्स कालोनी, भोपाल

रमेशचंद्र शाह

# गांव की नदी

वे दोनों घिर गये. अचानक ही. घर से जिस वक्त निकले थे, आसमान एकदम साफ था. नहीं तो छाता साथ में रख लेते. अचानक बारिश होने लगे और वह भी चीड़ के जंगल में, तो बचने का उपाय क्या है? चीड़ से ज्यादा सुंदर कोई पेड़ नहीं होता. मगर क्या फायदा ऐसी सुंदरता से जो न धूप से बचा सके, न बारिश से.

"अब भीगो प्रेम की छाया में. बहुत प्रेम-प्रेम कर रहे थे," अधेड़ ने हंसते हुए कहा, "तुम्हारी प्रेम कहानी के चक्कर में हम दोनों में से किसी का भी बदलते मौसम की ओर ध्यान ही नहीं गया."

"भाई साहब, ऐसे तो हम और ज्यादा भीगेंगे. इससे तो अच्छा है खुले में जा के भीगें," युवक बोला, "कम से कम रास्ता तो कटेगा. आप दौड़ लगाने को तैयार हों तो हम पांच मिनट में चुंगी पहुंच जायेंगे. वहां चाय भी मिल जायेगी और चूल्हे के पास बैठ के अपने कपड़े भी सुखा लेंगे."

अधेड़ ने इस पर अजीब-सा मुंह बनाया, "मुझे प्रेम में भींगना मंजूर है मगर भागना नहीं. तुम्हारी बात और है. तुम अपने से बीस बरस बूढ़े आदमी को अपने साथ नहीं दौड़ा सकते. समझे? रुको, यहीं कुछ इंतजाम करते हैं. आओ मेरे साथ आओ."

युवक का हाथ पकड़कर अधेड़ नीचे ढलान की ओर उतर गया जहां बीसियों चट्टानें अपनी चोंच फाड़े खड़ी थीं. दोनों एक चट्टान के नीचे जा दुबके. "यह तो मुझे सूझा ही न था," युवक बोला..."अरे भई, तुम्हारा अपना शहर है. तुम्हें कैसे सूझेगा?" अधेड़ खिलखिलाकर हंस पड़ा. "इस 'ग्रेनाइट हिल' की परिक्रमा करते-करते हमें साल भर से भी ऊपर हो गया. तुम्हीं ने चस्का डाला था इसका याद नहीं?"

**दो प्रेमी जो बरसों से लगभग रोज ही मिलते रहे हों और खुले में, दिन के प्रकाश में मिलते रहे हों— कल्पना करो कि वे जब पहली बार घुप्प अंधेरे एकांत में दुनिया की नजरों से छिपकर मिलेंगे तो वह मिलना कैसा होगा?**

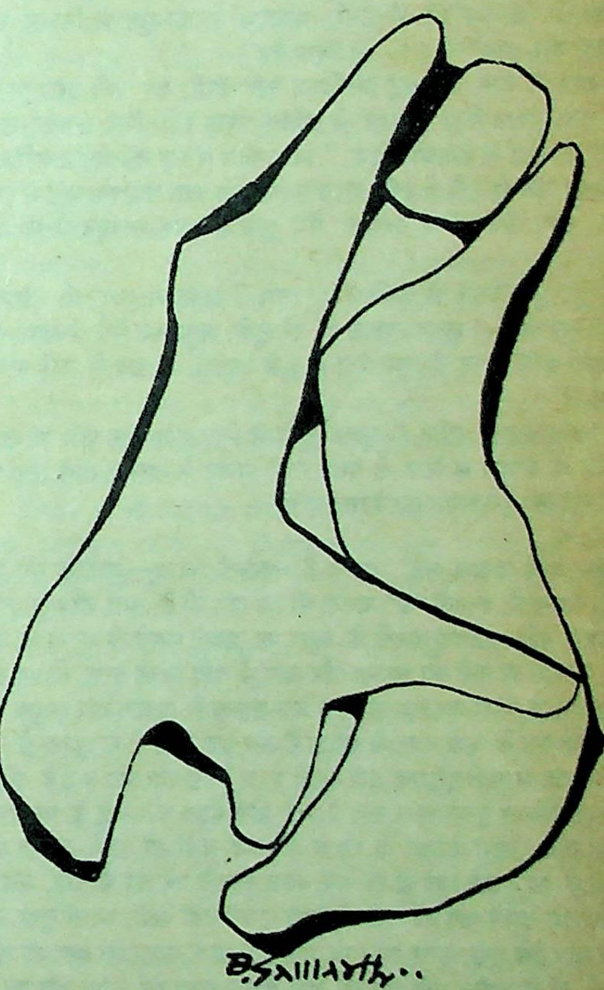

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

युवक मुस्कराने लगा. उसे अचानक याद आया जब वह इस आदमी को लेकर पहली बार यहां आया था तो छूटते ही इसने कहा था, "तुम्हारा यह ग्रेनाइट हिल एक आदमी के चेहरे की तरह है जो रोज दाढ़ी बनाता है, रोज क्लीन शेव करता है, मगर सिर्फ एक तरफ." सचमुच ऐसा ही तो दिखता है यह. मगर ऐसा हो कैसे गया? एक तरफ इतना हरा-भरा जंगल और दूसरी तरफ ऐसा नंगा उजाड़. यहां तक कि ये दैत्याकार चट्टानें भी सब जंगल की ही तरफ हैं. आखिर दूसरी तरफ क्या वज्र गिर गया था, पहाड़ धसक गया? क्या हुआ? क्या सोच रहे हो?" अधेड़ ने पूछा "क्या अब भी उसी..."

युवक के माथे पर सलवटें पड़ गईं. पता नहीं, किस झोंक में आज वह इस आदमी के सामने इस कदर खुल गया. उसे अपने ऊपर ग्लानि-सी होने लगी. क्या हो गया था मुझे आज...उसे एकाएक अधेड़ पर गुस्सा आने लगा. उसी ने तो खोद-खोद कर...नहीं. उसका कोई कसूर नहीं. मैं ही खामखाह बहक गया था—उसने अपने को याद दिलाया.

अधेड़ अनमना-सा दूर दूनागिरि की तरफ देख रहा था. मूसलाधार बारिश की धुंध में कुछ भी तो नहीं दिखाई दे रहा. न पहाड़, न नदी, न सड़क..."यह जो नदी है ना तुम्हारी, इसे देखकर मुझे हमेशा अपने गांव की नदी याद आ जाती है."

"मगर नदी यहां है कहां?...मुझे तो कुछ भी नहीं दिखाई दे रहा," युवक धुंध पर अपनी आंखें गड़ाकर नदी को खोजने की कोशिश करने लगा.

अधेड़ ने अपना एक हाथ युवक के कंधे पर रख दिया, "तुम्हें नहीं दिखाई दे रही होगी. मुझे तो दिखाई दे रही है. देखोगे?"

युवक ने चौंककर अधेड़ को गौर से देखा. अधेड़ की आवाज उसे कुछ अजीब-सी, अनपहचानी-सी लगी. एकाएक उसके मुंह से निकल पड़ा, "दादा, क्या आपने भी कभी प्रेम किया है?"

अधेड़ के चेहरे पर कोई प्रतिक्रिया नहीं दीखी. वह उसी तरह गुमसुम बना रहा. युवक थोड़ी देर तक तो प्रतीक्षा करता रहा, फिर ऊबकर उसने अधेड़ को जोरों से झकझोर दिया. "किस सोच में पड़ गये दादा? बारिश तो थमने का नाम ही नहीं ले रही. हम कब तक इस तरह यहां इस मांद में दुबके रहेंगे. अभी अंधेरा घिर आयेगा. मैंने सुना है इधर लकड़बग्घे भी आते हैं."

"तुम मुझे डराने की कोशिश मत करो," अधेड़ ने युवक की आंखों में झांकते हुए कहा, "सुनना चाहते हो, तो सुनो. मगर यह मेरी प्रेमकथा नहीं है. वादा करो कि न तो तुम बीच में मुझे टोकोगे, न बाद में कोई सवाल पूछोगे."

"ऑल राइट. एग्रीड," युवक खुशी से चिल्लाया और पीछे की तरफ खिसक के दीवाल से टिक के पसर गया. अधेड़ ने पालथी मारी और ऐसे आंखें मूंद लीं जैसे ध्यान करने जा रहा हो.

यह कोई कहानी नहीं, घटना है—सच्ची घटना—क्योंकि प्रेम एक घटना है, कहानी नहीं. घटना भी यह गांव की है, नगर की नहीं. नगर में घटना नहीं, घटनाएं घटती हैं. नगर का आदमी पहले तो घटना को उस तरह महसूस ही नहीं कर सकता और जान भी जाए किसी तरह, तो वह उसे यथावत् न तो ग्रहण कर सकता है, न बता सकता है. जबकि गांव समूचा एक मुंह से बोलता है, एक नजर से देखता है और एक तरह से ही सुनता है.

मेरे गांव से लगी हुई एक नदी बहती है. नदी पर एक घाट बना है, उतना ही पुराना जितना पुराना मेरा गांव है. नदी कोई बहुत बड़ी नहीं है, पर नहाने लायक पानी उसमें हमेशा ही रहता है. कहीं-कहीं तो डूबने लायक भी. गर्मियों में वह दुबली भले ही हो जाये, मगर सूखती वह तब भी नहीं. मैंने तो कम से कम अपने गांव की नदी को कभी सूखते नहीं देखा. बरसों गुजर गये अपना गांव देखे मुझे, मगर आज भी कोई मुझे आके बताए कि वह नदी सूख चुकी है, तो मैं यकीन नहीं करूंगा. चाहे बताने वाला मेरे अपने गांव का ही क्यों न हो.

घाट के दो हिस्से हैं. एक हिस्सा मर्दों के लिए है और दूसरा औरतों के लिए. दोनों के बीच एक दीवाल है—बहुत ही पुरानी दीवाल—जैसी तुमने शायद ही कहीं देखी होगी. यों दूर से तो उसका पता तक नहीं चलता. एकदम पास पहुंचने पर ही तुम्हारी समझ में आएगा कि अरे, यहां तो दीवार है और खासी दीवार है.

एक लड़का और एक लड़की बचपन से ही इस नदी पर नहाने आया करते हैं. पहले अपने घर के लोगों के साथ, फिर बाद में अपने सखाओं-सहेलियों के साथ. लड़का जाट है और लड़की ब्राह्मण-कन्या है. गांव के पुजारीजी की इकलौती संतान.

पुजारीजी कहने से पुजारीजी का परिचय पूरा नहीं होगा. वे काशी के पढ़े हुए थे. सुना बहुत बड़े विद्वान थे और वहीं विश्वविद्यालय में उन्हें कोई पद भी दिया गया था जो उन्होंने स्वीकार नहीं किया. इसलिए, कि गांव छोड़कर जाना-महज चाकरी करने के लिए—उनके कुलधर्म के विरुद्ध था. उस जमाने के ब्राह्मण ऐसी बातों को बहुत मानते थे और अल्पसंतोषी होते थे. हमारे पुजारीजी का इतना नाम था कि दूर-दूर से लोग उनसे पढ़ने-सीखने को आते थे. वे स्वयं कहीं नहीं जाते थे. जिन्हें आना होता था, उनके पास ही आते थे. पुजारीजी ने घर में ही एक पाठशाला खोल रक्खी थी. पर पाठशाला से भी अधिक उन्हें मंदिर से लगाव था. वह मंदिर की धुरी था. पुजारीजी स्वयं ही सारे उत्सवों का आयोजन करते थे और गांव के बच्चों को, युवकों को उनमें भाग लेते देखकर उन्हें बड़ा आनंद आता था. उन्हें संगीत में, खेल-कूद में, हर चीज में रस था. वे रूखे पंडित नहीं थे. गोपाल उन्हें इसीलिए प्रिय था कि उसका कंठस्वर बहुत ही मधुर था. होली, शिवरात्रि, जन्माष्टमी आदि अवसरों पर गोपाल के गानों की धूम मची रहती. वह बांसुरी भी बहुत अच्छी बजा लेता था.

## लघु कथा

# साक्ष्य

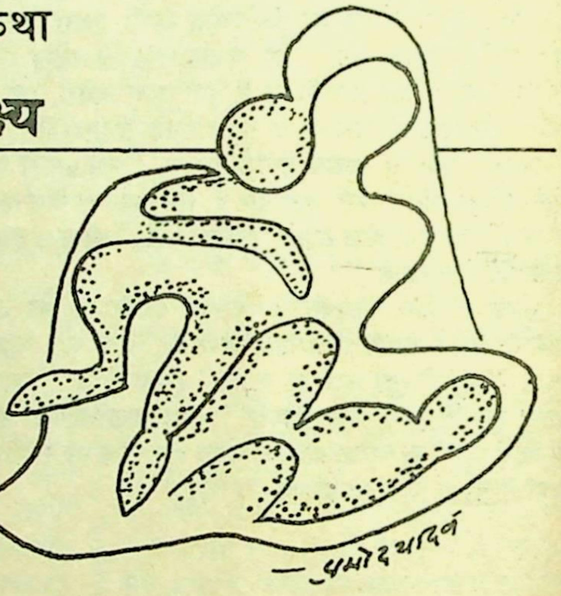

### सत्य प्रकाश हिंदवान

बलात्कार की घटना को लेकर कस्बे में आये दिन हड़ताल और बंद हो रहे थे. प्रशासन ने आखिर कुछ लोगों के खिलाफ बलात्कार का मुकदमा दायर कर दिया.

उस महिला को पुलिस कस्टोडी में 'नारी सुधार गृह' भेजने का आदेश दे दिया था. जन आक्रोश शांत हो गया था.

वह पिछले तीन दिनों से पुलिस कस्टडी से चंपत हो जाती थी. रोज बदहवास हालत में उसे दो नये पुलिस वाले फिर पुलिस कस्टडी में लाते रहे थे.

लेकिन एक शाम वह ऐसी चंपत हुई कि पता ही नहीं चला. अब पुलिस गिरफ्तार लोगों के खिलाफ मुकदमे के साक्ष्य जुटाने में परेशान थी. □



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

पुजारीजी की लड़की गोपाल के कंठस्वर की दीवानी थी. जब भी मंदिर में गोपाल का कार्यक्रम होता, वह दौड़कर वहां पहुंच जाती और जितनी देर वह गाता या बजाता रहता, उसे एकटक निहारती रहती. वह खुद गाना सीखना चाहती थी किंतु पुजारीजी चाहते थे वह विदुषी बने. आखिर वह उनके लड़के की जगह थी और बचपन से ही उसकी विलक्षण बुद्धि का सभी लोहा मानने लगे थे. सच बात तो यह है कि संगीत की ओर उसका झुकाव अचानक ही हो गया था और इसका एकमात्र कारण था गोपाल.

पता नहीं बात कहां से शुरू हुई. कहीं से भी शुरू हुई हो, इससे क्या! जब तक घटना नहीं घटी थी, दो-चार लोगों को छोड़कर, किसी को इतनी फुरसत नहीं थी कि उसका पूर्वानुमान लगाने बैठता और जब घटना घट ही गई तो पूरा गांव एक स्वर से कहने लगा कि ऐसी घटनाएं कोई एक जनम से थोड़ी निकलती हैं. यह तो पूर्वजन्म का रिश्ता था, पूर्वजन्म का.

मैं खामखाह आगे बढ़ गया. चलो, पीछे लौट चलें, जहां अभी घटना की छाया तक पड़नी शुरू नहीं हुई.

वे घाट पर ही एक दूसरे से मिलते रहे होंगे, या फिर मंदिर में. नहीं, मंदिरवाला किस्सा तो काफी बाद का किस्सा है. तब फिर, घाट पर ही पहले-पहल उन्होंने एक-दूसरे को देखा होगा. कब? यह तो कौन बता सकता है? गोपाल मेरा नहीं, मेरे बड़े भाई का दोस्त था और बड़ा भाई बड़ा भाई ही होता है. क्या बचपन में पहली बार एक-दूसरे को देख के ही वे दोनों एक-दूसरे पर निछावर हो गये थे? यह मानने को मन जरूर करता है, मगर ऐसा हो नहीं सकता क्योंकि गोपाल बचपन में न केवल मंदबुद्धि था, बल्कि बेहद शरमीला और डरपोक भी. किसी का भी ध्यान उसकी ओर आकर्षित हो, ऐसा उसमें कुछ था ही नहीं. दूसरी ओर, वह जो विदुला थी, वह बचपन से ही ऐसी विलक्षण थी—क्या रूप में, क्या बुद्धि में, क्या चाल-ढाल में,—कि पूरे गांव को उस पर गर्व होना स्वाभाविक था. गोपालजी मुखिया के लड़के जरूर थे, मगर पढ़ने-लिखने में उनका बिल्कुल मन नहीं लगता था. इकलौते भी नहीं थे, इसलिए मार भी खूब खाते थे.

कहते हैं, गांव में एक बार नाटक-मंडली आयी तो गोपालजी खाना-पीना सब भूल के दिन रात वहीं पड़े रहने लगे और जब मंडली गांव से विदा हुई तो जाने कैसी सांठ-गांठ उन्होंने उन लोगों के साथ भिड़ाई, कि दूसरे दिन वे भी गांव से गायब हो गये. तब गोपालजी मुश्किल से तेरह-चौदह साल के रहे होंगे. उन्हें ढूंढ़-खोज के वापस लाया भी गया, मगर वे कुछ ही दिन बाद फिर लापता हो गये और जब उनके घरवालों ने उन्हें वापस पाने की सारी उम्मीद छोड़ दी तो वे पूरे साल भर बाद एक दिन अचानक गांव में प्रकट हुए और सीधे घर जाने की बजाय वे पहले कहां पहुंचे? हमारे पुजारीजी के पास. पता नहीं पुजारीजी पर उन्होंने क्या जादू फेरा कि पुजारीजी खुद उन्हें साथ लेकर मुखियाजी के घर गये और कहा, ''यह वह गोपाल नहीं है जो आपके घर से भागकर गया था. यह एक दूसरा गोपाल है जो हमारे गांव का नाम उजला करेगा. मुखियाजी, स्कूल की तोता रटंत से क्या होता है? नौकरी करके पेट भरना तो इसको है नहीं. भगवान ने आपको सब कुछ दिया है. अब इस गुणी कलाकार को अपने आश्रय में लीजिए और इसे जतन से रखिए. भगवान जो करते हैं, हमारे भले के लिए ही करते हैं.''

बस, गोपालजी पुजारीजी के लाड़ले क्या बने, पूरे गांव के लाड़ले बन गये. अब तो जिधर देखो, उधर गोपालजी. गोपालजी नाटक कर रहे हैं, गोपालजी मुरली बजा रहे हैं, गोपालजी का गायन हो रहा है. घाट पर देखो तो गोपालजी जमे हुए हैं, बाट पर देखो तो गोपालजी रमे हुए हैं. कोई घर ऐसा नहीं, जहां गोपालजी की बुलाहट न हो, कोई स्वर ऐसा नहीं, जो गोपालजी के स्वर का अनुसरण न कर रहा हो.

केवल एक पुजारीजी की कन्या विदुला को छोड़कर. विदुला तक लगता है, गोपालजी की कीर्ति-कथा या तो अभी तक पहुंच ही नहीं पायी थी या फिर वह जानबूझकर उदासीन बनी हुई थी. मैंने बताया ना कि पुजारीजी पुजारीजी ही नहीं थे, आचार्यजी भी थे. और विदुला पुजारीजी की नहीं, आचार्यजी की पुत्री थी. पाठशाला की देखरेख उसी के जिम्मे थी. जिस ज़माने में लड़कियों को लोग स्कूल तक भेजने की कोई जरूरत नहीं समझते थे, उस जमाने में आचार्यजी, यानी हमारे पुजारीजी ने अपनी पुत्री को एक के बाद एक, जाने कितनी परीक्षाएं प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण करवा दी थीं. पुजारीजी के घट में—गांव वालों का यही कहना था—दो-दो जीव बैठे हैं. एक परम ज्ञानी है और दूसरा परम भक्त. कहना न होगा कि गोपालजी के गांव आने के बाद पुजारीजी का परम ज्ञानी रूप कुछ ओझल-सा हो गया था. उसकी जगह पर मानो उसे चांपकर अब वह परम भक्त विराजमान हो गया था.

एक दिन सदा की तरह विदुला अपनी पाठशाला में पढ़ा रही थी. पढ़ाते-पढ़ाते वह अचानक रुक गयी और एकटक देखने लगी सामने के उस पेड़ को, जिसके पत्तों के झुरमुट के बीच उसे एक अजीब-सी हलचल दिखाई दी थी. पहले तो उसे लगा, बंदर होंगे. फिर थोड़ी ही देर में उसे हलचल का कारण समझ में आ गया. उस वक्त पुजारीजी घर में नहीं थे. विदुला ने बच्चों को विदा कर दिया और धीरे-धीरे चलती हुई उस पेड़ के नीचे आकर खड़ी हो गयी. गोपालजी भी धीरे-धीरे उतर के अपराधी की तरह विदुला के सामने सिर झुकाए खड़े हो गये. किंतु ऐसी मुद्रा में वे एक क्षण से अधिक कैसे रह सकते थे. जल्द ही उन्होंने मुंह उठाया और विदुला के रोष भरे मुख मंडल पर आंखें गड़ा दीं और मंद-मंद मुस्कराने लगे. ''यहां क्या कर रहे थे गोपाल?'' के कड़कीले सवाल पर उनके मुंह से बेसाख्ता निकल गया, ''मैं जी, आपको ही देख रहा था. मुझे आपको देखना बहुत अच्छा लगता है. मैं आज से नहीं, कब से आपको इसी तरह देखता आ रहा हूं. जिस दिन आपको नहीं देखता, किसी काम में मन नहीं लगता.'' गोपालजी एक सांस में जाने क्या-क्या बोल गये और फिर एकाएक शरमाकर चुप हो गये. पहले तो बिदुला को अपने कानों पर ही विश्वास नहीं हुआ, फिर बहुत ही परेशान होकर उसने पूछा, ''और अभी पिताजी देख लेते तो? पिताजी से तुमको क्या डर नहीं लगता?''

गोपालजी की निगाहें उठीं और विदुला के मुख पर टिक गयीं. ''लगता तो है. इसीलिए तो...''

''इसीलिए तो...क्या?'' विदुला ने जवाब तलब किया. उसके स्वर में अब वह कड़ापन नहीं रह गया था.

''इसीलिए तो...मेरा मतलब है, इसीलिए तो आपको छुपके देखने आता हूं. वैसे तो घाट पर आपको देख ही लेता हूं. पर अक्सर मुझे देर हो जाती है और आप नहाकर जा चुकी होती हैं. तब मैं यहां चला आता हूं और पेड़ पर चढ़कर आपको देखता रहता हूं. उतनी दूर से आप अच्छी तरह दिखाई तो नहीं देतीं. मगर झलक तो पा ही जाता हूं. मन करता है, कितना अच्छा होता अगर मैं यहां पेड़ पर ही टंगे रहने की बजाय वहां आपके सामने आपके बच्चों के बीच ही बैठ सकता.''

ढीठपन की भी कोई हद होती है. बेचारी विदुला तो जैसे धरती में गड़ गयी. बमुश्किल उसने अपने को संभाला और कहा, ''कैसी मूर्खों जैसी बात कर रहे हो. अब जाओ और आगे से ऐसा मत करना. पिताजी देख लेंगे तो क्या कहेंगे.''

गोपालजी लज्जित-सी हंसी हंस दिए. पता नहीं उनके चेहरे पर निगाह पड़ते ही विदुला को भी हंसी आ गयी.

यह सारा किस्सा विदुला ने मंजुला को यानी मेरी बहन को बताया था. हर व्यक्ति का कोई न कोई एक तो ऐसा अंतरंग होता ही है जिससे जी खोला जा सके. मंजुला विदुला की ऐसी ही एकमात्र विश्वासपात्र सहेली थी. गोपालजी का ऐसा कौन था, यह कहना बड़ा मुश्किल है. यों तो वे सबके थे—हमारे भाई साहब तो उनके अंतरंग ही माने जाते थे. मगर मुझे तो विश्वास नहीं होता, उन्होंने अपना यह खास भीतरी भेद किसी के सामने प्रकट किया होगा.

मंजु को विदुला ने बताया कि इस आकस्मिक प्रणय निवेदन के बाद गोपालजी ऐसे गायब हुए कि हफ्तों तक विदुला को उनकी छाया तक नहीं दिखी. घाट पर विदुला की आंखें यहां से वहां कुछ खोजती रहतीं और निराश होकर अपने में ही लौट आतीं. तभी जन्माष्टमी का उत्सव आया. पहली बार विदुला ने गोपाल को आमने-सामने बैठकर सुना. घर पहुंचते ही उसने अपने



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

पिता से कहा, "बाबूजी, मुझे भी गाना सीखना है."

पुजारीजी एकदम ही चौंक गये. इससे पहले उन्होंने मंजुला में ऐसी किसी प्रवृत्ति के दर्शन नहीं किये थे. बोले, "गाना सीख के क्या करेगी बेटा. मेरे पास जो असली विद्या थी,वह तो मैंने तुझे दे दी. गाने-वाने में क्या रक्खा है! और...ऐसा है बेटा, आदमी को एक ही काम एकाग्रचित्त से करना होता है तभी विद्या फलती है. बाकी सब बातें विघ्नस्वरूप हैं. ये गाना-बजाना भी."

विदुला को पिता की इस बात से संतोष नहीं हुआ. उसने तत्काल उन्हें टोका, "यदि ऐसा ही है, पिताजी, तो आप गोपाल को इतना महत्व क्यों दिए हुए हैं? पहले तो आप इतना भजन-कीर्तन भी नहीं करते थे, नाटक तो आप कभी देखते ही नहीं थे. जबसे गोपाल आया, आप इन्हीं चीजों के पीछे पड़ गए हैं. पाठशाला में भी तो आप पहले से कम पढ़ाते हैं. और...पहले कितने सारे पंडित आप से चर्चा करने आया करते थे. अब क्यों नहीं आते?"

पुजारीजी भौंचक्के रह गये. उन्हें अपनी पुत्री से ऐसे प्रत्युत्तर की आशा नहीं थी. पुत्री ने अनजाने उनकी दुखती रग पर हाथ रख दिया था. वे अब पाठशाला पर अधिक ध्यान देने लगे. मंदिर उन्होंने गोपालजी को ही सौंप दिया. मगर यह देखकर उनके अचरज का ठिकाना न रहा कि विदुला, जो कि पहले मंदिर की ओर रुख ही नहीं करती थी, अब अक्सर मंदिर जाने लगी है. इतना ही नहीं, वह हर बार उत्सव से लौट के गोपाल की तारीफ के ऐसे पुल बांधती कि पुजारीजी हैरान रह जाते. लड़की में आ रहे परिवर्तन उन्हें चिंतामग्न कर देते. फिर भी उससे कुछ कहने की उन्हें हिम्मत ही नहीं पड़ती. उन्होंने उसे लड़के की तरह पाला था. उसे हर तरह की छूट दी थी. अब उसकी स्वतंत्रता में किसी तरह की बाधा डालने का अर्थ होता—अपनी ही पराजय स्वीकार करना. समूचे गांव में उनकी ऐसी प्रतिष्ठा थी जैसी और किसी की नहीं थी. भला किस की मजाल थी जो उनकी लड़की के बारे में कुछ भी प्रवाद फैलाता. उन्हें पूरा भरोसा था अपनी कन्या पर, कि वह चाहे जितनी छूट ले ले, कोई ऐसा काम नहीं कर सकती जिससे उसकी और उसके पिता की छवि धूमिल हो. फिर भी, यह तो उनकी अनुभवी आंखों से कैसे छिपा रहता कि विदुला ज्यादे से ज्यादा गोपाल का संपर्क चाहने लगी है और पढ़ाई-लिखाई के प्रति उदासीन हो चली है.

उन्होंने इस अप्रत्याशित समस्या को समय रहते हल करने की दिशा में अपना दिमाग दौड़ाना शुरू कर दिया. यह नहीं कि उन्हें विदुला के विवाह की कोई चिंता नहीं थी. वह चिंता तो उन्होंने अपनी समझ से कभी की निपटा ली थी और उस बारे में वे निश्चिंत थे. अपने एक पास ही के गांव के मेधावी छात्र को उन्होंने छात्रवृत्ति दिलवाकर काशी पठा रक्खा था. वह विदुला के साथ ही पढ़ा था और उनका विश्वास था कि विदुला के लिए उससे अधिक सुयोग्य वर कोई दूसरा नहीं मिल सकता. वे मानकर चलते थे कि इसमें विदुला की सहमति तो होगी ही. लड़के के पिता से उन्होंने बातचीत भी कर ली थी और उसे घर-जमाई बनाने की तैयारी उनकी पूरी थी. अभी लड़के की पढ़ाई पूरी होने में तीन वर्ष बाकी थे. कोई और होता उनकी जगह, तो उसकी आलोचना जरूर होती कि इतनी सयानी लड़की का विवाह क्यों नहीं हो रहा है. पर पुजारीजी से पूरे गांव की सहानुभूति थी. विदुला ही उनका एकमात्र सहारा थी. फिर विदुला ने अपने गुणों से पूरे गांव में अपनी धाक जमा रक्खी थी. किसकी मजाल थी जो उस पर उंगली उठा सके.

मगर गांव के समाज में—और विदुला के अब तक के व्यक्तित्व को देखते हुए यह तो एक अनहोनी ही थी. विदुला का उस तरह सारे उत्सवों में बढ़-चढ़कर भाग लेना और किसी न किसी बहाने गोपाल के पास बने रहना...! पुजारीजी से सीधे कहने की तो भला किसको हिम्मत होती. मगर यह भी तो असंभव था कि विदुला और गोपाल को लेकर लोगों की पौराणिक कल्पना बेरोजगार बैठी रहती. गोपाल की मित्र-मंडली भी कम तो नहीं थी. पुजारीजी को पहली बार अपनी पत्नी का न होना बुरी तरह खला. अपनी समझ से उन्होंने विदुला की मां और पिता दोनों की इकट्ठी भूमिका बखूबी निभाने में कोई कसर नहीं छोड़ी थी. अब उनकी समझ में आया कि पत्नी की मृत्यु के बाद दूसरा विवाह करने की मित्रों-शुभचिंतकों की सलाह को न मानकर उन्होंने कितनी बड़ी भूल की. पर अब पछताने से क्या हो सकता था. अब तो उस तरह की बात भी सोचना हास्यास्पद और व्यर्थ था.

सोचते-सोचते उन्हें एक तरकीब सूझ ही गयी. उन्होंने विदुला को बुलाकर कहा, "बेटा, तुमने मुझे समय रहते चेता दिया, इसके लिए मैं तुम्हारा कितना कृतज्ञ हूं, मैं बता नहीं सकता. मैं सचमुच भटक गया था. गांधर्व विद्या—इसमें कोई संदेह नहीं एक बहुत ऊंची विद्या है और इसीलिए तो वह देवताओं को भी वश में कर लेती है. किंतु वेद और व्याकरण के सामने वह कितनी हीन वस्तु है, यह विद्वान ही जान सकता है. अब जाकर मेरी समझ में आया कि हमारे पुरखों ने नृत्य और नाटक को इतना महत्व देते हुए भी शिल्पियों-कलाकारों को समाज में बहुत ऊंचा स्थान क्यों नहीं दिया था. वे अच्छी तरह जानते थे कि किसकी जगह कहां है. वे घालमेल से बचना और बचाना चाहते थे. तुम समझ रही हो ना बेटी? यह तो एक व्यसन है—यह नाचना-गाना. इसकी तैयारी और विद्या की साधना के बीच बहुत बड़ा अंतर है. दोनों एक साथ नहीं चल सकते. एक को यदि सिद्ध करना है तो दूसरे को त्यागना ही पड़ेगा. मुझी को देख लो. संस्कार कितने बलशाली होते हैं. मैं ब्राह्मण का लड़का—मुझे नाच-गाने से भला क्योंकर मोह होना चाहिए था! कितनी तपस्या करके विद्या सीखी मैंने. वह भी पिता के पुण्य-प्रताप से. नहीं तो बचपन में कुछ बरस मैं भी अपने रास्ते से भटक गया था. इन्हीं कलाकारों की सोहबत में. वह तो, कहो, सौभाग्य था मेरा, कि समय रहते पिताजी ने मुझे गांव से बाहर भेज दिया. नहीं तो मुझमें और गोपाल में

लघुकथा

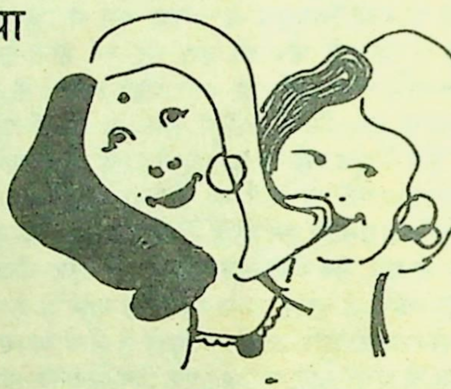

## मुक्ति

रमाकांत

मेहतरानी के साथ उसका कुत्ता भी आ जाता.

वह उसे बाहर छोड़ देती, लेकिन वह उसके मुड़ते ही चहारदीवारी फांद कर भीतर पहुंच जाता. उसे देखते ही दुर्र...दुर्र का कुहराम मच जाता. एक तो बाहर का कुत्ता, फिर मेहतरानी का. कहां छू दे, कहां मुंह मार दे, क्या ठिकाना! मालकिन मेहतरानी पर गुर्राती और आंगन में जंजीर से बंधी वफादार झबरेली कुतिया कुत्ते पर.

एक दिन मालकिन ने कुत्ते को खदेड़ने के लिए कुतिया की जंजीर खोल दी.कुतिया भौंकती हुई कुत्ते को खदेड़ती बाहर निकल गयी. वह काफी देर तक नहीं लौटी. लोगों ने देखा—दोनों गली में एक-दूसरे को सूंघने लग गये थे.

मेहतरानी मुस्करायी, "बीबी जी, इनके जात नहीं होती! कुत्ते हैं ना!"

"हां री, जभी तो पसू जोनि मिली है, नहीं तो इन्हें भी मानुख जोनि न मिली होती!" मालकिन हिकारत से बड़बड़ायी. □



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

अंतर ही क्या था.''

पुजारीजी थोड़ा रुके.अपनी पुत्री की प्रतिक्रिया को भांपने की चेष्टा करते हुए. फिर कहने लगे, ''फिर भी...फिर भी, तुमने स्वयं ही देखा, कि किस तरह अचानक वे मेरे भीतर दबे संस्कार तनिक-सी ढील देते ही कितनी बुरी तरह उभड़ आये. पढ़ने-लिखने से कैसी विरक्ति हो गयी मुझे. वह तो तुम्हारा सहारा था मुझे, नहीं तो मेरी पाठशाला उजड़ते भला कितनी देर लगती. कितने अपयश का भागी होना पड़ता मुझे पंडितों के बीच में. यदि तुम मेरी जगह पर, मेरा काम संभालने को तत्पर नहीं होतीं तो...फिर भी आखिर तुम अकेले कब तक यह दायित्व निभा सकतीं थी. गांव के लोग मेरे पीठ पीछे कितनी निंदा करने लगे थे मेरी—तुम्हें तो पता भी न होगा. मुझे तो ऐसी लत पड़ गयी थी कि सब जानते-बूझते भी मैं उस मोहनी माया से निकल ही नहीं पाता था. तुम्हीं ने मेरी आंखें खोलीं—तुम्हीं ने मुझे समय रहते सावधान किया, तो मैं-जागा. आज मुझे वह सब एक दुःस्वप्न-सा लगता है. अचरज होता है मैं कैसे उस माया में इतने दिन लिथड़ा रहा—अपना स्वधर्म छोड़कर.

''तुमने एक बार मुझसे संगीत सीखने की इच्छा प्रकट की थी. मैंने मना कर दिया था तुम्हारे ही हित को ध्यान में रखकर. अब मुझे लगता है, मैंने तुम्हारे प्रति अन्याय किया. आखिर तुम मेरी संतान हो. समूचा गांव एक स्वर से कहता है तुममें और मुझमें कोई अंतर नहीं. माना, मैंने तुम्हें अपना सर्वोत्तम दिया है. फिर भी, मुझमें जो यह दूसरी प्रवृत्ति है, इसकी कोई झलक तुममें प्रकट ही न हो, भला यह कैसे संभव था? आरंभ में वैसे कोई लक्षण तुममें भले न दीखे हों—मैंने ही कब उसे कोई बढ़ावा देना चाहा! अब गोपाल के सान्निध्य से ही सही, तुममें यह रुचि जागी है, तो उसे भी पालना-पोसना मुझे अपना कर्तव्य जान पड़ता है. गोपाल तो मुरली बजाता है जो लड़कियों के अनुकूल नहीं पड़ता. मैं तुम्हें सितार सिखाऊंगा. इस बहाने मुझे भी अपनी भूली-बिसरी विद्या को जगाने का अवसर मिलेगा. क्यों—ठीक है ना बेटी?''

विदुला ने मूक सहमति में सिर हिला दिया. वह और कर ही क्या सकती थी .पुजारीजी फिर कहने लगे, ''तुम्हें गोपाल का गाना अच्छा लगता है, तो जरूर सुनो. मगर उसके लिए उत्सवों में जाने की कोई आवश्यकता नहीं है. वैसे भी तुम्हारा विद्याभ्यास इधर अत्यंत शिथिल हो गया है.पाठशाला में भी—जबसे मैंने फिर से पूरा ध्यान देना आरंभ किया, नये विद्यार्थी बढ़ गये हैं. पुस्तकालय में भी मुझे तुम्हारा अधिक से अधिक सहयोग चाहिए. मैं गोपाल से कह दूंगा, कभी-कभी घर आकर तुम्हें सिखा दिया करेगा—सप्ताह में एकाध बार...''

''नहीं पिताजी, उसकी कोई आवश्यकता नहीं. मुझे सीखना होगा तो आपसे ही सीख लूंगी,'' विदुला के मुंह से निकल पड़ा अचानक ही. उसका आत्म-सम्मान छिड़ गया था—जैसा कि पुजारीजी को भी अभीष्ट था. और आत्म-सम्मान का सुर जब इस तरह छिड़ जाता है तो फिर बाकी सारे सुरों का दबना ही स्वाभाविक है. विदुला अपनी पुरानी दिनचर्या में लौट आयी: मंदिर और उत्सव सब इस तरह उससे छूट गये जैसे कभी रहे ही न हों. पाठशाला और पुस्तकालय का दायित्व उसने पूरी तरह ओढ़ लिया. धीरे-धीरे पुजारीजी भी फिर से मंदिर जाने लगे. गोपालजी भी विदुला की देखा देखी कुछेक माह तक तटस्थ रहे आये, हालांकि घाट पर वे नियम से पहुंचते रहे. एक दिन घाट पर उनको विदुला से या विदुला को उनसे, पता नहीं कैसे क्या संकेत प्राप्त हुए कि उन्होंने फिर से वही वृक्ष-लीला शुरू कर दी. लगता है, विदुला ने उन्हें पिता की उपस्थिति और अनुपस्थिति जताने के ऐसे उपाय खोज लिए थे कि बहुत दिनों तक गोपालजी इसी लुकाछिपी का आनंद निर्विघ्न उठाते रहे.

पुजारीजी को खटका तो था ही एक दिन आहट पाकर गोपालजी ने नीचे झांका तो क्या देखते हैं, कि विदुला के स्थान पर स्वयं पुजारीजी उन्हें निहार रहे हैं.

''नीचे उतरो बेटा,'' उन्होंने बड़े प्यार से पुकारा, ''मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि पूर्वजन्म में तुम निश्चय ही ब्राह्मण थे. यह तुम्हारे वही पुराने विद्यानुरागी संस्कार हैं जो तुम्हें छिपके ही सही, पवित्र मंत्रोच्चार सुनने को प्रेरित कर रहे हैं. प्राचीन काल में, जानते हो—आश्रमों के वृक्षों पर बैठे हुए पक्षी भी वेदमंत्र कंठस्थ कर लिया करते थे. फिर तुमने तो बड़े पुण्य से यह नरदेह पायी है. तुम जन्मजात कलाकार हो—मैंने तुम्हारे पिता से कहा था कि ऐसे कलावंत के लिए स्कूल की पढ़ाई कोई अर्थ नहीं रखती. किंतु मैं मन ही मन कभी से यह अभिलाषा संजोए हुए था कि कैसे तुम्हें देववाणी की ओर आकर्षित करूं. वही तुममें एक बड़ी भारी कमी है गोपाल. बिना ज्ञान के, संगीत ही क्यों, भक्ति भी निरर्थक है. विदुला ने बताया कि किस तरह तुमने एक बार उसकी कक्षा में बैठने की अभिलाषा प्रकट की थी. उसने तभी मुझे बताया था. अस्तु, शुभकार्य में कभी भी विलंब नहीं करना चाहिए. मैं आज ही तुम्हें विधिवत् अपनी पाठशाला में लिए ले रहा हूं. मैं स्वयं तुम्हें पढ़ाऊंगा और विदुला भी. वह तुम्हारी संगीत-कला पर मुग्ध है. मैंने उससे कहा था तुमसे विधिवत संगीत सीखे. पता नहीं क्यों उसे मेरा प्रस्ताव नहीं जंचा. लगता है, तुम्हीं को पहले उसका शिष्यत्व ग्रहण करना है—उससे संस्कृत सीख लेनी है. तभी वह तुम्हें सहर्ष अपना कला-गुरु बनायेगी. तो आओ बेटा, मेरे साथ. आज से तुम्हें नित्य प्रातःकाल दो घंटा नियमित हमारी पाठशाला को देना होगा. क्यों, ठीक है?''

इस तरह गोपालजी के जीवन का एक नया अध्याय प्रारंभ हुआ. अब यह दूसरी बात है कि वह कितना फलीभूत हो पाया. गांव के लोगों को इस पर पहले तो विश्वास ही नहीं हुआ. जब हुआ, तो तरह-तरह की टिप्पणियां हवा में तैरने लगीं. कोई कहता, ''धन्य हैं पुजारीजी. ऐसो कोउ उदार जग मांहीं.''...कोई कहता, ''यह उदारता-वुदारता कुछ नहीं, रणनीति है रणनीति...'' कोई गोपाल के भाग्य से ईर्ष्या करता मिलता तो कोई उसे उसकी मूर्खता के लिए कोसता. मुखियाजी ऐसे मग्न थे, जैसे अब गोपाल ही उनकी सात पीढ़ियों को तारने वाला हो. दो-एक मनचले छोकरे भी थे जो खुले आम गोपालजी को 'घर-जमाई' का खिताब देते थे. एक मुसीबत और थी. वही गोपालजी, जो गांव की स्त्रियों के बीच सर्वत्र सराहे जाते रहे थे, अब एकाएक उनके उपहास के विषय बन गये. रास्ता चलते औरतें उन्हें देखकर कुछ ऐसे रहस्यमय अंदाज में मुस्करातीं और ऐसे एक दूसरे को कुहनी मारतीं कि बेचारे गोपालजी जमीन में गड़ जाते.

खैर, यह सब भी गोपालजी किसी तरह झेल ही ले जाते यदि उन्हें सचमुच यह भरोसा हो पाता कि वे पढ़ाई में कुछ भी प्रगति कर पा रहे हैं और विदुला या पुजारीजी की ही निगाह में कुछ ऊंचे उठ पा रहे हैं. दुर्भाग्यवश संस्कृत उन्हें बिल्कुल पल्ले नहीं पड़ रही थी. पुजारीजी और स्वयं विदुला के अथक प्रयत्नों के बावजूद वे अब भी जहां के तहां थे. सच है, विदुला का कैसा भी सामीप्य उन्हें स्वर्ग-सुख की अनुभूति कराता था. किंतु इस अनुभूति को पाने के लिए जो कड़वे घूंट वे निगल रहे थे, इसे उनकी आत्मा ही जानती थी. दूर से जो अभी तक चंद्रमा की तरह शीतल लगती थी पास आकर जैसे वह अग्नि-शिखा बन गयी थी: उतनी ही कमनीय, उतनी ही सुध-बुध भुला देने वाली, किंतु साथ ही मन-प्राणों को एक अजीब तरह से तपाने और झुलसा देने वाली. बेचारी विदुला का भी इसमें क्या दोष देखा जाय! वह भी अपने ढंग से लाचार थी, वह भी अपनी ही आग में झुलस रही थी. उसे कभी गोपालजी की असामर्थ्य पर तरस आता और कभी झुंझलाहट होती. कभी यह झुंझलाहट अपने पिता पर केंद्रित हो जाती. यह सारा नाटक उसे लगता न जाने किस अनर्थ का सूत्रपात कर रहा है, जिसमें उसे भी अकारण और अनचाहे एक ऐसी भूमिका निभानी पड़ रही है जो किसी तरह भी उसके योग्य नहीं है. और यह सामने बैठा हुआ गोबर गणेश—यह सुरों का जादूगर, यह निरक्षर भट्टाचार्य जिसने उसके भीतर आग-सी लगा दी है, उसका सारा सुख-चैन ही छीन लिया है—इस गोबर गणेश का वह क्या करे—जो उसके बावजूद उसकी अपार करुणा और अपार मोह माया, अपार धीरज और अपार क्रोध का निरीह आलंबन बना जा रहा है.

आखिर उससे रहा नहीं गया. एक दिन प्रातःकाल, पढ़ाई आरंभ होने से पहले ही वह अपने पिता के सामने गिड़गिड़ाने लगी, ''बाबूजी...ईश्वर के



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए, अब तो उस अभागे को इस कारा से मुक्त करिए. आप अच्छी तरह जानते हैं, उसे पढ़ाया नहीं जा सकता. आपके इस विचित्र हठ का दुष्परिणाम तो देखिए—गोपाल का गाना-बजाना सब ठप्प हो गया है. वह हीनता-बोध से ग्रस्त होता जा रहा है. स्वास्थ्य भी उसका चौपट हुआ जा रहा है. उसकी दुर्दशा मुझसे देखी नहीं जाती...'' वह अपनी बात पूरी भी नहीं कर पाई. फूट-फूटकर रोने लगी.

पुजारीजी का मन भी अपनी पुत्री के दुःख से कातर हो आया. वे साधु और संवेदनशील थे. मर्यादा की रक्षा की चिंता उनके लिए जितनी स्वाभाविक थी, उतनी ही अपनी भावना और सहानुभूति की भी. पुरुषार्थ और नियति की सारी सूक्ष्मताओं में उनकी गहरी पैठ थी. मगर यह जो विकट पहेली अप्रत्याशित ही उनके सामने चुनौती की तरह खड़ी हो गई थी, इसे वे किसी भी तरह नहीं सुलझा पा रहे थे. गोपाल से उन्हें सिर्फ सहानुभूति ही नहीं थी, उनका एक अंश तो जैसे सीधे उससे जुड़ा हुआ था. उसी तरह पुत्री से उन्हें जो अंतरात्मिक लगाव था—वही उन्हें सावधान करता था कि यह जो कुछ हो रहा है, उचित नहीं हो रहा है. दोनों के बीच यदि भाई-बहन जैसा संबंध विकसित होता तो उन्हें परम संतोष होता किंतु नियति का यह खेल वे किसी तरह नहीं पचा पा रहे थे. उसमें उन्हें अनिष्ट ही अनिष्ट दिखाई दे रहा था. हां, वे भी अपने ढंग से एक विकट अंतर्द्वंद्व से गुजर रहे थे.

लगता है, दो प्रेमियों के बीच सचमुच कोई बेतार का तार काम करता है. गोपाल को कुछ कहने की नौबत ही नहीं आयी. जिस दिन पिता-पुत्री के बीच उपरोक्त संवाद घटित हुआ, ठीक उसी दिन से गोपाल ने पढ़ने आना बंद कर दिया. उबार लिया गोपाल ने अपने गुरुस्वरूप पुजारीजी को—एक बेहद अटपटी और असमंजसकारी स्थिति से.

पुजारीजी तो उबर गये और कदाचित कुछ समय के लिए किसी सीमा तक विदुला भी. किंतु गोपालजी की हालत दिनों दिन बिगड़ती गयी. घर में उनके पिता ही नहीं, भैया और भौजाई भी उन्हें अपमानित करते रहते. गांव में जिससे भी मिलते, वह सीधे मुंह बात ही नहीं करता. रातोंरात उनके लिए अनेक संबोधन प्रचलित हो गये—पंडितजी, विदुरजी, कन्हैयालाल और जाने क्या-क्या. वही स्त्रियां, जिनकी आंखों से, उन्हें देखते ही शहद चूने लगता था, अब उन्हें देखते ही मुंह फेर लेतीं. जी कड़ा करके गोपालजी ने फिर से अपनी मंदिर-चर्या शुरू कर दी. उनका गाना सुनने के लिए, बांसुरी सुनने के लिए धीरे-धीरे फिर से लोग जुटने लगे. मगर लोगों की भीड़ में गोपालजी विदुला को ही ढूंढ़ते रहते. वे जितना ही अपने को संगीत में झोंकते, उतना ही विदुला उनकी आंखों के आगे खड़ी हो जाती. हो सकता है, यह किस्सा ही हो—गांव के किसी मनचले का ही गढ़ा हुआ मगर किस्से भी तो यूं ही नहीं गढ़ जाते किसी न किसी जड़ से ही फूटते हैं वे भी. पता चला, गोपालजी एक शाम 'विदुला! विदुला!' चीखते हुए एक स्त्री के पीछे दौड़ पड़े. पास पहुंचने पर पता चला, वह तो उनकी ही भौजाई थी.

पता नहीं, घर वालों ने उन्हें घर से ही निकाल दिया या क्या हुआ, कुछ दिनों तक गोपालजी गांव से ही नदारद हो गये. दरअसल वे उसी पुरानी नौटंकी में काम खोजने निकल पड़े थे. शायद उन्होंने सोचा हो नौटंकी की जिंदगी उन्हें विदुला की मोहनी से छुटकारा दिला देगी. मगर उनका भ्रम भ्रम ही निकला. विदुला की मूरत ने वहां भी उनका पीछा न छोड़ा. एक दोपहर गांव में अचानक ही खबर फैली, कि गोपालजी घाट पर बांसुरी बजाते देखे गये. दूसरे दिन लोगों ने सुना, गोपालजी पेड़ पर चढ़के बजा रहे थे—पुजारीजी के घर के सामने ही. कुछ दिन बाद एक खबर यह भी फैली कि गोपालजी किसी तांत्रिक से वशीकरण सीख लाये हैं और छुपे तौर पर मंत्र सिद्ध करने में लगे हैं.

गोपालजी को अब किसी की परवाह नहीं रह गयी थी. वे अपना अधिकांश समय या तो मंदिर में बिताते या फिर घाट पर. मित्र मंडली में भी अब सिर्फ दो ही लोग रह गये थे उनका साथ देने वाले और वही उनके लिए काफी थे.

विदुला के दर्शन उन्हें घाट पर ही होते थे. घाट के अलावा वे और कहीं नहीं मिलते—मिल ही नहीं सकते—ऐसा ज्यादातर लोग मानते थे. कुछ सिरफिरों को छोड़कर, जो उन्हें तांत्रिक-सिद्ध बताते थे. घाट का यह मिलना भी कैसा मिलना होता होगा—तुम खुद कल्पना कर सकते हो. घाट से अधिक खुली जगह और कहां होगी. और प्रेम को क्या चाहिए? थोड़ी-सी आड़-यही ना? मगर, तुम अगर नहीं जानते, तो मैं तो कम से कम जानता हूं और पूरा गांव जानता है कि खुलापन ही सबसे बड़ी आड़ है. लोगों को भरोसा था इसके बावजूद, अपने घाट की उस दीवार पर, जो ज़ाने क्या सोचकर हमारे पुरखों ने उठाई थी और जिसकी कभी एक भी ईंट इधर से उधर नहीं हुई थी.

तो भैया, यह विचित्र प्रेम-प्रसंग इसी तरह चलता रहा और एक दिन अचानक लड़की का घाट पर आना बंद हो गया. क्यों बंद हो गया, इसकी भी एक कहानी है. मैं उसे कहानी ही कहूंगा, क्योंकि जो घटना सबके सामने नहीं घटती, जिसका कोई साक्षी नहीं होता, वह आप से आप कहानी की ढलान पर लुढ़कने लगती है और विश्वसनीय नहीं रह जाती. कहते हैं गोपालजी एक दिन दीवाल फांदकर वहां पहुंच गये जहां विदुला अपनी सहेलियों के साथ नहा रही थी और उसके कपड़े उठाकर भाग गये. अब बताओ, तुम ही इस पर यकीन करोगे? ये सीधे-सादे कहलाने वाले गांव के लोग किस कदर क्रूर हो सकते हैं, इसका तुम्हें अंदाजा नहीं हो सकता. बात की बात में विद्युत्तरंग की तरह यहां से वहां तक बस एक ही मुहावरा फैल गया—''लो अब तो चीरहरण तक मामला पहुंच गया.'' अब तुम्हीं बताओ अतिरंजना की भी कोई हद होती है! यह क्या कोई विलायत है? हजारों-लाखों लोग गंगा नहाते हैं, यमुना नहाते हैं. हजारों के सामने अधनंगी औरतें अपने गीले कपड़े बदलती देखी जा सकती हैं. कितनी आड़ चाहिए उन्हें, कितनी? मैं पूछता हूं उस अभागे ने आखिर ऐसा क्या जुल्म कर दिया अगर

पृष्ठ 68 पर जारी

## उस्ताद बंदे अली खां और उगालदान

निजाम हैदराबाद ने मशहूर बीनकार उस्ताद बंदे अली खां से पूछा, "तो आप ही बंदे अली हैं."

"जी हुजूर, आप बंदेगाने अली हैं और खाकसार बंदे अली है."

बीन सुनाने में ऐसे मस्त हुए कि बजाते-बजाते निजाम के उगालदान में पान की पीक डाल दी. उगालदान सोने का था और उस पर जवाहरात जड़े हुए थे. निजाम ने अपने ए.डी.सी. की ओर देखा और इशारा किया कि यह अब इन्हें ही दे दो. खां साहब का बीन-वादन समाप्त हुआ तो ए.डी.सी. ने कहा कि उगालदान आपको बख्श दिया गया है. ले जाइये. खां साहब ने बहुत घृणा के साथ जवाब दिया, "क्या खूब बंदे अली को बंदेगान अली उगालदान के लायक समझ रहे हैं? मैं हरगिज न ले जाऊंगा! अरे भई, है तो उगालदान ही. लोग क्या कहेंगे कि बंदे अली खां हैदराबाद से बीन सुनाकर उगालदान लाया है." □

अमीक हनफ़ी की पुस्तक 'उस्ताद रजब अली खां' से

प्रस्तुति : राजकुमार गौतम



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# पार

प्रणवकुमार वंद्योपाध्याय

**कहारों में इस बात को लेकर थोड़ी खुसर-फुसर भी होने लगी थी कि छिद्दा पहलवानों में भले ही बाजी मारता रहे लेकिन औलाद का बाप बनने के लिए एक दूसरे किस्म की ताकत चाहिए. उसका पूरा हकदार शायद पहलवान नहीं बन पाया.**

लगता है, छिद्दा भगत नहीं, उसकी लाश पड़ी है. चारपाई की हालत भी इससे बेहतर नहीं है. पायों की चूलों में अब कोई दम नहीं रह गया. नतीज़े में कम से कम दो पाये अब कभी भी जवाब दे सकते हैं. इसके अलावा बान की रस्सियां कभी जरूर चुस्त रही ही होंगी लेकिन इस वक्त की हालत देखकर उतना कबूल करना आसान नहीं लगता. ढीली रस्सियों से अब चारपाई एक गढ़ा-सा बन गयी. इस गढ़े में छिद्दा भगत बेसुध पड़ा रहता. इस कदर बेसुध कि कई बार लोगों को गलतफहमी हो जाती कि इस देह में से प्राण पखेरू निकलकर उड़ चुका होगा.

छिद्दा भगत को कई दफा मालूम भी नहीं हो पाता कि जिस्म के ऊपर मक्खियां बुरी तरह भिनभिना रही हैं. वे नाक और कान के कोटरों में, यहां तक कि मुंह खुला होने पर, गले तक पहुंच जातीं. देखनेवाला कोई अगर हुआ तो वह हैरान होता है लेकिन छिद्दा भगत को इन बातों की खबर अक्सर ही नहीं हो पाती. कई बार पहना हुआ अंगोछा कमर से खिसक जाता और अड़ोस-पड़ोस के बच्चे शुरू में तो खी-खी करते, फिर उनमें से कोई छप्पर से एक पुआल खींचकर छेड़खानी शुरू कर देता. तब जाकर कहीं होश लौटता है छिद्दा का. फिर वह एकदम से आंखें खोल मारे गुस्से के जब बौखलाने लगता, गले से निकलती आवाज साथ नहीं देती. आवाज बिखर-सी जाती और तमाशाई बच्चों को बहुत मजा आता.

काशी की घरवाली जमना माथा पीट लेती है तब. ससुर इस तरह नंग-धड़ंग पड़ा हो तो आखिर कोई बहू करे तो क्या करे. सामने जब वह जा नहीं सकती, माथा पीट लेने के अलावा कुछ और मुमकिन नहीं रहता. जमना जब से इस घर में बहू होकर आयी है, कितने ही लोग गुजर गये. कुल ग्यारह बच्चे उसने जने थे. उनमें से पांच बेटियों के अलावा कोई

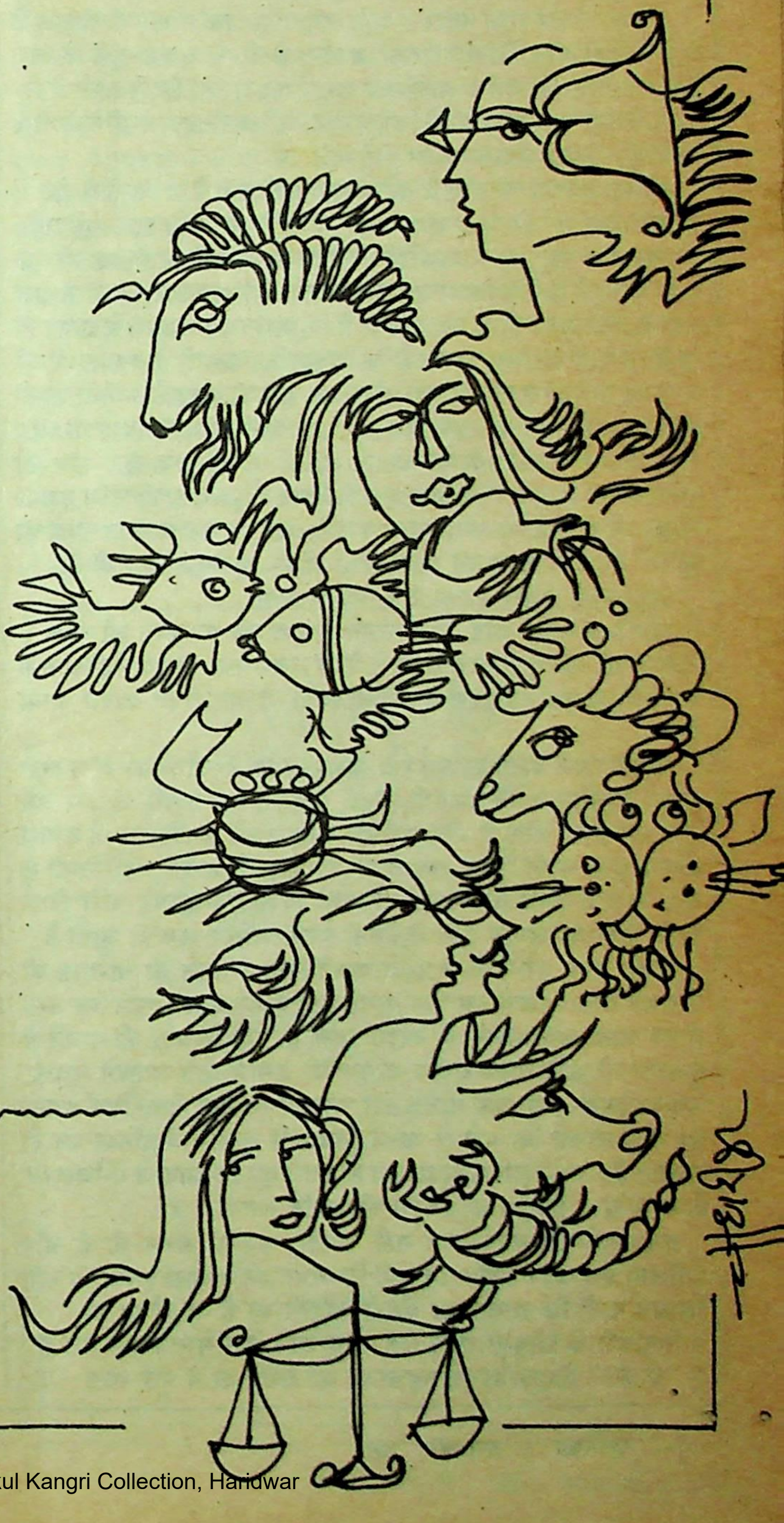

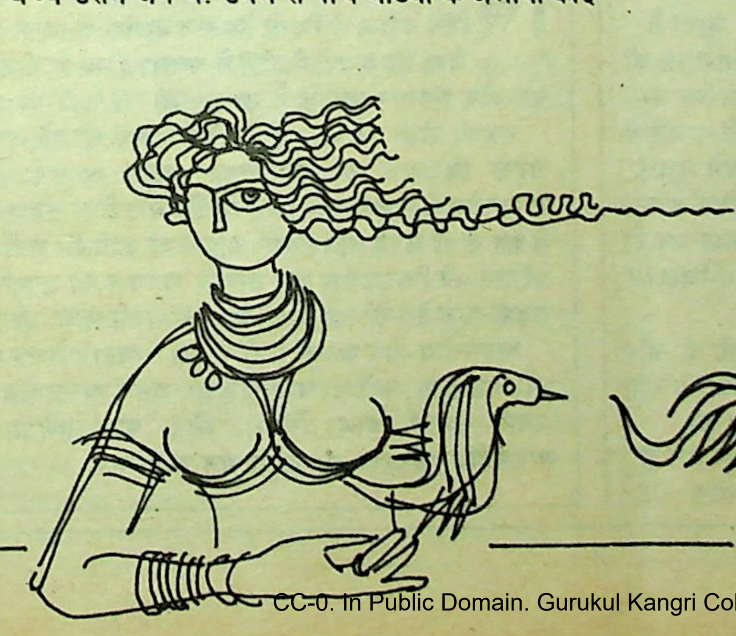

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

और जिंदा नहीं है. इसके अलावा गांव के कितने लोग इस बीच संसार का मोह-माया छोड़कर चले गये. सारा का सारा जमना को अब याद भी नहीं है. मैके में पहले मां गुजरी थी. उसके पांचेक बरस बाद बाप ने भी आंखें बंद कर लीं. यहां तक कि जमना के पूरे सात पोते-पोतियां सौरी से निकलने से पहले ही या उसके बाद साल भर के अंदर दुनिया से उठ गये. सास को भी गुजरे एक जमाना हो गया. जमना उंगलियों से गिनकर हिसाब नहीं लगा सकती. सिर्फ याद है कि एक अरसा पहले जब तीनेक दिनों के बुखार के बाद सास का जिस्म ठंडा हो गया था, उस साल बघौना में बाढ़ आयी थी. बात इतनी पुरानी है कि ज्यादातर लोगों को उसका अब खास कुछ याद भी नहीं है. जमना इसलिए उस हादसे को भूल नहीं पायी कि जाने क्यों सास उससे बेटी जैसा सलूक करती रही है, उसके गुजरने के हादसे के साथ इस वजह से उसने बाढ़ को यादों की गठरी में बांधकर रख लिया है.

जमना को हर साल क्वार में यही लगता रहा कि मौसम में चौमासे के बाद जैसे ही थोड़ा खिंचाव आया, बघौना के दो-चार बड़े-बूढ़ों के साथ छिद्दा भगत भी जरूर आंखें बंद कर लेगा. जमना हैरान होती है कि इतने क्वारों ने तो कितनों को निगल लिया लेकिन छिद्दा के सीने के नीचे छिपे हुए फेफड़े बराबर सांस लेते-देते रहे.

बघौना कहारों का गांव है. लोग यहां डोली ढोते हैं या किसी के खेत में जाकर काम कर लिया. स्कूल जाकर कभी किसी ने किताब नहीं पढ़ी, इस वजह से बहुत आगे तक की गिनती किसी को नहीं आती. यह भी एक खास वजह है कि छिद्दा भगत की उम्र की सही जानकारी किसी के पास नहीं है. वैसे कुछ लोगों का अंदाजा है कि भगत की उम्र सौ से ऊपर ही होगी. वे ऐसा इसलिए सोचते हैं कि छिद्दा कि धखाली ने जब काशी को जना था. उस साल गांव में हैजा, फैला था. हैजे की वजह से बघौना काफी कुछ साफ हो गया था. कुछ बड़े-बूढ़ों को इसलिए वह हादसा याद रह गया है. अब वही काशी कहार खासा रास्ता तय कर उम्र की दहलीज पर है. जबड़ों के दांत, कब के गिरकर धूल-मिट्टी में मिल गये. आंखों की रोशनी भी अब धुंधला गयी है. और इन सबके ऊपर चेहरे की झुर्रियों के साथ बदन की खाल ढीली होकर थुलथुल हो गयी है.

इस काशी कहार का बाप है छिद्दा भगत.

काशी से पहले कोई तेरह संतानें छिद्दा की घरवाली की कोख से निकली थीं. उनमें से चार तो सौरी में ही गुजर गयीं और नौ डेढ़ बरस से ज्यादा जिंदा नहीं रहीं. इसके बाद चौदहवीं औलाद होकर काशी आया था.

काशी पहले डोली उठाता रहा. ब्याह-शादी के मौकों पर लोग खुश होकर जो सौगात देते, जिंदगी अच्छी गुजरती रही उससे. लेकिन अब पसलियों में दर्द होता है और कई बार सांस फूलने लगती. काशी ने फिर अपना धंधा बदल लिया. तब से मजूरी करता है कहार. कभी किसी के यहां खेत में काम कर लिया तो कभी किसी का छप्पर बांध दिया रोटी-पानी का जुगाड़ इसी से किसी तरह आखिर लग ही जाता है.

सुबह काम पर जाने से पहले काशी छिद्दा भगत की चारपाई को उठाकर नीम के नीचे रख देता. भगत फिर बाहर आकर शाम तक उसी में पड़ जाता. अब बोलने की आदत इतनी हो गयी कि कोई भी सामने से गुजरता तो उसे रोककर दीन-दुनिया की तमाम बातें उगलने लगता. भगत बोलता क्या, कई बार समझ पाना नामुमकिन होता. सिर्फ इतना भर पता चलता कि गले से बाहर निकलती आवाज में दुनिया भर के जज्बात हैं. उनके परिणाम हमेशा ही इतने हुए कि आवाज के बिखरने के साथ-साथ छिद्दा का जिस्म भी थर्राने लगता.

तब नजरें बिल्कुल काम नहीं करतीं. रोशनी खत्म-सी है और पुतलियां इस कदर सफेद पड़ गयीं कि भगत की ये आंखें इतना भी नहीं पहचान पातीं कि सामने का चेहरा आदमी का है या औरत का.

बिरादरी के छोकरों में से कई लोग आये दिन मजाक कर देते हैं. "के है?" छिद्दा भगत पहचानने की कोशिश में पूछ लेता.

"पेचाना नाय भगत? हम गंगा पासी हैं." इतना कहकर वह थोड़ा और नजदीक आता और छिद्दा भगत की चारपाई पर हथेली रख देता.

मारे गुस्से के भगत आग बबूला हो उठता. पासी के पूत ने आकर छू दिया. अब कुआं जाकर नहाए बगैर कोई शुद्ध कैसे होगा?

छेड़ने वाला फिर आहिस्ता से खिसक लेता. न खिसके तो जमना होश ठिकाने लाने में देर नहीं लगायेगी. लेकिन छिद्दा भगत तब तक शांत नहीं होता जब तक उसे नहाने के लिए बहू पानी निकाल नहीं देती. इस प्रकरण में घंटा भर तो गुजर ही जाता है. एक तरफ भगत बड़बड़ाता जाता दूसरी तरफ जमना झुंझलाती रहती. हार-जीत की परवाह शायद किसी को नहीं रहती. आखिर में जमना को कुएं में से पानी निकालने के अलावा कोई चारा नहीं दिखाई पड़ता.

जमना अब नयी-नवेली दुल्हन थी, तब थी.तब मेहनत-मजदूरी करने में कोई कसर नहीं छोड़ी. लेकिन अब उम्र हो गयी है. ऊपरवाले ने लड़कों को छीन लिया. वर्ना यह उम्र तो काम करने की नहीं है. घर में बहुएं होतीं तो पैर पर पैर धर राज करती जमना. लेकिन उसे मालूम है, कहार कुल में कोई पैदा हो तो किस्मत को कोसने के अलावा करने को और कुछ रह नहीं जाता. वही करती है जमना. छिद्दा भगत जब फजीहत करने लगता, तब दोनों हथेलियों से अपना माथ पीटती है यह औरत.

कभी-कभी तो भगत को जैसे अपना होश ही नहीं रहता. बैठे-बैठे चारपाई को गंदा कर देता. दो डग भरो तो खेत ही खेत हैं. लेकिन छिद्दा को जैसे कुछ मालूम ही न हो. ऐसे मौके पर काशी अगर नजदीक हुआ तो वही बाप को चारपाई और अंगोछे के समेत धो-धाकर साफ कर देता. लेकिन कई बार जब वह नजदीक नहीं होता,जमना को ही भंगिन की तरह यह सब करना पड़ता. ऊपर से बिरादरी के किसी मर्द के सामने हाथ जोड़ने पड़ते कि वह भगत को नहला-धुलाकर साफ कर दें. ऐसे में हर बार उसने भगवान से एक ही दुआ मांगी—भगत की इन चरमचराती हड्डियों को अब छुटकारा दिला दो. लेकिन जमना की दुआओं के बावजूद छिद्दा भगत बाखूबी जी रहा है.

## यह कैसा प्रतिशोध?

दीपचंद्रा

विश्व विख्यात रूसी लेखक लियो ताल्सतोय की बेटी एक दिन पड़ोस के किसी किसान बालक के साथ खेल रही थी. जैसा कि बच्चों के खेल में अक्सर होता है, दोनों में लड़ाई हो गई और किसान बालक ने ताल्सतोय की बेटी को पीट दिया.

लड़की रोती हुई घर पहुंची और चाबुक खोजने लगी ताकि उस लड़के को मार कर वह अपना बदला ले सके. यह देखकर ताल्सतोय ने लड़की को समझाया कि बुराई का बदला बुराई से देने से वह कभी खत्म नहीं होगी, बढ़ती ही जायेगी. बेटी को प्रेम और अहिंसा की शिक्षा देते हुए उन्होंने शरबत का एक गिलास देकर लड़के को दे देने के लिए कहा. बेटी पिता की आज्ञा को टाल न सकी.

ताल्सतोय और उनकी बेटी के इस व्यवहार से वह लड़का बहुत लज्जित हुआ. उसे पश्चाताप हुआ. उसने ताल्सतोय की बेटी को अपनी बहन मान लिया, और वह हमेशा के लिए ताल्सतोय-परिवार का भक्त बन गया. □



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

छिद्दा भगत ने जवानी में तो कभी हुक्का नहीं गुड़गुड़ाया लेकिन कहारन के गुजरने के बाद जब अक्सर संजीदा रहने लगा तो पड़ोस के बिल्ला कहार ने अपना हुक्का उसे दे दिया था. तब से हुक्का पीता है छिद्दा भगत. होश-हवाश चाहे पूरा न रहे, अच्छे तंबाकू की खूब पहचान है भगत को. आखिर बाप है—इसलिए काशी को इस तंगी के बावजूद बढ़िया तंबाकू ज्यादा पैसों में खरीदकर लाना ही पड़ता.

एक दफा हुक्का गुड़गुड़ाते छिद्दा चारपाई छोड़कर उठा और थोड़े फासले पर दीवार में पीठ टिकाए खड़ा हो गया. जमना ने सुबह अपनी धोती धोकर छप्पर पर डाल दी थी. वह अब तक सूख गयी थी. बस, फिर वही हुआ जो शायद होना ही था, जमना की धोती शुरू में चीलम की आग से जलती रही फिर वही आग बढ़कर छप्पर के पुआल तक पहुंच गयी. आधा घर जल गया था. छिद्दा भगत भी जलकर अगर इसके साथ ही राख हो जाता तो जमना सोचती—देर से सही, ऊपर वाला आखिर सुन ही लेता है. लेकिन उसे हैरानी इस बात पर रही कि इतनी बड़ी तबाही के बावजूद भगत के जिस्म पर एक खरोंच भी नहीं आयी थी. गांव भर के लोग कुएं से पानी निकालकर आग बुझाने में डट गये थे. छिद्दा भगत थोड़े फासले पर खड़ा-खड़ा सब कुछ बेफिक्री से यों घूरता रहा, जैसे यह कोई खेल तमाशा हो.

काशी तब दो दिन के लिए बाहर गया था.

जमना पहले तो बेहद घबरायी. लेकिन बाद में अपना माथा पीटकर रोने लगी थी.

लौटकर काशी हैरान रह गया था.इतनी हैरानगी का तजुर्बा कभी उसे इससे पहले नहीं हुआ था. जिंदगी में सुख के दिन उसे कम ही नसीब हुए हैं लेकिन तमाम तकलीफों के बावजूद इस कदर बेसहारा भी वह आज से पहले कभी नहीं हुआ था.

जमना ने अपने मर्द को देखा और दहाड़ मारने लगी, "अब जाय के कहीं से जहर लाय देब. खाय के सो जांगे हम. इस घर मा अब जिन्न डोल रिया. सब कुछ निगल केई दम लैगा वो."

काशी एकदम चुप.

छिद्दा भगत आसमान की तरफ आंखें किये चारपाई पर बैठा था. जैसे दूर के किसी रहस्य को अब वह समझ ही लेगा. थोड़े ही फासले पर जमना दहाड़ मारती रही लेकिन भगत के चेहरे पर बेफिक्री इस कदर छायी थी कि कोई यकीन नहीं करेगा, उसके कान आंखों की तरह दो सजावटी पुर्जे भर नहीं हैं. थोड़ी देर में छिद्दा ने गर्दन सीधी की, "कै है? बप्पा है का?" काशी कहार को छिद्दा बचपन से ही इस नाम से पुकारता रहा है.

काशी थोड़ा नजदीक आया. उसे अब हैरानी नहीं होती कि आंखों की रोशनी लगभग गायब होने के बावजूद काशी को पहचानने में छिद्दा कभी गलती नहीं करता.

काशी तय नहीं कर पा रहा था कि बात कहां से शुरू की जाये.

"रोटी खाय लेव बप्पा." छिद्दा भगत की आवाज एकदम सपाट थी. सपाट और बिल्कुल निरीह.

काशी ने देखा, भगत की चारपाई के नीचे थाली पड़ी है. थाली पर आधी रोटी अब भी बची थी. काशी कहार के छप्पर की तरह. थाली के पास गिलास गिरा हुआ था. उसके पानी से जमीन का थोड़ा हिस्सा गीला भी हो गया था.

"तुमने रोटी नाय खाई?" तमाम कोशिशों के बावजूद काशी को पूछने लायक कुछ और नहीं मिला.

छिद्दा भगत थोड़ी देर एकदम खामोशी में कुछ सोचता-सा रहा. फिर बहुत जल्दी में बोला, "हमने रोटी नाय खायी बप्पा. बहू अब रोटी नाय देती हम का. तू कै तो दे बहू को. भौत भूख लगो है ह्यां." भगत ने अपने पेट की तरफ इशारा किया.

जमना एकदम से बरस पड़ी, "अब बहू को खाय के खुस होय लेव. जे घर मा अब कुछ और बचा नाय रिया."

छिद्दा भगत ने जमना की आवाज को नजरअंदाज कर दिया. या मुमकिन है, उसे कुछ सुनाई ही न पड़ा हो.

कोई दूसरा वक्त होता तो काशी अपनी घरवाली को समझाने की कोशिश करता. भगत की बातों से अब क्या उलझना. बघौना का हर कोई जानता है, भगत को न तो उत्तर का पता है, न दक्षिण का. रोटी खाकर कुल्ला करने से पहले ही बहू पर इल्जाम लगा देता—"तीन दिन से भूखा-प्यासा बैठा है कोई!" कई बार छिद्दा खासी फजीहत खड़ी कर देता. गला फाड़े बिरादरी में ऐलान कर देता कि काशी की लुगाई उसे पानी तक नहीं देती. शुरू-शुरू में लोग हैरान होते और जमना को समझाने की कोशिश करते. लेकिन फिर थोड़ा अरसे बाद आखिर खुलासा हो ही गया. इसके बावजूद भगत लोगों को यकीन दिलाने की कोशिश में कोई कसर नहीं छोड़ता.

काशी कई बार सोचता रहा कि भगत को बरेली ले जाकर दिमाग का इलाज कराया जाये तो कुछ न कुछ नतीजा जरूर निकलेगा. लेकिन एक तो पैसे की तंगी हमेशा ही किसी भी इरादे के आड़े आयी, दूसरा—बिरादरी के लोगों ने इस प्रस्ताव पर हामी नहीं भरी. आखिर सौ बरस जो शख्स पार कर गया, कितने दिन और जियेगा. अब इस उम्र में शहर तक घसीटकर क्यों किसी को सताया जाये. बाप-दादों की इस देहरी से बाहर परान निकला तो भगत की आत्मा बेसहारा नहीं भटकती फिरेगी? बस, इन बातों के बाद काशी ने फिर कोई पहल नहीं की.

जमना तो खैर थकी ही है, काशी भी अब अंदर से सुस्त पड़ गया. कभी-कभी उसे लगता है—कछुए का प्राण पाया है भगत ने. काशी को कई दफा अपनी मौत नजर आती है. साथ के कई लोग तो दुनिया छोड़कर चले भी गये. वैसे भी अब उसकी चलने लायक उम्र तो हो ही गयी है. लेकिन इसके तुरंत ही बाद काशी कहार हड़बड़ाकर थर्राने लगता. उसने आंखें बंद कर लीं तो जमना बिचारी भगत की वजह से जीते जी मारी जायेगी. कभी-कभी रात को जब अचानक नींद खुल जाती तो काशी को यही फिक्र सताने लगती.

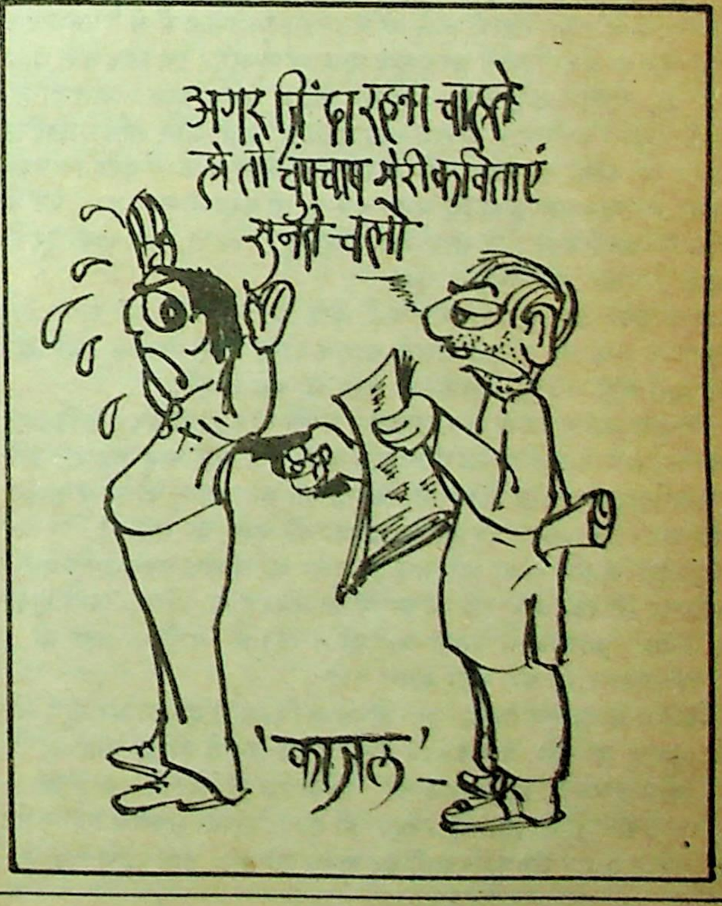


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

पहले-पहल जमना यह सब नहीं समझती थी. अब समझती है लेकिन छाती पर पत्थर रख लेने के अलावा कुछ और नहीं करती.

रात के उस अंधेरे में काशी और जमना के बीच एक घुटन-सी उतर आती. मियां-बीवी दोनों खामोश और थोड़े फासले पर बगल की कोठरी में बिछी चारपाई पर बेसुध पड़ा छिद्दा भगत.

कभी-कभी बाहर एक उल्लू बोल जाता. काशी को लगता, इस परिंदे की आवाज ने उसे बिल्कुल इसी वक्त टूट जाने से बचा लिया है. लेकिन फिर रात भर उसे नींद नहीं आती.

जमना भी करवटें बदलती रहती फिर. और इसी तरह बहुत मुश्किल से पूरब के आसमान से रोशनी फूटती.

लेकिन इस छिद्दा भगत के अतीत में जो शख्स बतौर छिद्दा कहार जिंदा रहा है, उसका इस शख्स के साथ कोई तालमेल ही नहीं है.

छिद्दा कहार बिरादरी का मशहूर पहलवान रहा है. बघौना के कहार छिद्दा की पहलवानी के लिए भी बीस-बीस कोसों तक जाने जाते रहे. बघौना से कोई पांच कोस उत्तर की तरफ बिल्थरा गांव आता है. बिल्थरा का हनुमान मंदिर जमाने से मशहूर रहा है. साल में एक दफा—नवरात्रि में मंदिर के बाहर मेला लगता और दंगल लड़े जाते. छिद्दा कहार हर बार वहां हिस्सा लेता और एक से एक मशहूर पहलवान को पस्त कर देता. अहीरों में और ठाकुरों में कितने ही ऐसे पहलवान हैं जो कभी परास्त नहीं हुए, लेकिन छिद्दा कहार ने हर बार उन सबके ऊपर ही बाजी मार ली.

छिद्दा ने कभी किसी के खेत में मजूरी नहीं की. कहता रहा, "जे तो मर्दन का नाय, औरतन का काम है. छिद्दा पैहलवान जे काम करने को पैदा नाय हुआ." लेकिन दंगल लड़कर रोटी-पानी का जुगाड़ नहीं लगता. पेट के लिए छिद्दा फिर डोली उठाता रहा है. बहुत नामा लगाकर पालकी बनायी थी छिद्दा ने. दूर-दूर से तब उसके बुलावे आते थे. कई बार डोली में लखनऊ तक की मशहूर रंडियां भी बैठी हैं लेकिन छिद्दा कहार का ऐसे मामलों में न तो कभी लेना रहा है, न देना.

एक दफा बीच रास्ते पर डोली उतरी तो छिद्दा थोड़ा फासले पर जाकर बाकी तीन कहारों के साथ बैठ गया कि झोले में से निकालकर चना-चबेना बजरंगबली का प्रसाद मानकर पा लेगा. यह कोई नयी बात नहीं थी. डोली उठाते कहार आखिर पेट में अन्न-पानी डालते ही हैं. बाकी कहारों के दिमाग में तब क्या होता है, वे ही जानें लेकिन छिद्दा कहार को डोली के अंदर बैठी औरत के खयाल ने कभी परेशान नहीं किया. हर बार यही हुआ कि चना-चबेना, जो कुछ भी साथ हुआ, पेट में डालकर बाकी कहारों के साथ वहीं थोड़ा सुस्ता लिया, फिर थोड़ी देर में डोली उठाकर आगे निकल गया.

एक दफा सीतापुर की कोई रंडी बैठी थी. सुनने में यही आता कि लखनऊ तक की रंडियां उसके सामने पानी भरने लायक नहीं थीं. बिल्कुल गोरी-चिट्टी कश्मीरन जैसी थी वह औरत.

छिद्दा कहार पेट में दाना डालकर बगल के शीशम पर पीठ टिकाए थोड़ी झपकी ले रहा था कि एकदम से आंखें खुल गयीं. नानू कहार ने उसे धक्का मारकर जगा दिया था. करता भी क्या नानू. डोली से बाहर निकलकर वह औरत इशारे से छिद्दा को बुला जो रही थी.

छिद्दा कहार थोड़ा परेशान तो हुआ था लेकिन हड़बड़ाया नहीं. आहिस्ता से उठा और रंडी के सामने जा खड़ा हुआ. बोला, "क्या कैना है, कै दो." आवाज में सख्ती भले ही न रही हो, नर्मी भी नहीं थी.

रंडी मुस्करायी थी. कुछ बोली नहीं.

छिद्दा ने महसूस किया, इस औरत के जिस्म से दुनिया भर के फूलों की खुशबू आ रही. वैसे इसका इल्म डोली उठाते ही हो गया था.

"भौत गुस्से मा हो पैलहवान?" थोड़ी देर में रंडी ने पूछ लिया.

इस सवाल से छिद्दा थोड़ा खुश ही हुआ. इसका मतलब यही हुआ कि छिद्दा कहार की पहलवानी की खबर सीतापुर तक पहुंच गयी है. वह सोच नहीं पा रहा था कि पूछे गये सवाल का क्या जवाब होना चाहिए.

औरत हंस पड़ी थी. खिलखिलाकर इतनी जोर से वह हंसी कि थोड़े फासले पर बैठे बाकी कहार हैरान रह गये थे.

छिद्दा कहार सकपका रहा था. सामने खड़ी औरत उसे इस कदर घूरे जा रही थी कि उसके बदन से खासा पसीना छूट रहा था.

"अब चलना है तो कै दो. डोली उठाय लेत हैं." बहुत मुश्किल से छिद्दा इतना ही बोल पाया था.

नाज-ओ-नखरे में रंडी ने अपनी कलई नमायी तो चूड़ियां खनक उठीं. बोली, "हमें तो कोई जल्दी नाय है, पैलहवान." इस अंदाज से बोली कि कोई दूसरा मर्द यहां होता तो पस्त हो जाता.

अब थोड़ा सख्त हुआ छिद्दा. बोला, "फिर थोड़ा आराम करने देव कहारन को."

"बाकी कहारन की खबर हमरे पास नाय है. हम तो छिद्दा पैहलवान को पैचानते हैं सिरफ." रंडी बड़ी अदा में बोल रही थी.

लेकिन छिद्दा अब संभला और औरत की बात को नजरअंदाज कर दिया.

फिर वह वापस मुड़ा और शीशम की तरफ चलने लगा.

"ठैरो थोड़ा." औरत बोली, "कभी सीतापुर आना तो हमरे कोठे मा जरूर आना. नसीबन जान को पूरा सीतापुर जानता है. तुमने पैहलवान, हमें पैचाना नाय. दमड़ी भर की औरत समझ लिया नसीबन को. लेकिन हमका पतो है, छिद्दा कहार कोई छोटा-मोटा पैहलवान नाय है. अभी तो हमने सोचो है—जे पैहलवान हीरा की कीमत समझाताई होगा." इसके बाद एकदम से ठककर औरत डोली में घुस गयी थी.

छिद्दा की सांस फूलने सी लगी थी.

शीशम के नीचे बैठे तीनों कहार हैरान रह गये थे.

लेकिन यह कहानी फिर वहीं खत्म हो गयी थी. छिद्दा ने डोली उठायी और तेज कदमों से फासला तय करने लगा.

कुछ इत्तफाक ही है, सीतापुर जाने की नौबत छिद्दा पहलवान की कभी आयी ही नहीं. कभी अगर ऐसा मौका आता भी नसीबन जान के दरवाजे तक पहलवान नहीं जाता, यह बिरादरी के लोग अच्छी तरह जानते थे.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

इसके बाद इस डोली में कितनी ही रंडियां बैठीं, उसका हिसाब कहार ने नहीं रखा. उसे इस बात का फर्क नहीं पड़ा कि सवारी रंडी है या जोगन. आखिर बजरंग बली का चेला ठहरा छिद्दा पहलवान. उन्हीं की कृपा है जो दंगल में इस तरह बाजी मारता रहा. हर चीज का आखिर कोई न कोई उसूल तो होता ही है. छिद्दा को मालूम है कि पहलवानी का शौक हो तो आदमी को पाक-साफ हुए बगैर छुटकारा नहीं. कुत्ते की तरह इधर-उधर कोई मुंह मारता रहा तो दो दिन मौज मस्ती भले ही कर ले, लेकिन आखिर में न तो इज्जत पा सकता है, न दंगल जीतकर मैदान ही मार सकता है.

बघौना गांव के कहारों में इस बात की खबर फैली तो छिद्दा कहार का ओहदा जैसे अपने आप ही थोड़ा ऊंचा हो गया. बिरादरी के लोग समझ गये छिद्दा पहलवान कोई टके, दो टके का अखाड़ेबाज नहीं, जो थोड़ा लालच अगर किसी ने दिखाया तो वहीं लार टपकाता फिरे.

छिद्दा कहार एक तरफ तो इतनी शोहरत हासिल करता रहा, दूसरी तरफ उसकी घरवाली कुंती सूखती जा रही थी. जो भी औलाद कोख से निकलती, या तो सौरी में ही खत्म हो जाती, या डेढ़ेक बरस के अंदर वे हैजा या काले बुखार से खप जाते. कुंती ने औलादों की जिंदगी की खातिर कितने ही व्रत उपवास किये, मनौतियां मानीं, लेकिन नतीजा हर बार एक ही निकला है.

कहारों में इस बात को लेकर थोड़ी खुसर-पुसर भी होने लगी थी कि छिद्दा पहलवानों में भले ही बाजी मारता रहे लेकिन औलाद का बाप बनने के लिए एक दूसरे ही किस्म की ताकत चाहिए. उसका पूरा हकदार शायद पहलवान नहीं बन पाया.

जाहिर है, इशारा छिद्दा की मर्दानगी की तरफ था. इस बात को लेकर कायदे से पहलवान तूफान उठा सकता था. मजाल है जो कोई ऐरा-गैरा छिद्दा पहलवान पर कीचड़ उछाले. लेकिन उसने अपनी जबान नहीं खोली. सोचा यही कि यह बदनामी भी बजरंगबली की मर्जी से आयी है. उसकी मर्जी से अगर किसी को इतनी शोहरत हासिल हो सकती है तो थोड़ी बदनामी भी कबूल करनी होगी.

लेकिन आखिर में यह बात बहुत आगे नहीं बढ़ी. बिरादरी के बुजुर्ग आखिर सिरफिरों की शैतानी पर कहां तक खामोशी बरतते? वैसे बिरादरी की इज्जत का भी तो सवाल था. इतना बड़ा पहलवान, जिसने कहारों का नाम रोशन किया हो, इस तरह खामख्वाह अगर बदनाम होता रहा तो कुल मिलाकर बट्टा कहारों पर ही आता है. फिर बुजुर्गों ने पहल की तो मथुरा कहार ने आकर छिद्दा से सबके सामने माफी मांगी ली. थोड़ी-सी अनबन की वजह से मथुरा ने यह बदला लिया था लेकिन बात फिर वहीं की वहीं खत्म हो गयी.

खैर, छिद्दा पहलवान की चौदहवीं औलाद है काशी.

लोग सोचते रहे, साल-डेढ़ साल से ज्यादा टिकने वाला न होगा यह बालक. लेकिन बीच में कई मर्तबा बीमार पड़ने के बावजूद काशी बदस्तूर जिंदा रहा.

कुछ इत्तफाक ही है कि काशी के बाद कुंती का फिर कभी पेट ही नहीं चढ़ा. न चढ़े, इसकी कोई शिकायत उसने नहीं की. वह रोज दुआएं मांगती कि उसका लड़का सही सलामत रहे और कहार कुल का नाम रोशन करें.

काशी जब दसेक बरस का था, कुंती ने जिद की तो छिद्दा ने लड़की ढूंढकर बेटे का ब्याह कर दिया था. गौने के बाद जमना जब ससुराल आयी, कुंती मारे खुशी के फूली न समाती. सास-बहू में इतनी पटती थी कि बिरादरी की औरतें खासी परेशान हो गयी थीं.

वैसे अपनी जबान से भले ही कुछ न बोले, छिद्दा पहलवान भी अंदर से बहुत खुश था. डोली लेकर बाहर जाता तो कई बार बहू के लिए सौगात लेकर लौटता. एक मर्तबा कानों के लिए चांदी के झुमके लाया था. नयी-नवेली दुल्हन मारे खुशी के चहकने लगी थी. भूल गयी थी कि सामने ही ससुर खड़ा है.

लेकिन छिद्दा को जाने क्यों लगता रहा है कि उसकी किस्मत इतनी अच्छी नहीं जो लगातार वह खुशी में डूबा रहे. मलेरिया का बुखार चढ़ा था कुंती को. तीन दिन और तीन रातों के बाद ठीक चौथे दिन अलसुबह वह दुनिया छोड़कर चली गयी.

छिद्दा कहार एकबारगी अकेला हो गया था.

सारा घर ही जैसे सूना हो गया था.

छिद्दा ने पहली बार महसूस किया कि वह सिर्फ दंगल ही लड़ता रहा है. कभी खयाल ही नहीं आया कि घर में जो लुगाई बैठी है, उसके भी अपने अरमान हैं. कुंती ने भी कभी अपना दुखड़ा नहीं रोया. अब, जब वह चली गयी, छिद्दा को बहुत गहराई से लगा, उस औरत के साथ बहुत बेइंसाफी हुई है.

बस, इसके बाद ही छिद्दा पहलवान ने पहलवानी छोड़ दी. शुरू में तो सिर्फ पहलवानी छोड़ी और बाद में काम-धंधा भी. काशी को एक दिन बुलाकर कह दिया, "इस जिसम से अब मजूरी नाय होती, बप्पा. अब तुम सयाने होय गये, सो घर का जिम्मा अब तुम्हरे कंधन पे."

काशी को सलाह मशविरे के लिए नहीं बुलाया था छिद्दा ने. उसे बुलाकर अपने इरादे का ऐलान भर करना था. पूरी दबंगई के साथ पहलवान ने यह कह दिया तो बेटे को यहां से खिसकने की इजाजत दे दी, "अब हयां से जाओ. पर परसान नाय होना. करने वाला सिरफ बजरंगबली है. इत्ती बात भूलियो मति."

काशी फिर हाथ मलता हुआ सामने से खिसक गया था.

उस दिन के बाद छिद्दा पहलवान की जिंदगी में एक और बदलाव आया. धर्म-कर्म में वह अपने लिए कुछ तलाशने लगा. पहले से ही वह हनुमान का भक्त रहा है, अब दुर्गा का भी सेवक हो गया. घर में जमना पहले जाने कैसे एक दुर्गा की तस्वीर आयी थी. धूल-मिट्टी के प्रकोप इस बीच उसके ऊपर इतने हो गये थे कि उस रंगीन तस्वीर के रंगों का पता अब आसानी से नहीं चलता. छिद्दा ने फिर तस्वीर को टांड में पड़े फालतू कनस्तरों और लकड़ियों के बीच से निकालकर बरामदे की दीवार पर चिपका दिया था. तब से वह घंटों तस्वीर के सामने आंखें बंद कर चुप बैठा रहता और दुर्बोध्य जबान में कुछ बड़बड़ा जाता. उसका कथ्य समझने की कोशिश बिरादरी भर में किसी ने नहीं की. लेकिन सबने यकीन कर लिया कि पहलवान अब भगत बन गया.

तब से छिद्दा पहलवान छिद्दा भगत के नाम से जाना जाता है.

यह बात अब बहुत पुरानी हो गयी, इतनी पुरानी कि बहुत लोग अब भूल ही गये कि बघौना की कहार बिरादरी में एक शेर सरीखी मर्द हुआ करता था. छिद्दा पहलवान.

कुंती की मौत छिद्दा को इस कदर बदल देगी, इसका अंदेशा किसी को नहीं था. शुरू में लोग हैरान तो हुए थे लेकिन बाद में संतोष यह समझकर कर लिया कि सब कुछ ऊपरवाले की मर्जी से ही होता है.

लोगों का खयाल था, अब संसार से जब छिद्दा का मन उचट ही गया, एक दिन जल्द ही दुनिया से मुंह मोड़कर वह चला ही जायेगा. लेकिन ऐसा नहीं हुआ. वक्त के साथ छिद्दा भगत जैसे होड़ लगा रहा था. वक्त घोड़े की तरह दौड़ जाता और उसके साथ ही साथ छिद्दा भी.

लेकिन अब भगत में खासी तब्दीलियां आ गयीं. उसे कहते अब भी लोग छिद्दा भगत ही हैं, लेकिन सौ साल की उम्र पार करने के बाद भगत को न तो अब बजरंगबली का खयाल है, न दुर्गा की फिक्र, सब कुछ विस्मृतियों में आहिस्ता-आहिस्ता खो से गये.

अब जमना को भी कई बार नहीं पहचानता भगत. बिरादरी के लोग भी अब पहचान में नहीं आते. आंखों की रोशनी तो खैर गयी ही है, दिमाग पर भी अब काबू नहीं रहा छिद्दा का. इन सबके बावजूद अपनी औलाद को बखूबी पहचानता है भगत. लोग इससे हैरान जरूर होते हैं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेकिन आखिर में समझ भी जाते कि खून की पहचान बहुत गहरी होती है.

पहले पोतियां अपनी-अपनी ससुराल से जब पीहर आतीं, खुश होता था भगत. पोतियों के संग उनके घरवाले होते, बच्चे होते और घर भर में थोड़े अरसे के लिए रंग जम जाता. लेकिन अब हालात वैसे नहीं हैं. भरी-पूरी गृहस्थी छोड़कर पोतियों को आने के मौके अब कम ही मिलते हैं. पर जब कभी वे आतीं, छिद्दा भगत को इससे रत्ती भर का फर्क नहीं पड़ता. वे अगर कभी भी न आयें भगत को मलाल नहीं होगा. अब पहचान में नहीं आतीं वे लड़कियां.

अभी कोई तीन ही दिन की बात है. भगत अंदर जाकर मटके में से आटा निकाल लाया और उसे पानी में सानकर उपले पाथने लगा.

जमना तब रसोई में थी. थोड़ी देर में लकड़ी लेने बाहर निकली तो मारे गुस्से के जिस्म का खून खौल उठा था. लेकिन करती भी क्या? ससुर को बहू हाथ पकड़कर रोक दे तो बघौना भर में फजीहत होते देर नहीं लगेगी. बिरादरी के लोग फिर रसीले बनाकर इधर-उधर सुनाते रहेंगे. तब कोई नहीं सोचेगा कि भगत की उम्र किस दहलीज पर है.

काशी घर पर नहीं था.

जमना फिर भागी हुई बिल्ला कहार के यहां पहुंची और कहारन को एक ही सांस में सब सुना गयी. कहार घर पर ही था. वह फिर दौड़ा हुआ आया और भगत को रोक लिया.

काशी जब शाम को घर लौटा, छिद्दा भगत एकदम निरीह-सा नीम के नीचे पाल्थी मारे बैठा था. उसे देखते ही जमना ने अपना माथा पीट लिया. काशी कहार के लिए यह कोई नयी बात नहीं थी. उसे समझने में फिर देर नहीं लगी कि भगत ने आज कोई और ही फजीहत की होगी.

पूरे मामले को जमना ने मिनट भर में बयान कर दिया.

छिद्दा भगत जमीन की तरफ आंखें गड़ाए बैठा था. काशी नजदीक आया तो भगत जैसे आपे में लौटा. बोला, "आय गये बप्पा?"

काशी ने जवाब नहीं दिया. वैसे जवाब की जरूरत थी भी नहीं.

"रोटी खाय लेव." भगत बोला, "हमने रोटी नाय खायी, बप्पा. भौत भूख है पेट मा."

छिद्दा भगत अब बहुत दयनीय लग रहा था.

जमना चिल्लायी, "तुम्हरे पेट मा परेत बैठा है, परेत. सब कुछ खाय गये तुम पर पेट नाय भरा."

काशी ने जमना को नहीं टोका. टोकने से भी वह नहीं रुकती. जितना कहना है, उतना कह लेने के बाद ही वह लेती.

बाहर बरामदे के पास बहुत सारा आटा बिखरा था.

काशी आंखें गड़ाए उस आटे में अपनी किस्मत ढूंढने लगा. इस उम्र में जब बाकी लोग आराम की रोटी खाते हैं, काशी कहार की रोटी-पानी के जुगाड़ में सुबह से लेकर शाम तक पसीना बहाना पड़ता. जिस्म चाहे साथ न भी दे, जिम्मेदारी से छुटकारा नहीं मिलता. ऐसे में कोई अन्न को इस तरह बर्बाद करे तो महसूस यही होता कि जिस्म का सारा खून एक कद्दावर जोंक चूसे जा रहा है.

काशी को गुस्सा तो आया था लेकिन उसने अपनी मुट्ठियां भींच लेने के अलावा और कुछ नहीं किया. लगा, यह भगत एक दिन रात को सचमुच ही प्रेत बनकर अपने बेटे और बहू को निगल जायेगा. सुबह सूरज निकलने पर लोगों को फिर दो जनों की हड्डियां भर घर में बिखरी मिलेंगी.

रात को काशी की नींद उचट गयी.

जमना कोई डरावना सपना देख रही थी शायद. जबान से अधूरी आवाज निकल रही थी. उसे जगाने के लिए काशी ने बदन पर रखा तो चौंक उठा. यह बदन है कि आग का भट्ठा. जमना बुखार में तप कर बेहोश सी थी.

काशी मारे डर के हड़बड़ाने लगा.

इतनी रात गये अब कहां से दवा-दारू जुटा लायेगा. उसने बाहर आकर आसमान की तरफ देखा. लगा नहीं कि चारेक घंटे से पहले अंधेरा छंट पायेगा.

अपनी कोठरी में छिद्दा भगत हुक्का गुड़गुड़ा रहा था. कई बार रात को जब उसे नींद नहीं आती, चीलम के तंबाकू में आग लगाकर वह हुक्के का कश खींचता रहता. जाने कैसे चीलम को सुलगाने का काम वह अपने आप ही बगैर किसी मदद के कर लेता.

काशी को लगा, भगत की जगह इस वक्त कोई दूसरा होता तो आखिर कुछ मदद जरूर हो जाती. यहां तक कि कोई लूला-लंगड़ा भी

लघु व्यंग्य कथा

## सावन के अंधे

बलवीर त्यागी

जब से हमारे देश में 'व्यक्ति' का राज खत्म हो 'व्यक्तियों' का राज हुआ है, तब से हर आदेश 'ऊपर' का आदेश होने लगा है. हुआ यह कि सूखे कि स्थिति पर 'ऊपर के आदेश' हुए कि सूखे का युद्ध स्तर पर मुकाबला किया जाये. बस, फिर क्या था, पूरा सरकारी तंत्र चुस्ती में आ गया.

मुख्यालय में कई दिनों तक हंगामी मीटिंग चलती रही. फाइलें इधर-से-उधर दौड़ती रहीं. ग्राफिक रेखाएं ऊपर-नीचे चढ़-उतर कर किसी पहाड़ी का दृश्य बनाती रहीं.

सरकार के इस जुझारू रूप को देख कर इंद्र देवता थर-थर कांपने लगे. एक दिन जब मीटिंग की कार्रवाई अपने चर्मोत्कर्ष पर थी तो इंद्र ने अपने वर्षा मंत्री वरुण को बुलाकर सख्त आदेश दिये, "बस, बहुत हो चुका. वरुण देव! जब सुंदरी मेनका विश्वामित्र जैसे तपस्वी का तप भंग कर सकती है तो क्या तुम इन पिद्दी से सरकारी अफसरों की हमारे से टक्कर लेने की योजना को चौपट नहीं कर सकते." "क्यों नहीं प्रभु, आप आदेश तो दीजिए. फिर देखना अपने 'वीरबल' वरुण का कमाल."

"जाओ, हमारा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है."

बस, कुछ देर में सारा आकाश काले-काले बादलों से भर गया. बिजली कड़कने लगी. बादल गरजने लगे और मूसलाधार वर्षा जो होने लगी तो थमने का नाम ही न लिया. शहर की सड़कें जल मग्न हो गयी. यातायात ठप्प हो गया. सारे शहर में बाढ़ जैसी स्थिति पैदा हो गयी.

गर्मी में झुलसता शहर ठंडा हो गया और अफसरों की जान में जान आयी. उन्होंने प्रदेश को सूखाग्रस्त घोषित करने की बहस को यह कहकर समाप्त कर दिया कि भारी वर्षा होने के कारण स्थिति में सुधार हुआ है. इसलिए प्रदेश को सूखाग्रस्त घोषित करने की आवश्यकता नहीं. लेकिन अगले दिन दूर-दराज के गांवों के लोग साहब लोगों की कोठी पर प्रदर्शन करने आ धमके. वह चिल्ला रहे थे, "हमें राहत दो. हमारी फसलें सूखे से नष्ट हो गयी हैं. पशु चारे और पानी के लिए तड़प रहे हैं."

लेकिन साहब लोग यह मानने को तैयार नहीं थे. उन्होंने तो पिछले दिन ही 'ऊपर वालों' को अच्छी वर्षा होने की रपट भेज दी थी. □



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता तो काशी कहार अपने को इतना बेसहारा नहीं महसूस करता.

काशी आहिस्ते-आहिस्ते चलकर छिद्‌दा भगत की कोठरी के सामने जा खड़ा हुआ. अंदर का अंधेरा बिल्कुल ठोस था. चीलम की आग भर दिखाई पड़ रही थी. छिद्‌दा हुक्के के नारियल में होंठ लगाकर कश खींचता तो वह गुड़गुड़ा उठता और चीलम की आग कुछ सुर्ख हो जाती. आग की वह सुर्खी सिर्फ दो-चार घड़ियों भर की होती. उसी से पता लगता कि हुक्के को थामे जो शख्स बैठा है, वह अब जाने किसके श्राप से प्रेत बन गया. जिससे अब किसी भी इंसान को निगलने की ताकत आ गयी उसमें.

अपने ही बाप से काशी इस तरह पहले कभी नहीं डरा था. इतना आखिर वह जानता ही है कि जिस्म की नसों में जो खून बह रहा, वह इस छिद्‌दा भगत का ही है. लेकिन रात के इस सन्नाटे में अब उसे लगा कि यह प्रेत जमना को निगले बिना नहीं मानेगा.

आखिर में काशी कोठरी के सामने से खिसका और बहुत तेज कदमों से बिल्ला कहार के दरवाजे की तरफ बढ़ने लगा. वह फिर बुरी तरह हांफने लगा था.

इतनी रात गये काशी को अपने दरवाजे पर खड़ा देखकर बिल्ला कहार भी हैरान हो रहा था. काशी ने फिर एक ही सांस में जमना की हालत का बयान किया तो बिल्ला ने अपनी घरवाली को बिस्तर से उठा लिया. कहारन जग ही रही थी. काशी कहार की बातें भी उसने सुन ली थीं. फिर बिल्ला कहार के संग वह काशी के यहां पहुंचकर भगोने में पानी लिया और कपड़े का एक टुकड़ा बार-बार भिगोकर जमना के माथे पर रखने लगी.

यहां से कैथन गांव का फासला चारेक कोस से कम नहीं होगा. वहां दो रुपये दिन के हिसाब से एक अहीर का छोरा दवा देता है. सुई लगानी हो तो तीनेक रुपये से कम में वह नहीं मानता. फासले की बात तो खैर है ही, पैसे की भी बात है. काशी को अच्छी तरह मालूम है, कभी-कभी अहीर उधार पर दवा जरूर दे देता लेकिन मरीज अगर कहारों में से है तो पाई-पाई वसूल किये बगैर खुराक की पुड़ियां नहीं देता.

जमना अंदर कराह रही थी.

काशी कहार बिल्ला के संग नीम के नीचे बैठ गया था.

बिल्ला की घरवाली जमना से शायद कुछ पूछ-पाछ रही थी. लेकिन जवाब कौन दें? जमना कहारन बेहोश होकर जहां खो गयी, वहां तक किसी की आवाज पहुंच नहीं पाती.

बाहर बहुत गहरी चुप्पी थी. लेकिन जमना के कराहने की वजह से सन्नाटा नहीं था. वर्ना छिद्‌दा भगत की कोठरी के अंधेरे की तरह यहां भी एक ठोस सन्नाटा होता.

बिल्ला कहार ने चुप्पी तोड़ी. "घबराओ मति भइए, सुबह हो जाने दो फिर चलेंगे दोनों डाकटर के यहां. पुड़िया खाय के तो मुर्दे भी चंगे होय गये."

मुर्दे का जिक्र सुनते ही काशी परेशान हो गया. सीने के अंदर जैसे एकदम से तूफान आ गया था.

बिल्ला कहार को रत्ती भर पता नहीं चला कि सामने बैठा काशी किस कदर बहदवास हो रहा है.

एक चिड़िया बोल उठी थी.

उस आवाज से वहां का सन्नाटा बुरी तरह टूटा.

बिल्ला कहार भी शुरू में थोड़ा चौंक उठा था. लेकिन वह बाद में संभवतः और काशी के कंधे पर अपनी हथेली रख दी, "जिन्नगी मा बुरा बखत किस पे नाय आता, भइए? सब परमात्मा का खेल हैं." बात खत्म कर उसने जम्हाई ली खुद वह भी समझ गया, उसकी बातों में कोई दम नहीं था. चुप्पी तोड़ने के लिए कुछ कहना था, सो कह दिया.

मौसम गर्मी का तो खैर नहीं था लेकिन घुटन सी हो गयी थी.

बिल्ला कहार जबरदस्ती फिर खांसने लगा. जैसे इसके सहारे ही थोड़ा रास्ता चला जा सकेगा. खांस लिया तो काशी के कंधे को आहिस्ता से झटका दिया, "तुहरी कहारन को कोई खतरा नाय है. दो दिन मा भली-चंगी होय के डोलती फिरैगी बघौना मा, हां. तब कैना बिल्ला कहार ने झूठ नाय कहा था." बिल्ला फिर कोशिश करके थोड़ा हंस पड़ा था.

"मो को भौत डर लगो है कहार." इतनी देर में काशी ने जबान खोली, "कहारन का कुछ पतो नाय. कब रूठ के चल देगी, राम जाने, हमरी महतारी भी तो भगत को छोड़के का जाने कहां चली गयी."

बिल्ला ने माहौल को संभालने की कोशिश की, "पर जमना कहारन की बात दूसरी है. थोड़ा तपा है जिसम, दो दिन मा एकदम चुस्त बन जावेगी, देखना."

काशी इन लफ्जों के सहारे खुद को बहुत आश्वस्त नहीं कर पाया.

छिद्‌दा भगत शायद सो गया था. कोठरी की तरफ से अब हुक्के के पानी की गड़गड़ाहट सुनाई नहीं पड़ रही थी. इस वक्त सामने बिल्ला कहार न होता तो काशी कोठरी तक जाकर एक बार और अपने बाप को देखने की कोशिश जरूर करता.

बिल्ला ने गर्दन ऊपर उठायी और आसमान की तरफ देखा. अंधेरा थोड़ा हल्का होता सा लगा.

काशी ने एक गहरी सांस ली.

बिल्ला ने काशी के कंधे को धीरे से झटका दिया, "अब फिकर करियो मति. थोड़ी देर मा सुबह हो जावेगी. चलेंगे तब कैथन के अहीर डाकटर के यहां पुड़िएं लायके कहारन के मुंह मा डाल दो फिर चंगी हो न मा देर नाय लगेगी."

काशी के सीने की धकधकी तेज हो गयी. इस वक्त घर में ढूंढो तो दमड़ी-दो दमड़ी से ज्यादा नहीं निकलने की. पिछले हफ्ते भर घुटनों के जोड़ों में दर्द रहा और काशी कहार काम पर नहीं निकल सका. जमना ने ही रोक दिया था. लेकिन तब कहार को कहां पता था कि कहारन की ही खातिर उसे मजूरी पर निकलने की जरूरत थी.

वैसे यहां सब बिरादरी वाले ही हैं. अच्छे-बुरे दिन सबके आते हैं आखिर अपने लोग ही फिर वक्त पर काम आते हैं. लेकिन जमना की शुरू से ही ऐसी अकड़ रही है कि चाहे चूल्हा न जला हो, उसने किसी के सामने अपनी धोती का पल्लू नहीं फैलाया. घर में चना-चबेना जो निकला, छिद्‌दा भगत के सामने डाल दिया. और मियां-बीवी दोनों लोटे में से पानी पीकर सो गये.

काशी तय नहीं कर पा रहा था कि अब इस संकट की घड़ी में बिल्ला कहार से कर्जे की दरख्वास्त करे तो कैसे करे? वैसे बिल्ला कहार अपना ही आदमी है. काशी को मालूम है, इस कर्जे की वजह से कभी ताने मारने नहीं आयेगा. फिर भी काशी को लगा, कर्जे की बात कहते ही वह एकदम से नंगा हो जायेगा.

बिल्ला उठने लगा था.

काशी ने उसकी तरफ सवालिए की तरह देखा.

बिल्ला ने गर्दन हिलायी, "ठैरो दो घड़ी. भगौना मा चाय बनाय के लात हैं. फिर पियेंगे बैठकै."

"हमरे लिए बनाना नाय, कहार." काशी बोला,

बिल्ला समझ गया, काशी इस वक्त घड़ी भर के लिए भी अकेला नहीं रहना चाहता. फिर वह बैठकर बीड़ी सुलगा ली और धुआं उगलने लगा.

काशी बीड़ी नहीं पीता. मुंह में तंबाकू और चूना डालकर चूसता रहता है. बरसों की यह आदत है लेकिन इस वक्त अंदर से कोई तकाजा नहीं उठा.

छिद्‌दा भगत अपनी चारपाई पर खड़ा खांस रहा था. काशी को वह आवाज बहुत विकट लगी.

"भगत जाग रहो है?" बिल्ला ने पूछा. इतनी देर में पहली बार उसे छिद्‌दा की याद आयी.

काशी कुछ नहीं बोला.

बिल्ला ने सवाल किया तो था और काशी ने कोई जवाब नहीं दिया.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके बावजूद उसने कुछ और नहीं पूछा.

सुबह हो रही थी कि बिल्ला की घरवाली भागती सी दरवाजे तक आयी.

बिल्ला लगभग उछलकर खड़ा हो गया था. बोला, "सब ठीक तो है?"

कहारन सुबकियां भरने लगी थी.

काशी कहार फिर एक तरह से छलांग मारकर अंदर आ घुसा था. वह हांफ रहा था और सारा जिस्म मारे डर के थर्राने लगा था. झुककर उसने जमना की कलाई पकड़ी. बहुत कोशिश की लेकिन नब्ज का पता नहीं चला. लेकिन अभी तक जिस्म गर्म था कहारन का.

काशी फिर एकदम बेसहारा सा धप्प से जमीन पर बैठ गया. उसने महसूस किया, उसका समूचा शरीर ठंडा होकर अब बर्फ बन रहा है.

अपनी कोठरी में पड़ा छिद्दा भगत काफी जोर से खांसने लगा था. शायद थोड़ा-सा बलगम सीने में अटक गया था और भगत को सांस लेने में तकलीफ हो रही थी.

काशी बुत सा बैठा था. छिद्दा भगत के खांसने की आवाज अब उसके अंदर नहीं पहुंच पा रही थी.

कहारन के गुजरने के ठीक महीना भर बाद एक और हादसा हो गया. काशी कहार की सबसे छोटी लड़की भगौती की मांग का सिंदूर मिट गया. भगौती सबसे छोटी होने की वजह से बहुत लाड़-प्यार से पली थी. लेकिन उसका नसीब आखिर खोटा ही निकला. ब्याह के बाद ससुराल गयी तो वहां आराम चैन तो दूर, कई बार रोटी तक नहीं नसीब होती. दामाद चार-चार दिन रंडियों के यहां पड़ा रहता और भगौती को अपनी सास और एक विधवा ननद के तानों की शिकार होना पड़ता. शुरू-शुरू में वह मैके में सब कुछ छिपाती रही. लेकिन जब आग लग ही जाये कोई कहां तक छिपाता फिरेगा? बघौना से बर्धनी का फासला ही कितना है? कुल मिलाकर दसेक कोस से ज्यादा नहीं होगा. लोग आखिर आते-जाते ही हैं फिर बर्धनी की खबरें बघौना तक आहिस्ता-आहिस्ता पहुंच ही गयी थीं.

काशी कहार ने सीने पर पत्थर रखकर यह सब कबूल कर लिया था. ऊपर वाले की यह मर्जी है तो यही सही. लेकिन मन के एक कोने में उसे थोड़ी-सी उम्मीद इस बात की थी कि कभी जरूर वक्त बदलेगा और भगौती फिर सुख-चैन के दिन काटेगी.

भगौती की कोख खुली तो एक मरा हुआ लड़का पैदा हुआ था. घर भर में हंगामा हो गया था, इस बात को लेकर. इसके बाद तीन-तीन लड़कियां जनी हैं उसने, इस बात को लेकर सास और ननद ताने देतीं और भगौती चुपचाप सुबकियां भरती रहती.

दामाद पूरा हट्टा-कट्टा जवान था. चिराग लेकर ढूंढो तो भी कहारों में ऐसा खूबसूरत लड़का नहीं मिलेगा. रंडियों के यहां उसके जाने की बात पर काशी के दिल में थोड़ी चोट तो थी लेकिन एक तरह से उसने खुद को समझा लिया था कि मर्द में थोड़ा बहुत ऐब अगर हुआ भी तो कोई तूफान नहीं आ जाता. ऊपर से तो सभी दूध के धुले दिखते हैं लेकिन ऐसे कितने माई के लाल हैं, जो यहां-वहां हाथ लगने पर मुंह न मारकर लौटे हों.

दामाद खेत में मजूरी करता था. कोई पैसे वाला वह था तो नहीं लेकिन काशी कहार अपनी बेटी के लिए इससे बेहतर कुछ और कहां से जुटाता? उसने तसल्ली कर ली थी कि बेटी के नसीब में होगा तो यही आदमी एक दिन सोना-चांदी पर लोटता फिरेगा. आखिर है सब नसीब का ही तो खेल.

लेकिन खेल कुछ ऐसा निकला कि बघौना और बर्धनी भर के लोग हैरान रह गये. खेत की मिट्टी से घास-फूस निकालकर भगौती का आदमी डलिया में डाल ही रहा था कि जाने कहां से गेंहुअन ने आकर डस लिया. शाम को सूरज डूबने से पहले यह हुआ था. अंधेरा उतरने तक वह हट्टा-कट्टा आदमी जहर से नीला होकर खत्म हो गया.

खबर पाकर काशी दौड़ा हुआ बर्धनी गया. लोग बहू को ताने दे रहे थे. काशी चुपचाप सुनता रहा कि इस औरत के नसीब से ही उसका भरा पूरा जवान मर्द दुनिया छोड़कर चला गया.

काशी समझ गया था, भगौती के अन्न पानी का हिसाब अब बर्धनी में खत्म हो गया. फिर बेटी और तीनों ध्योतियों को लेकर वह वापस बघौना आ गया.

काशी कहार हैरान रह गया था. बर्धनी से चलने लगा तो इन बच्चियों को देखकर भी किसी की आंखें नम नहीं हुई.

तब से भगौती बघौना में है.

छिद्दा भगत को इससे कोई फर्क नहीं पड़ा. इस घर की बहू जमना की अर्थी थोड़े दिन पहले ही निकली थी भगत की आंखों में रोशनी भले ही अब खास न बची हो लेकिन कोई अगर एकदम से गैरमौजूद हो गया उसे पता तो चल ही जाता लेकिन इससे उसके भीतर अब कोई हलचल नहीं होती.

काशी कहार बर्धनी गया था तो बिल्ला की घरवाली भगत के सामने थाली लगाकर रोटी पानी रखती रही है. छिद्दा को इससे कोई परेशानी नहीं हुई थी. बिल्ला कहार ने लंबी सांस भरकर कहा था, "शैतान की आंत की तरह ऊपर वाला किसी को इत्ती बड़ी उमर नाय दे." कहकर अदृश्य परमात्मा के प्रति वह हथेलियों को जोड़कर माथे तक ले आया था.

अब, जब से भगौती आयी है, रसोई की जिम्मेदारी उसी के कंधों पर है. काशी का कलेजा चिरता है. एक तो वैसे ही किस्मत की मारी है यह लड़की, ऊपर से पीहर आते ही गृहस्थी की इतनी बड़ी जिम्मेदारी. लेकिन बैठकर ठंडी आहें भरने के अलावा कहार के पास और कुछ बचा नहीं है, इतना वह बखूबी जानता है.

काशी कहार छप्पर बांधने कैथन गया था. अब चाहे घुटनों में दर्द रहे, चाहे सीने में, मजूरी के बिना वक्त नहीं कटने का. छह-छह जनों के पेट का सवाल है अब. कहार अंगोछे में गुड़-चना बांधे तड़के निकल जाता और जब लौटता सूरज डूबने के बाद खासा अंधेरा छा चुका होता.

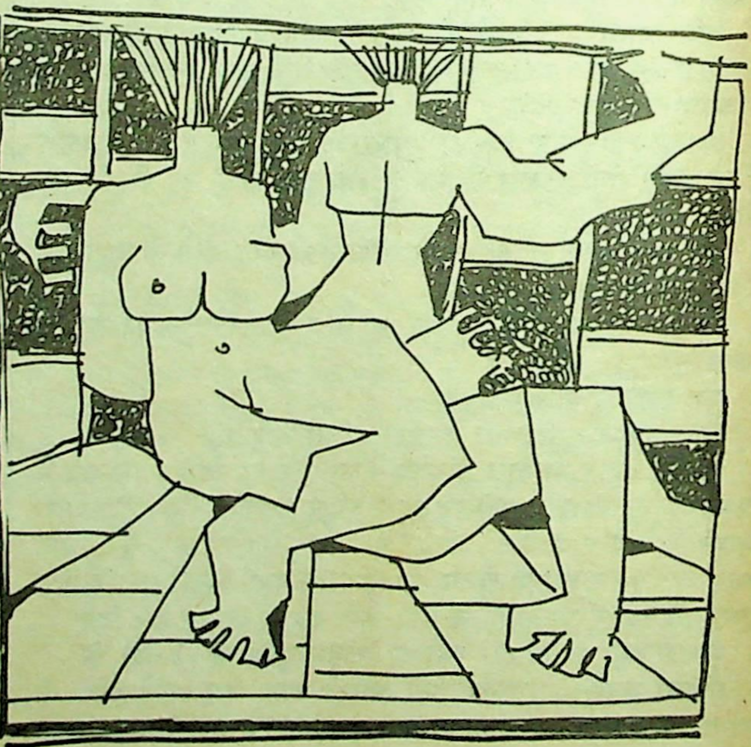

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस दिन घर लौटा तो एकदम हैरान.

भगौती के माथे पर पट्टी बंधी थी. कुप्पी की टिमटिमाती रोशनी के बावजूद अच्छी तरह मालूम हो रहा था. पट्टी पर खून के कतरे जमे हुए हैं. बिल्ला कहार ने फिर सारा मामला बयान कर दिया था.

भगौती ने रोटी की थाली भगत के सामने रखी ही थी कि वह उंगलियों से टटोलकर रोटियां गिनने लगा. एकदम से गुस्सा आ गया था छिद्दा को. बोला था, "जे कम है. पूरे दस लय कै देव."

"जे पैले खाय तो लेव बाबा." भगौती बोली थी.

बस, इतनी सी बात पर मामला बिगड़ गया. भगत ने थाली उठायी और सामने उछाल दी. वह आकर भगौती के माथे से पहले टकरायी, फिर चक्के की तरह खिसककर कुएं में जा गिरी. अभी तक थाली कुएं की ही पेंदी में पड़ी हुई है.

भगौती का चेहरा चोट की वजह से सूज गया था. खासतौर पर दोनों आंखों के नीचे के हिस्से स्याह पड़ गये थे. वह दीवार पर पीठ टिकाये एकदम गुमसुम बैठी थी.

कुप्पी की रोशनी टिमटिमा रही थी. इससे अंधेरा नहीं मिटता. लेकिन काशी कहार को लगा, उसके दिमाग की नसों के अंदर इतनी बड़ी आग जल उठी है कि अब वह अंदर-बाहर सब कुछ देख सकता है. अंधेरा रहे, तो भी.

छिद्दा भगत अपनी कोठरी में था. कहीं से किसी हलचल की आवाज नहीं आयी. काशी समझ नहीं पाया कि भगत सोया हुआ है या घुटनों के बीच सिर छिपाए कुछ सोच-विचार कर रहा है. लेकिन इतना पता करने इस दफा वह कोठरी के सामने नहीं जा खड़ा हुआ. अब तक जहां खड़ा हुआ. अब तक जहां खड़ा था वहीं आहिस्ते से बैठ गया. कंधे पर रखे अंगोछे से चेहरे का पसीना पोंछने लगा फिर.

ढिबरी की रोशनी से बनी भगौती की छाया बहुत बेसहारा-सी लग रही थी. काशी उस तरफ देखकर बिखर सा रहा था. उसने फिर थककर अपनी आंखें बंद कर ली थीं.

तड़के छिद्दा भगत को लेकर काशी निकल गया.

बचौना से कैथन तक बैलगाड़ी से जाना होता है. वहां स्टेशन तक पहुंचने के लिए मोटर गाड़ी मिल जाती. मधई कहार के पास अपनी बैलगाड़ी है. काशी ने उसे कैथन तक छोड़ आने के लिए राजी कर लिया था.

पौ जब तक फटा, काशी कहार छिद्दा भगत के साथ कैथन पहुंच गया था. वहां बाजार में चाट मिठाई की दो-तीन दुकाने हैं. काशी ने छिद्दा के लिए किलो भर मिटाई खरीदी और उसके सामने रख दिया. भगत जिंदगी में कभी इतना खुश शायद इससे पहले नहीं हुआ था. उसका वश चलता तो सिर्फ मुंह से ही नहीं जिस्म के दूसरे हिस्सों से भी इन मिठाइयों को चटकार जाता.

काशी गुमसुम खड़ा यह सब देखता रहा.

लेकिन छिद्दा भगत पावभर निगल जाने के बाद सुस्त पड़ गया.

"और खाओगे नाय?" काशी ने पूछा.

छिद्दा चुप रहा. उसे प्यास लगी थी.

काशी ने सामने लस्सी का गिलास रखा तो भगत पूरा का पूरा गटक गया.

काशी ने फिर भगत के अंगोछे में बाक़ी बची मिठाइयां बांध दी थीं.

भोजन के बाद छिद्दा भगत कभी भी इससे पहले शायद इतना तृप्त नहीं हुआ था.

काशी को लगा, अब किसी भी घड़ी भगत पूछ लेगा, "यहां किऊं ले आए मो को?"

लेकिन काशी अब हैरान हो रहा था कि बैलगाड़ी से इतनी दूर आने के बावजूद उसने अभी तक कुछ पूछा ही नहीं.

काशी ने फिर एक झोला खरीदा और उसमें चने और गुड़ ले लिए. इसके अलावा उसमें एक नया अंगौछा भी डाल दिया. पैसे नहीं थे, वर्ना भगत को एक नई धोती जरूर खरीद देता.

थोड़ी देर में बस आ गयी.

काशी छिद्दा को लकेर बैठ गयाऔर स्टेशन तक के दो टिकट खरीद लिये.

मोटरगाड़ी के सफर की वजह से बहुत खुश नजर आ रहा था भगत. काशी बार-बार उसके चेहरे की तरफ देखता और जो कुछ अनजान है, समझने की कोशिश करता.

घंटे भर का सफर था.

इस बीच काशी सिर्फ छिद्दा भगत के चेहरे पर आंखें गड़ाए बैठा रहा. जैसे भगत एकदम से कुछ पूछ लेगा और काशी कहार जवाब देने से पहले ही टुकड़ों में बंटकर खत्म हो जायेगा.

स्टेशन के सामने मोटर गाड़ी रुकी तो भगत को काशी ने इस तरह हिफाजत से उतारा गोया वह दुनिया की सबसे कीमती चीज हो.

सामने खासी भीड़ थी.

काशी छिद्दा को बचाकर टिकट की खिड़की के सामने से आया. जैसे किसी से टकराते ही भगत चूर-चूर होकर बिखर जायेगा.

खिड़की से टिकट खरीदकर काशी ने उसे छिद्दा के झोले में डाल दिया. भगत एक बनियाईन पहने तो था लेकिन कोई जेब नहीं ी. टिकट को झोले में डालने के बाद उसे कुछ याद आया तो उसने अंगोछे में एक पांच का नोट और कुछ रिजगारी बांध दिये.

गाड़ी आ गयी थी. मिनट-दो मिनट से ज्यादा कोई गाड़ी यहां नहीं रुकती. लिहाजा काशी कहार ने छिद्दा भगत को एक तरह से गोद में उठाया और सामने वाले डिब्बे में जा घुसा सीटों पर बैठने की कोई जगह ही नहीं थी...लेकिन काशी ने छिद्दा को नीचे बिठा दिया था. बिठाकर उसके घुटनों के बीच कैथन के बाजार से खरीदो झोला डाल दिया.

गाड़ी फिर सीटी देकर चलने लगी थी. काशी कहार एक तरह से कूद कर नीचे उतरा और हांफने लगा यह गाड़ी कहां जायेगी काशी नहीं जानता. उसे सिर्फ इतना भर मालूम है कि छिद्दा भगत अब कभी भी बचोना में नहीं नजर आयेगा. कोई जान भी नहीं पायेगा कि कहार बिरादरी का एक आदमी एकदम से कहां खो गया.

गाड़ी मोड़ पार करते ही आंखों से ओझल हो गयी.

काशी कहार सीना पकड़कर एकदम से बिलखने लगा था फिर. आंखें इस कदर गीली थीं कि सामने का कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा था. थोड़े ही फासले पर खड़ी मालगाड़ी भी नहीं. □

## चलते-चलते

पत्नी मृतयु शैया पर थी.

उससे पति का दुख न देखा गया, अतः उदार हृदय से उसने पति से कहा, "नाथ, आप अकेले नहीं रह सकेंगे. मेरे बाद आप अवश्य एक नयी जीवन संगिनी ले आयें."

पति कुछ नहीं बोला.

पत्नी ने फिर पूछा, "बोलिये, लायेंगे न!"

पति ने कहा, "प्रिये, यदि यही तुम्हारी अंतिम इच्छा है तो उसे कैसे टाल सकता हूं?"

"हां, मैं तो जानती ही थी कि तुम मुझसे प्रेम नहीं करते," पत्नी ने उठते हुए कहा, "लेकिन यह भी सुन लो, अब मैं नहीं मरूंगी." वह उसी दिन से ठीक होने लगी. □

—र.का.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

बारिश-कुहरे के कारण बढ़ गयी थी, काफी कम है.

बाबा के अहाते में एक मैदान है, पीछे की ओर अम्मा और छोटी पुत्रवधू सरिता ने फल-फूल और सब्जियों की सुंदर बगिया लगा रखी हैं. जाड़ों में दिन के समय और गर्मियों में शाम को बाबा इसी मैदान में निवाड़ों वाले एक पलंग पर बैठते, लेटते हैं या कुछ पढ़ते हैं. आगंतुकों के लिए कुर्सियां, मोढ़े आदि डाल दिये जाते हैं. हम लोग बेतकल्लुफी से पास पड़ी एक और खाट खींच लेते हैं. आज यहीं हुई वह स्मरणीय मुलाकात.

आते ही सभी ने एक स्वर में पूछा था—'अब कैसी तबीयत है?'

बाबा थोड़ी देर पहले लेटे हुए थे. उठकर बैठ गये. अब एकदम ठीक हूं...उन्होंने लोगों को आश्वस्त किया. बातचीत की शुरुआत रामविलास जी ने की.

पूछा, "मुर्गी-वुर्गी खा सकते हो या नहीं?"

नागार्जुन गंभीर होकर, "नहीं, यह मना है. मछली खा सकते हैं."

रामविलास जी, "तब मछली ही खाओ."

नागार्जुन, "यहां अच्छी मिलती नहीं."

रामविलासजी, "फिर मिथिला ही पहुंच जाओ, वहां मछली खाओ." हंसी....

नागार्जुन, "हां, अब फरवरी में जाऊंगा."

नागार्जुन के ठीक सामने की कुर्सी पर बैठे केदारनाथ अग्रवाल कुछ बोल नहीं रहे हैं. पहले से कितने ज्यादा 'पक' गये हैं. गौरवर्ण चेहरे पर असंख्य झुर्रियां उभर आयी हैं. कोई पंद्रह साल पहले न्यूएज प्रेस से बाहर आते समय शाम को उन्हें देखा था. उस साल सोवियत भूमि नेहरू पुरस्कार मिला था उन्हें. साथ में राजीव सक्सेना थे. उन्होंने ही परिचय दिया. साठ की उम्र में भी जवान जैसे दिखे थे. पीछे कढ़े लगभग काले बाल, आंखों पर मोटे फ्रेम का चश्मा. सफेद कमीज पैंट में. आश्चर्य हुआ था इस लिबास में देखकर क्योंकि काफी पहले 'नया पथ', 'जनयुग' और कुछ अन्य साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं में उनकी कविताओं के साथ उनकी एक फोटो देखता आया था...जवानी की अलमस्ती में निराला की तरह नंगे बदन. यही चित्र आंखों में बसा हुआ था. अब चश्मा नहीं लगाते, नजदीक की चीजें जोर लगा कर देख पाते हैं. क्या पंद्रह एक वर्ष आदमी में इतना परिवर्तन कर देते हैं? शायद पत्नी के देहावसान का भी असर है. वे कुछ बोले बगैर नागार्जुन की ओर एकटक देखते मानो उन्हें पहचानने की कोशिश कर रहे हैं. या उन्हें देखते हुए बहुत पहले नागार्जुन पर लिखी अपनी कविता याद कर रहे हैं:

"आओ, मिथिला के कवि तुम्हें गले लगा लूं...."

और नागार्जुन ने भी तो उन्हें संबोधित कर लिखी थी एक कविता.

इस बीच बातचीत जारी है. शशांक ने काफी कोशिश के बाद टेप रिकार्डर लगा दिया. बाद में पता चला वह बहुत कुछ रिकार्ड ही नहीं कर पाया. हमारी पीढ़ी अच्छी है, वह कैसेट्स की गुलाम नहीं रही. याददाश्त पर ज्यादा भरोसा करती है. नागार्जुन बौद्ध रामायण के दो खंड लिये पढ़ने की कोशिश कर रहे थे...उनके आने के पहले. बिना आतशी शीशा लिये खुद नहीं पढ़ पाते. थोड़ी देर बौद्ध दर्शन, राहुल—नागार्जुन की एक साथ लंबी यात्राओं, आज के हिंसात्मक दौर में बुद्ध के अहिंसा दर्शन की प्रासंगिकता आदि पर दिलचस्प चर्चा चली कुछ देर. किसी गंभीर विवेचन से बचते हुए. नागार्जुनजी के स्वास्थ्य का ध्यान सबसे ज्यादा है लोगों को. इस बात की 'डेलिबरेट' कोशिश थी कि बातचीत इन्हीं तीन महारथियों में चलती रहे. कटे हुए फल, तले हुए मखाने (मिथिला की खास पैदावार) और चाय आयी. बाबा ने एक दो टुकड़े फल के लिये, थोड़ी-सी चाय. केदार और रामविलासजी ने भी बहुत थोड़ी-सी चीजें चखीं. सिर्फ चाय पी. केदारजी कितने ही 'पक' गये हों, रामविलासजी 75 की उम्र में भी ताकतवर और हट्टे-कट्टे हैं. कद्दावर तो हैं ही. अरुणा आसफ अली ने 1981 में सोवियत भूमि नेहरू पुरस्कार देते समय उन्हें युवा लेखक कहा था जिसे 70 की उम्र में उन्होंने सादर स्वीकार किया था. (खुदा करे वे ऐसे ही युवा रहें) हां, अब आगे के दो-तीन दांत अवश्य अनुपस्थित हैं.

बातचीत ने अनजाने ही एक नाजुक मोड़ ले लिया. केदारजी अब भी बहुत कम बोल रहे थे. 27 दिसंबर को 'जनवादी लेखक संघ' की ओर से उनका सम्मान समारोह आयोजित है.

नागार्जुन से—"वहां आओगे?"

नागार्जुन—"आऊंगा."

"इस हालत में आ सकोगे?"

"आ सकूंगा."

किसी ने कहा, "वहां मैनेजर पांडे आने वाले हैं."

नागार्जुन, उनके पत्र का हवाला देते हुए... "नीं, वे नहीं आयेंगे, जोधपुर जायेंगे."

रामविलास, "वहां जायें या नहीं, ज.ले.सं. में वे आ ही नहीं सकते."

चंद्रबली सिंह ठठा कर हंसते हैं.

अजय तिवारी की केदारनाथ अग्रवाल से साक्षात्कार की एक किताब आयी है. उसकी भूमिका में लिखा है, श्री शिवदान चौहान अमरीकी दूतावास के अनुवाद करते थे. विष्णुचंद्र शर्मा (जो सुबह स्वागतार्थ टहल रहे थे, पर बीच में रूठ कर घर चले गये थे, अब वहां उपस्थित थे) पूछते हैं, "क्या तुम्हारा आरोप सही है?"

अजय, "मैंने किसी व्यक्तिगत रागद्वेष से कुछ नहीं लिखा. यदि शिवदानजी मेरे आरोप का खंडन करें तो मैं अपनी बात गलत मान लूंगा."

"या प्रगतिशील लेखक संघ का इतिहास यह पचा पायेगा?"

चंद्रबली सिंह, "इस पर तो रामविलास ही कुछ कह सकते हैं (उनकी ओर देखते हुए) क्यों भाई?"

रामविलास शर्मा, ज.ले.सं. और प्र.ले.सं. दोनों ही पार्टी के सही इतिहास को तलाशे बिना उसके सांस्कृतिक आंदोलन का इतिहास लिखना चाहते हैं. भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने पार्टी के दस्तावेजों का जो संग्रह छापा है उसमें सन् 42 से 48 तक के दस्तावेज शामिल नहीं हैं, जबकि वही पार्टी के सांस्कृतिक कार्य का सबसे महत्वपूर्ण काल था. पार्टी की सोच का एक प्रमाण उस समय पार्टी से संबद्ध उर्दू शायरों...जाफरी, कैफी आदि—की कविताओं में मिल सकता है. तब पाकिस्तान समर्थक कविताएं लिखी जा रही थीं. मैं नहीं जानता कि शिवदान सिंह पार्टी सदस्य थे या नहीं! सन् 53 में मेरे महासचिव काल का जो अंतिम अधिवेशन प्रगतिशील लेखक संघ का दिल्ली में हुआ, उसमें यह सवाल उठा था. दिल्ली पार्टी ने उन्हें अपना सदस्य स्वीकार नहीं किया था.

चंद्रबली सिंह, "अरे भाई नामवर भी तो नहीं थे. जब चुनाव लड़े तब भी नहीं. 53-54 में जब प्र.ले.सं. की बनारस शाखा के सचिव बने तब विश्वविद्यालय में किसी ने उन्हें डरा दिया कि अभी यह सब मत करो. उन्होंने कोई मीटिंग ही नहीं बुलायी लंबे अर्से तक."

रामविलासजी अपने छोटे भाई मुंशी से, "तुम्हें पसीना आ रहा है, कोट उतार दो."

"धूप के कारण नहीं, आप की बातों के कारण" (हंसी) मैं कह देता हूं. नागार्जुन इन बातों में रस नहीं ले पा रहे हैं. वे थककर लेट गये. केदारजी भी चुप ही रहे इस बीच. अब दो बज रहे थे, लोग चलने के लिए उठने लगे. इन महारथियों से भी एक चूक हो गयी. अम्मा (नागार्जुनजी की पत्नी) तैयार होकर पीछे चटाई पर दूसरी ओर मुंह किये बैठी थी. इस बातचीत में उनका हाल पूछने का किसी को अवसर नहीं मिला. सभी लोग सड़क तक आकर गाड़ी में बैठ गये. सेलेब्रिटी होने के बाद अनौपचारिकता में भी वैसी एक औपचारिकता छिपकर घुसपैठ कर जाती है. गाड़ी में बैठकर केदारजी को कुछ खयाल आता है. श्रीकांत जी से कहते हैं, "नागार्जुनजी से कहो, परसों के समारोह में उन्हें आने में कष्ट होगा." नागार्जुन यह सुनते हैं, फिर कहते हैं—"नहीं भाई नहीं, कोई कष्ट नहीं होगा, मैं आऊंगा....जरूर आऊंगा...." □

**रमाकांत**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

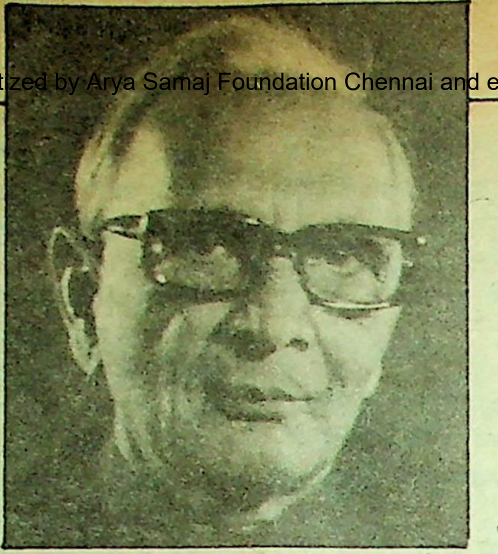

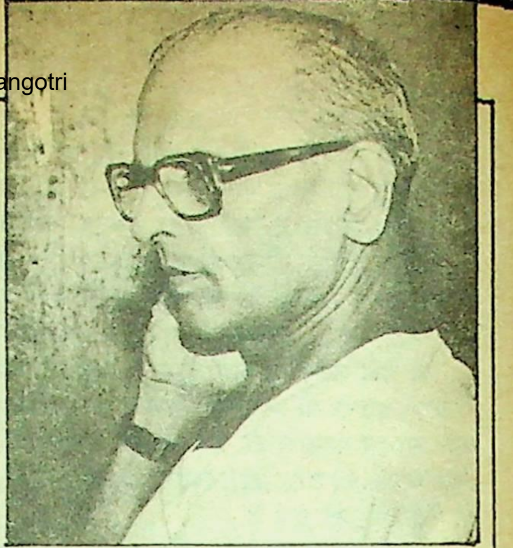

सम्मिलनी

# ग्राम गंध की छाया में

## नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल और डा. रामविलास शर्मा की ऐतिहासिक मुलाकात

बाबा नागार्जुन कहते हैं—सादतपुर में अभी ग्राम गंध शेष है. इसीलिए जब दिल्ली में होते हैं तो एक पिछड़ी हुई बस्ती की तमाम असुविधाओं के बावजूद यहां रहना उन्हें प्रिय लगता है. यहीं उनके तीसरे पुत्र श्रीकांत का मकान है जो बाबा के होने पर मानो साहित्य का तीर्थस्थल बन जाता है. यहां कई लेखक, पत्रकार, साहित्य प्रेमी भी रहते हैं जो बाबा के साथ निरंतर संवादशील होते हैं, अर्थात् बाबा के ही शब्दों में अपने 'गोत्र' के लोगों का अभाव यहां नहीं खलता.

दिल्ली के उत्तर पूर्वी छोर पर तीमारपुर के आगे जमुना पर वजीराबाद पुल पार करने के बाद कोई छः किलोमीटर आगे करावल नगर जानेवाले उपमार्ग पर है सादतपुर. यहां आकर लगता ही नहीं कि यह दिल्ली की ही कोई बस्ती है. यह हिंदुस्तान की कोई भी छोटी-मोटी पिछड़ी हुई बस्ती हो सकती है. सड़क के उस पार है पुराना गांव सादतपुर गूजरान. इसका असर सादतपुर कालोनी की अर्ध-शहरी बस्ती में भी दिखायी देता है. खाली प्लाटों के इर्द-गिर्द अधिकांशतः दो-तीन कमरों के मकान, अहातों में बाग-बगीचों के बीच कहीं-कहीं फैशनेबुल यूकलिप्टस और गुलमोहर भी. कच्चे-पक्के रास्तों पर इक्का-दुक्का मोटरसायकिलों और ट्रैक्टरों के साथ भैंसों के झुंड, चारा काटने वाली मशीनों की छक-छक और गोबर थापती तगड़ी, मेहनतकश गूजर औरतें...सच ही तो कहते हैं बाबा—सादतपुर में ग्राम गंध शेष है. और यह ग्राम गंध ही क्या बाबा की कविता की भी प्राण नहीं है?

यहीं हुई उस दिन साहित्य के तीन महारथियों की मुलाकात.

## डायरी : 15-12-86

कल लगभग आठ माह बाद बाबा दिल्ली पहुंचे. पूरा साहित्य-संसार पिछले महीनों उनकी बीमारी की खबरों से चिंतित था. लैंसडाउन (जहरी खाल) से लौट कर पहले पटना में बीमार पड़े, फिर अपनी भूमि मिथिला चले गये जहां दरभंगा मेडिकल कालेज में भर्ती किये गये. खबरें आयी थीं...पूरा दरभंगा मेडिकल कालेज और फिर जन दबाव पर बिहार सरकार अपनी धरती के इस यशस्वी पुत्र के स्वास्थ्य लाभ के लिए जी-जान से जुट गयी थी. यहां सादतपुर के साहित्यकारों ने 22 जून को उनका 75वां जन्मदिवस मनाया था. नागार्जुनजी की पत्नी जिन्हें सभी अम्मा कहते हैं, अभी यहीं थीं. बैठक में वे भी आयी थीं. एक ओर मौन बैठी हुई. महेश ने कुछ बोलने के लिए कहा था. मन तो दरभंगा में टंगा है, यहां क्या कहें! श्रीकांत रिजरवेशन करा लाए हैं, जल्द ही बिहार जायेंगी. सभा में नागार्जुन की कविताओं का पाठ हुआ. वक्ताओं ने यह उद्गार व्यक्त करते हुए कहा कि कबीर की परंपरा में अकेले नागार्जुन का नाम इस युग के कवियों में लिया जा सकता है, उनके शीघ्र स्वास्थ्य लाभ और दीर्घ जीवन की कामना की थी. ...अब उन्हें स्वस्थ देखकर अतीव प्रसन्नता हुई — मात्र यह कहना भाव को पूरी तरह नहीं दर्शाता. यहां सुबह टहलने निकलते हैं तो बारी-बारी से—कभी इन्हें तो कभी उन्हें...हम सभी को अपना स्नेह-आशीर्वाद बांटते हैं. आज यह सौभाग्य मुझे मिला, बाबा अपनी स्वाभाविक मुद्रा में लगे. लेकिन नहीं, पहले की तरह पूर्ण सहज नहीं हो पाते. बीमारी के कारण शारीरिक मुद्राएं कुछ अधिक श्रमसाध्य-सी लगती हैं. इसके पहले शोभाकांत, (बाबा के बड़े पुत्र) से चर्चा हो चुकी है. बताया, वर्षों तपश्चर्या जैसे जीवन के कारण नसें सूख गयी थीं, भयानक रक्ताल्पता थी. बोतलों खून और प्लाज्मा चढ़ाया गया तब स्वस्थ हुए हैं बाबा. अब कुछ महीनों बाद फिर बुलाया है डाक्टरों ने....

## बृहस्पतिवार : 26-12-86

आज सादतपुर या राजधानी की ही नहीं बल्कि संपूर्ण साहित्य-जगत की एक ऐतिहासिक घटना घटी. हिंदी साहित्य के तीन महारथी बाबा नागार्जुन, कवि केदारनाथ अग्रवाल और डा. रामविलास शर्मा चालीस वर्ष की परस्पर मैत्री के बाद जीवन के 75वें वर्ष में पहली बार एक साथ इकट्ठा हुए हैं. हाल ही में केदारनाथ अग्रवाल ने भी 75 वर्ष पूरे किये हैं और रामविलासजी ने भी. केदारजी के गृह नगर बांदा में इस उपलक्ष्य में भव्य समारोह हुआ जिसमें देश भर से हिंदी साहित्यकार जमा हुए थे. शायद इस अवसर का अभिषेक करने के लिए ही उन्हें इस वर्ष हिंदी का साहित्य अकादमी पुरस्कार घोषित हुआ है. इसी सिलसिले में वे दिल्ली आये हैं. रामविलासजी अवकाश प्राप्त करने के बाद से दिल्ली में ही रह रहे हैं. नागार्जुन बीमारी के बाद अब दिल्ली में हैं, यह खबर पाकर दोनों ही लोग उनसे मिलने आये हैं, यहां सादतपुर की इस बस्ती में. साथ में हैं आलोचक और जनवादी लेखक संघ के महासचिव चंद्रबली सिंह, और मुंशी (रामशरण शर्मा, रामविलासजी के छोटे भाई). साथ लेकर आये हैं अजय तिवारी—केदारजी की पुत्री गाजियाबाद में रहती हैं, उन्हीं के पुत्र शशांक के साथ उनकी कार में.

वे लोग साढ़े ग्यारह के करीब पहुंचे थे. दिसंबर की धूप खूब खिली हुई है, हवा भी नहीं है और सर्दी पिछले कई दिनों की अपेक्षा जो



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बारिश-कुहरे के कारण बढ़ गयी थी, काफी कम है.

बाबा के अहाते में एक मैदान है, पीछे की ओर अम्मा और छोटी पुत्रवधू सरिता ने फल-फूल और सब्जियों की सुंदर बगिया लगा रखी हैं. जाड़ों में दिन के समय और गर्मियों में शाम को बाबा इसी मैदान में निवाड़ों वाले एक पलंग पर बैठते, लेटते हैं या कुछ पढ़ते हैं. आगंतुकों के लिए कुर्सियां, मोढ़े आदि डाल दिये जाते हैं. हम लोग बेतकल्लुफी से पास पड़ी एक और खाट खींच लेते हैं. आज यहीं हुई वह स्मरणीय मुलाकात.

आते ही सभी ने एक स्वर में पूछा था–'अब कैसी तबीयत है?'

बाबा थोड़ी देर पहले लेटे हुए थे. उठकर बैठ गये. अब एकदम ठीक हूं...उन्होंने लोगों को आश्वस्त किया. बातचीत की शुरुआत रामविलास जी ने की.

पूछा, "मुर्गी-वुर्गी खा सकते हो या नहीं?"

नागार्जुन गंभीर होकर, "नहीं, यह मना है. मछली खा सकते हैं."

रामविलास जी, "तब मछली ही खाओ."

नागार्जुन, "यहां अच्छी मिलती नहीं."

रामविलासजी, "फिर मिथिला ही पहुंच जाओ, वहां मछली खाओ." हंसी....

नागार्जुन, "हां, अब फरवरी में जाऊंगा."

नागार्जुन के ठीक सामने की कुर्सी पर बैठे केदारनाथ अग्रवाल कुछ बोल नहीं रहे हैं. पहले से कितने ज्यादा 'पक' गये हैं. गौरवर्ण चेहरे पर असंख्य झुर्रियां उभर आयी हैं. कोई पंद्रह साल पहले न्यूएज प्रेस से बाहर आते समय शाम को उन्हें देखा था. उस साल सोवियत भूमि नेहरू पुरस्कार मिला था उन्हें. साथ में राजीव सक्सेना थे. उन्होंने ही परिचय दिया. साठ की उम्र में भी जवान जैसे दिखे थे. पीछे कढ़े लगभग काले बाल, आंखों पर मोटे फ्रेम का चश्मा. सफेद कमीज पैंट में. आश्चर्य हुआ था इस लिबास में देखकर क्योंकि काफी पहले 'नया पथ', 'जनयुग' और कुछ अन्य साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं में उनकी कविताओं के साथ उनकी एक फोटो देखता आया था...जवानी की अलमस्ती में निराला की तरह नंगे बदन. यही चित्र आंखों में बसा हुआ था. अब चश्मा नहीं लगाते, नजदीक की चीजें जोर लगा कर देख पाते हैं. क्या पंद्रह एक वर्ष आदमी में इतना परिवर्तन कर देते हैं? शायद पत्नी के देहावसान का भी असर है. वे कुछ बोले बगैर नागार्जुन की ओर एकटक देखते मानो उन्हें पहचानने की कोशिश कर रहे हैं. या उन्हें देखते हुए बहुत पहले नागार्जुन पर लिखी अपनी कविता याद कर रहे हैं:

"आओ, मिथिला के कवि तुम्हें गले लगा लूं...."

और नागार्जुन ने भी तो उन्हें संबोधित कर लिखी थी एक कविता.

इस बीच बातचीत जारी है. शशांक ने काफी कोशिश के बाद टेप रिकार्डर लगा दिया. बाद में पता चला वह बहुत कुछ रिकार्ड ही नहीं कर पाया. हमारी पीढ़ी अच्छी है, वह कैसेट्स की गुलाम नहीं रही. याददाश्त पर ज्यादा भरोसा करती है. नागार्जुन बौद्ध रामायण के दो खंड लिये पढ़ने की कोशिश कर रहे थे...उनके आने के पहले. बिना आतशी शीशा लिये खुद नहीं पढ़ पाते. थोड़ी देर बौद्ध दर्शन, राहुल–नागार्जुन की एक साथ लंबी यात्राओं, आज के हिंसात्मक दौर में बुद्ध के अहिंसा दर्शन की प्रासंगिकता आदि पर दिलचस्प चर्चा चली कुछ देर. किसी गंभीर विवेचन से बचते हुए. नागार्जुनजी के स्वास्थ्य का ध्यान सबसे ज्यादा है लोगों को. इस बात की 'डेलिबरेट' कोशिश थी कि बातचीत इन्हीं तीन महारथियों में चलती रहे. कटे हुए फल, तले हुए मखाने (मिथिला की खास पैदावार) और चाय आयी. बाबा ने एक दो टुकड़े फल के लिये, थोड़ी-सी चाय. केदार और रामविलासजी ने भी बहुत थोड़ी-सी चीजें चखीं. सिर्फ चाय पी. केदारजी कितने ही 'पक' गये हों, रामविलासजी 75 की उम्र में भी ताकतवर और हट्टे-कट्टे हैं. कद्दावर तो हैं ही. अरुणा आसफ अली ने 1981 में सोवियत भूमि नेहरू पुरस्कार देते समय उन्हें युवा लेखक कहा था जिसे 70 की उम्र में उन्होंने सादर स्वीकार किया था. (खुदा करे वे ऐसे ही युवा रहें) हां, अब आगे के दो-तीन दांत अवश्य अनुपस्थित हैं.

बातचीत ने अनजाने ही एक नाजुक मोड़ ले लिया. केदारजी अब भी बहुत कम बोल रहे थे. 27 दिसंबर को 'जनवादी लेखक संघ' की ओर से उनका सम्मान समारोह आयोजित है.

नागार्जुन से–"वहां आओगे?"

नागार्जुन–"आऊंगा."

"इस हालत में आ सकोगे?"

"आ सकूंगा."

किसी ने कहा, "वहां मैनेजर पांडे आने वाले हैं."

नागार्जुन, उनके पत्र का हवाला देते हुए... "नीं, वे नहीं आयेंगे, जोधपुर जायेंगे."

रामविलास, "वहां जायें या नहीं, ज.ले.सं. में वे आ ही नहीं सकते."

चंद्रबली सिंह ठठा कर हंसते हैं.

अजय तिवारी की केदारनाथ अग्रवाल से साक्षात्कार की एक किताब आयी है. उसकी भूमिका में लिखा है, श्री शिवदान चौहान अमरीकी दूतावास के अनुवाद करते थे. विष्णुचंद्र शर्मा (जो सुबह स्वागतार्थ टहल रहे थे, पर बीच में रूठ कर घर चले गये थे, अब वहां उपस्थित थे) पूछते हैं, "क्या तुम्हारा आरोप सही है?"

अजय, "मैंने किसी व्यक्तिगत रागद्वेष से कुछ नहीं लिखा. यदि शिवदानजी मेरे आरोप का खंडन करें तो मैं अपनी बात गलत मान लूंगा."

"या प्रगतिशील लेखक संघ का इतिहास यह पचा पायेगा?"

चंद्रबली सिंह, "इस पर तो रामविलास ही कुछ कह सकते हैं (उनकी ओर देखते हुए) क्यों भाई?"

रामविलास शर्मा, ज.ले.सं. और प्र.ले.सं. दोनों ही पार्टी के सही इतिहास को तलाशे बिना उसके सांस्कृतिक आंदोलन का इतिहास लिखना चाहते हैं. भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने पार्टी के दस्तावेजों का जो संग्रह छापा है उसमें सन् 42 से 48 तक के दस्तावेज शामिल नहीं हैं, जबकि वही पार्टी के सांस्कृतिक कार्य का सबसे महत्वपूर्ण काल था. पार्टी की सोच का एक प्रमाण उस समय पार्टी से संबद्ध उर्दू शायरों...जाफरी, कैफी आदि–की कविताओं में मिल सकता है. तब पाकिस्तान समर्थक कविताएं लिखी जा रही थीं. मैं नहीं जानता कि शिवदान सिंह पार्टी सदस्य थे या नहीं! सन् 53 में मेरे महासचिव काल का जो अंतिम अधिवेशन प्रगतिशील लेखक संघ का दिल्ली में हुआ, उसमें यह सवाल उठा था. दिल्ली पार्टी ने उन्हें अपना सदस्य स्वीकार नहीं किया था.

चंद्रबली सिंह, "अरे भाई नामवर भी तो नहीं थे. जब चुनाव लड़े तब भी नहीं. 53-54 में जब प्र.ले.सं. की बनारस शाखा के सचिव बने तब विश्वविद्यालय में किसी ने उन्हें डरा दिया कि अभी यह सब मत करो. उन्होंने कोई मीटिंग ही नहीं बुलायी लंबे अर्से तक."

रामविलासजी अपने छोटे भाई मुंशी से, "तुम्हें पसीना आ रहा है, कोट उतार दो."

"धूप के कारण नहीं, आप की बातों के कारण" (हंसी) मैं कह देता हूं. नागार्जुन इन बातों में रस नहीं ले पा रहे हैं. वे थककर लेट गये. केदारजी भी चुप ही रहे इस बीच. अब दो बज रहे थे, लोग चलने के लिए उठने लगे. इन महारथियों से भी एक चूक हो गयी. अम्मा (नागार्जुनजी की पत्नी) तैयार होकर पीछे चटाई पर दूसरी ओर मुंह किये बैठी थी. इस बातचीत में उनका हाल पूछने का किसी को अवसर नहीं मिला. सभी लोग सडक तक आकर गाड़ी में बैठ गये. सेलेब्रिटी होने के बाद अनौपचारिकता में भी वैसी एक औपचारिकता छिपकर घुसपैठ कर जाती है. गाड़ी में बैठकर केदारजी को कुछ खयाल आता है. श्रीकांत जी से कहते हैं, "नागार्जुनजी से कहो, परसों के समारोह में उन्हें आने में कष्ट होगा." नागार्जुन यह सुनते हैं, फिर कहते हैं–"नहीं भाई नहीं, कोई कष्ट नहीं होगा, मैं आऊंगा....जरूर आऊंगा...." □

**रमाकांत**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# खारिज

से. रा. यात्री

मेरे बचपन का दोस्त विक्रम सिंह अपने सगे बेटे की शादी के मौके पर कन्यापक्ष वालों से रुष्ठ होकर जिस तरह लाल-पीला होकर भाग खड़ा हुआ था उससे सारे बाराती और कन्या पक्ष के लोग बुरी तरह आहत हो गये थे. विक्रम सिंह के बड़े भाई रामपाल सिंह बहुत गंभीर प्रकृति के धैर्यवान व्यक्ति थे इसलिए बात संभल गयी थी और उपेंद्र की शादी निर्विघ्न समाप्त हो गयी थी. पहले मेरा इरादा यह था कि मैं भी बारात के साथ उन लोगों के घर जाऊंगा लेकिन विक्रम का व्यवहार देखकर मेरा मन बुझ गया और मैं बारात के विदा होते ही अपने घर चला गया.

फिर साल डेढ़ साल तक मैं अपने शहर नहीं लौट सका इसलिए मुझे विक्रम सिंह और बाकी लोगों के बारे में कुछ भी पता नहीं चल पाया.

जब मेरा आक्रोश कुछ ढीला पड़ा तो मैंने विक्रम सिंह को एक कार्ड लिखकर उसके हाल-चाल मालूम किये. मैं उम्मीद करता था कि वह भी मुझसे मिलने को उत्सुक होगा और पत्र का उत्तर देगा लेकिन जब पत्र डाले महीनों निकल गये और विक्रम की ओर से कोई जवाब नहीं आया तो मुझे थोड़ी चिंता हुई.

अंततः मैंने एक शनिवार को जाना तय किया.

जब मैं कस्बे के बस स्टैंड पर उतरा तो तीसरा पहर बीत रहा था. जाड़े का मौसम था इसलिए सूरज पेड़ों के पीछे ढलकने लगा था.

मैंने फुर्ती से पीली कोठी के लिए रिक्शा लिया और चल पड़ा. कोठी के सदर दरवाजे पर पहुंचकर मेरा माथा ठनका. लंबा-चौड़ा मेहराबदार गेट कहीं था ही नहीं—हर तरफ ईंटों के चटटे लगे हुए थे. एक ट्रक से सीमेंट के कट्टे उतारे जा रहे थे. बाहर से ही साफ नजर आता था कि अंदर जबरदस्त तोड-फोड़ चल रही है.

मैंने रिक्शेवाले को भाड़ा चुकाया और उस लोहे-लंगड़ के बीच से होते हुए धराशायी पीली कोठी के भीतर चला गया. वहां सैकड़ों मर्द-औरत मजूर काम में लगे हुए थे. मैंने एक आदमी से पूछा कि यह क्या चल रहा है?

वह बोला, "फैटरी का काम चल रयो है बाबूजी."

"फैक्टरी—कैसी फैक्टरी भई? यह तो कुंवर लोगों की कोठी है. इसमें फैक्टरी कौन डालने आ गया?"

वह सीधा-सादा मजदूर यह सब नहीं जानता था. बोला, "मोय पतो नाय के याय कौन बनवात है."

मैंने आगे बढ़कर पूरी कोठी के रकबे का चक्कर लगाया. ऊंची-ऊंची दीवारें सीढ़ायी जा चुकी थीं. सब ओर मलबही मलबा नजर आ रहा था. कहीं कोई कमरा या दीवानखाना बाकी नहीं बचा था. विक्रम का कमरा शुरू में ही पड़ता था, उसका भी पता-निशान मिट चुका था. अब यह कल्पना करना भी कठिन था कि तीस पैंतीस बरसों तक विक्रम लगातार उस जगह रहा था. विद्यार्थी जीवन समाप्त होने के बाद से वह कोठी के बाहरी हिस्से में ही रहता चला आया था.

मजदूरों से कुछ अलग तरह का दिखाई पड़नेवाला एक आदमी उधर से गुजरा तो मैंने उसे रोककर पूछा, "क्यों भाई यहां रहने वाले. कुंवर रामपाल सिंह—विक्रम सिंह वगैरह कहां चले गये?"

वह बोला, "बड़े कुंवर साब तो अपने लड़का के पास के पास नागपुर चले गये. छोटेन ने गांव की हवेली में अड्डो जमाय लियो है."

मैंने परेशानी अनुभव की, "मगर यह कैसे हुआ? यह कोठी तो उनके बाप-दादा के जमाने की थी. अभी तो यह मजबूत भी कम नहीं थी वे लोग इसे कैसे छोड़ गये?"



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

**आजादी के बाद रजवाड़े और जमींदारियों के दिन लदते चले गये. कुछ समझदार जमींदारों ने अपने आप को नयी परिस्थितियों के अनुकूल ढालना शुरू कर दिया. पर कुछ विक्रम सिंह जैसे भी थे जो अपनी पुरानी हवेली और पुराने रंग-ढंग को छोड़ नहीं पा रहे थे. प्रस्तुत है ऐसे ही एक विक्रम सिंह के समाज से खारिज होते चले ज़ाने की दास्तान....**

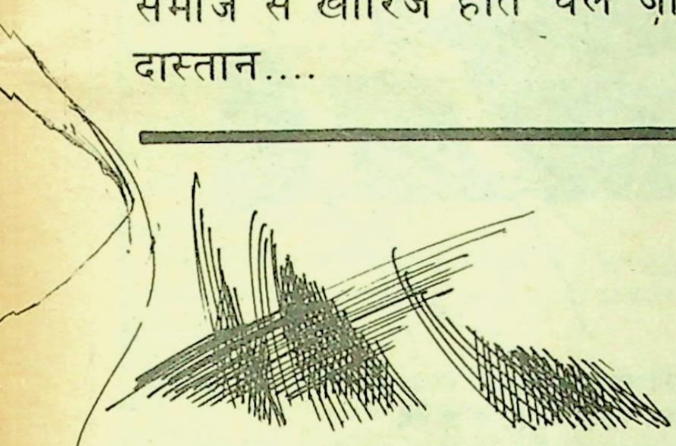

"बाप दादान की निसानी तो है साब पर जब लाखन को कर्जा ना पट पायो तो कहा करते बेचने के सिवा? डाक्टर हन्नाम सिंह के ढिग बंधक थी. मियाद बीत गयी तो कोठी हन्नाम सिंह की है गई. विन्ने जाटिया जी को बेच दई. सुनो है वे माये नालोन का कारखाना डार रये हैं. चौबीसों घंटा चलेगो—पोलटेक पोलटेक कहयो जाय रयो है याकू."

उस आदमी की बात सुनकर मैं भीतर तक सिहर उठा. लगभग एक पूरी सदी तक कुंवर साहबान की कई पीढ़ियों का पीली कोठी स्थायी निवास बनकर रही थी. उसके दर-दीवारों ने ऐश्वर्य और रंगीनी के अनगिनत रात-दिन देखे थे. और उन एहसासों को जीने वाले सभी लोगों का वहां से नाम निशान तक मिट गया था. वहां कोई जटिया सेठ एक लंबी-चौड़ी फैक्टरी की तामीर करवा रहा था.

विचित्र-सी ऊहापोह में मन में अकथ व्यथा अनुभव करते हुए मैं वहां से हट लिया. उस मलबे से बाहर आते हुए कई तरह के विचार मन में उमड़ते-घुमड़ते रहे. मैंने सोचा जब यहां फैक्टरी बनकर तैयार हो जायेगी तो लोग भूल जायेंगे कि यहां कभी कुंवर हीरा सिंह का खानदान रहा करता था. जब फैक्टरी चल निकलेगी तो शायद लोगों को कोई इस फैक्टरी की नींव में सोयी पड़ी पुरानी विरासत के बारे में कोई कुछ बतलाने नहीं आयेगा.

वक्त बदल जाने के साथ मूल्य बदल जाते हैं. पता नहीं यहां कितने परिवारों को रोजी रोटी मिल जायगी. फैक्टरी चलेगी तो हो सकता है कि उसमें काम करने वालों के लिए रिहायशी क्वार्टर भी बनवा दिये जाये. कस्बे के दिन भी बदलने लगेंगे. जटिया की देखा-देखी कुछ और भी पूंजीपति कल कारखाने स्थापित करने के बारे में सोच सकते हैं. ऐसी स्थिति में यह अनुमान सर्वथा असंभव नहीं है कि सदियों से ऊंघता हुआ यह कस्बा एक दिन जागकर खड़ा हो जाये.

यही सब सोचते-सोचते मैं चौराहे तक निकल गया. मैंने [illegible] कोई परिचित चेहरा नजर आ जाये तो विक्रम सिंह के बारे में कुछ और मालूम करूं.

मेरी समझ में यह बात किसी भी तरह बैठ नहीं पा रही थी कि कोठी हाथ से चली जाने के बाद तीस-चालीस साल से उपेक्षित पड़ी हवेली में विक्रम रहने का फैसला कर ले और फिर वहीं का होकर रह जाये. वह सन उन्नीस सौ छत्तीस का बार-एट-लॉ था. वकालत करता तो अब तक न जाने कितनी संपत्ति खरीद डालता. मगर...रामपाल सिंह ने निश्चय ही विक्रम से अपने साथ चलने का आग्रह किया है. लेकिन जो विक्रम अपनी पत्नी और बेटे तक से सीधे मुंह बात नहीं करता था वह अपने बड़े भाई के साथ कैसे जा सकता था.

यह हो सकता था कि वह कस्बे में ही कोई छोटी-मोटी रिहायश लेकर पड़ा रहता लेकिन फिर मुझे लगा यह तो एकदम असंभव बात थी. जिस परिवार के पास इतनी विशाल कोठी रही हो कभी-पचासों खवास और नौकर चाकर रहे हों, वह साधारण लोगों के बीच में एक-दो कमरों का मकान लेकर रहने के बारे में तो सोच भी नहीं सकता.

मेरे ऐन सामने एक मैडीकल स्टोर था. सड़क पार करके मैं उधर ही बढ़ गया. काऊंटर पर एक अट्ठाइस-तीस साल का मोटा-सा आदमी खड़ा था. उसने मुझे देखकर नमस्कार की तो मैं उसे पहचानते हुए बोला, "मनोहर लाल अग्रवाल के बेटे हो?"

वह बोला, "हां जी वह मेरे फादर हैं."

कस्बे का पिता अब उसी तर्ज पर फादर में बदल गया था जिस तरह पीली कोठी फैक्टरी में परिवर्तित हो रही थी.

मैंने उससे पूछा, "कुछ कुंवर विक्रम सिंह का अता-पता है तुमको—इन दिनों कहां रह रहे हैं?"

वह अपनी कस्बाई बोली-बानी में ही बतलाने लगा, "छोटे कुमर जी तो कई महीना से गाम की हवेली में चले गये हैं. बड़े वारे तो अपने बेटा सत्तो जी के पास नागपुर पैले ही चले गये थे. उनकी महतारी ठकरानी दादी भी विनके संगई चली गयी हैं."

दो जगह से पक्की तसदी हो गयी कि विक्रम सिंह गांव की हवेली में ही चला गया है तो मैंने सोचा जैसे भी हो मैं आज की रात उससे मिलने वहीं चला जाऊं. लौटना तो रात को हो ही नहीं सकता था लेकिन विक्रम से बिना मिले लौट जाना भी मुझे क्रूरता लगी.

कैमिस्ट को धन्यवाद देकर मैंने एक रिक्शे वाले से सीकरी चलने की बात की.

जब रिक्शा चालक मुझे लेकर सीकरी की ओर चला तो सूरज का गोला पेड़ों के पीछे कहीं दूर क्षितिज में जा छिपा था. कस्बे के बाहर निकलने के बाद सड़क भी नचाट सुनसान पड़ी थी. सड़क के दोनों ओर गेहूं और मटर के खेत फैले हुए थे. बीच-बीच में सरसों के पीले फूल भी नजर आ जाते थे. कहीं-कहीं ईख की ऊंची-ऊंची फसल भी दीख जाती थी.

रास्ते में एक झील मिली जिसमें असंख्य पत्ते तैरते दिखाई पड़े. एक विचित्र-सा सन्नाटा और अभंग शांति का विस्तार फैला नजर आया.

टैना गांव के नजदीक पहुंचकर मैंने रिक्शेवाले से पूछा, "सीकरी तक रिक्शा चला जाता है क्या?"

"रिक्सा तो चलौ जात है पर सगरो रस्ता कच्चौ है."

मैंने उससे कहा, "तो फिर जहां तक रिक्शा आसानी से जा सकता है वहीं तक चलो—बाद का रास्ता मैं पैदल तय कर लूंगा."

चलते-चलते रिक्शेवाला एक मोड़ पर जाकर रिक्शे से उतर गया. वहां कच्ची पगडंडी के समानांतर एक दुद्धी की सड़क भी थी लेकिन उसमें जगह-जगह इतने गहरे गड्ढे थे कि उसके मुकाबिले कच्ची पगडंडी कहीं बेहतर थी. इस कच्चे कंकड़ों की सड़क का निर्माण उस युग में हुआ जब डामर की सड़कें बनाने का प्रचलन ही नहीं था.

सड़क के शुरू में एक टूटा-फूटा स्तंभ था जिसकी लखौरी ईंटें धसक गयी थीं और चूने का पलस्तर न जाने कितने सालों पहले धूल मिट्टी बनकर उड़ चुका था. स्तंभ के बीच में एक लाल पत्थर में अंग्रेजी की



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इबारत खुदी थी-बहुत सिर मारने पर पता चला कि बीसवीं सदी के आरंभ में संयुक्त प्रांत के लेफ्टिनेंट गवर्नर ने उस राजसी सड़क का उद्घाटन किया था. पत्थर पर तारीख महीना और साल के साथ-साथ हिज मैजेस्टी वगैरह का ब्यौरा भी अंकित था.

मैंने रिक्शेवाले को वहीं रोक किया. उसके यह कहने के बावजूद कि वह मुझे सीकरी तक पहुंचा देगा. मैंने उसका भाड़ा चुका दिया और पैदल चलने का फैसला कर लिया.

इधर-उधर के गांवों में चूल्हे जलने की वजह से धुआं मोटी परतों में आकाश पर जमने लगा था. खेतों में काम करने वाले किसान मर्द, औरतें गांवों की तरफ लौटने लगे थे.

सीकरी का रास्ता पूछने की मुझे जरूरत ही नहीं पड़ी. दूर से ऊंची हवेली नजर आ रही थी. मैं टेढ़ी-मेढ़ी पगडंडियों पर निर्विघ्न आगे बढ़ता चला गया.

लगभग चालीस मिनट में मैं गांव के सीवान पर पहुंच गया. गांव के शुरू होने से पहले ही एक बहुत पुराना पीपल का पेड़ था जिसके चारों ओर पक्के चबूतरे का घेराव था और दसियों पीपल एक-दूसरे से जुड़े

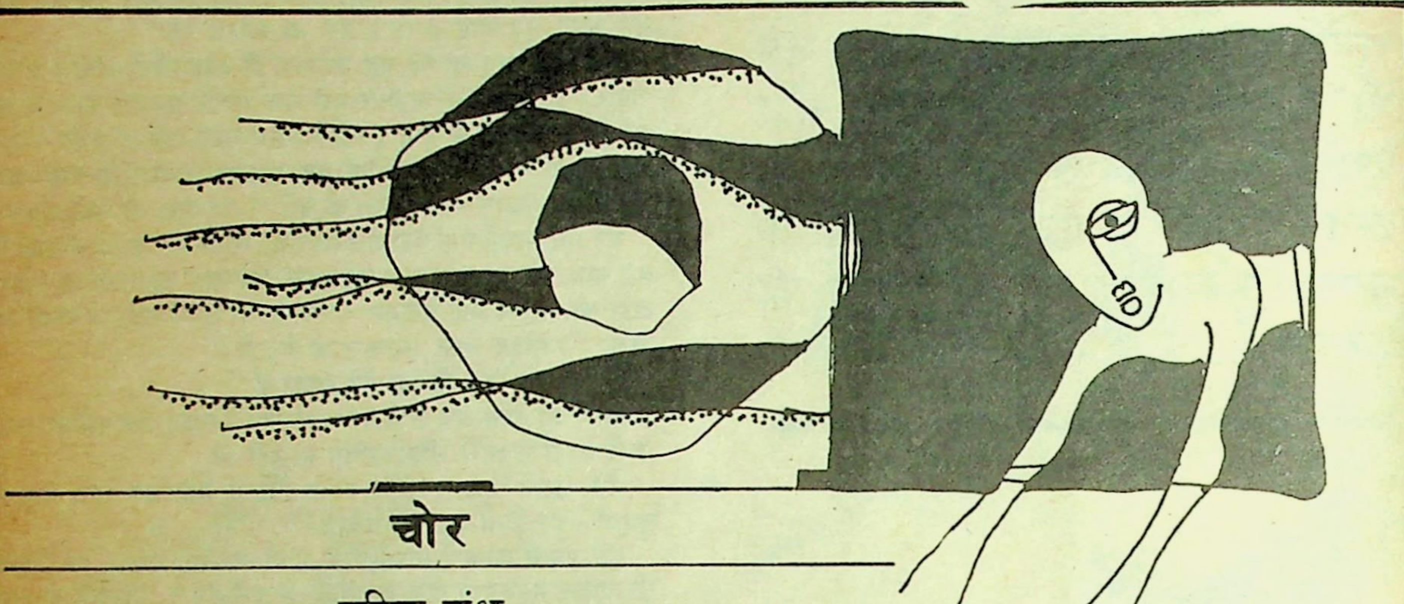

# चोर

## हरित बंधु

बारात द्वार पर आ चुकी थी. घोड़े से उतर कर दूल्हा साथी युवकों के साथ दरवाजे पर खड़ा हुआ. दुलहिन बनी लड़की सहेलियां 'वरमाला' रस्म को लायीं. दुलहिन के पीछे उसकी भाभी थी. दूल्हे के गले में वरमाला डालकर दुलहिन वापस चली. दूल्हे के साथी युवकों में दुलहिन को देखने का उतावला-पन था. वह उचक-उचक कर दुलहिन को देखने का प्रयास कर रहे थे इस वजह से थोड़ी धक्कम-धक्का थी.

दुलहिन की भाभी दूल्हे की बलइयां लेकर ज्यों ही पीछे मुड़ी, कि अगले ही पल वह चिल्लायी, "मेरा हार...मेरा हार गया." और कहते-कहते हक्की-बक्की हो गयी.

हार गले से गायब तो सब लोगों में सन्नाटा छा गया, आश्चर्य-युक्त निगाहों से सब दुलहिन की भाभी की ओर देखने लगे यह क्या हो गया. हंसी खुशी के माहौल में रंज-दुख...पूरी बारात में बिजली के करंट के समान हार गले से चोरी होने की खबर फैली. एक सज्जन तेज स्वर में बोले, "सब लोग अपनी-अपनी जगह खड़े रहें अभी पता चल जायेगा हार का कि किसने तोड़ा है."

सब जहां के तहां खड़े रहे गये और सबने अपने आसपास देखा कि शायद कोई संदिग्ध व्यक्ति हो. एक व्यक्ति थोड़ा पीछे खिसका. "आप कहां चले सोब!" पहले वाले व्यक्ति ने कहा, "आप तो घराती हैं." सबकी निगाहें उस व्यक्ति की ओर उठ गयीं. वह सटपटा कर रह गया. तब ही कोई घराती बोला, "नहीं ये घराती नहीं है आपके ही आदमी होंगे?" इस कथन पर सब बारातियों ने गौर से उस व्यक्ति को देखा, "हमारा आदमी नहीं आपका ही कोई आदमी होगा."

"नहीं! हमारा नहीं!"

"तो...कौन? जेब कट...अरे पकड़ो! पकड़ो! यही है."

बस थोड़ी-सी सावधानी से चोर पकड़ा गया. तीन-चार आदमी उसे मारते पीटते किसी कमरे में ले गये.

"चलो काम शुरू करो देर हो रही उससे तो वह लड़के निबट लेंगे." किसी ने कहा. और फिर दरवाजों की रस्म अदायगी शुरू हो गयी. चर्चा भी चल पड़ी इसी तरह बारात में शामिल होकर लुटेरे आ जाते हैं और जेब काट लेते हैं. देखो अगर जरा सावधानी नहीं बरती जाती तो बाराती-घराती दोनों ओर के लोग मन में एक दूसरे को चोर कहते अच्छा हुआ. पकड़ा गया....

और अभी दरवाजे की रस्म-अदाई पूरी भी नहीं हुई थी कि एक लड़की ने आकर कहा, "मिल गया हार चाची! मिल गया हार."

"उसी पर?"

"किस पर?" लड़की ने चौंककर कहा, "भाभी तो खाट पर ही पड़ा छोड़ आयी थी. जल्दी में वह उसे पहिनना भूल गयी. वहीं खाट पर पड़ा हुआ था, मिल गया.

तो वह कौन है? सब चौंक गये चोर ही होगा. अंदाजा लगा लिया लेकिन खबर उन लड़कों को भी मिल गयी जो पकड़े हुए चोर से मार-पीट करते हुए जानकारी करने को तैयार थे. फिर भी उन्होंने उससे पूछा, "सच-सच बता दे स्साले हम तुझे छोड़ देंगे कौन है तू...कहां रहता है?"

बेतहाशा मार खाया हुआ वह कांपता हुआ बोला, "मैं मैं चोर नहीं हूं...मैं एक स्कूल में अध्यापक हूं. पिछले चार महीने से वेतन नहीं मिला है. उधार वगैरह लेकर घर का खर्चा चला रहा हूं. बचत के लिऐ, मैं सड़क से गुजरती बारात में शामिल होकर शाम का खाना खा आता हूं...बारात के आदमी समझते हैं घराती होगा. घराती समझते है कि बाराती होगा.

उस व्यक्ति का बयान सुनकर कोई कुछ नहीं बोल सका. कमरे में सन्नाटा छा गया था... □


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए थे. इस पीपल से मेल खाता एक मंदिर [illegible] आधी इमारत तो धराशायी हो चुकी थी मगर मंदिर का द्वार और शिखर अभी तक स्थिर खड़े थे.

मंदिर को पार करते ही ठाकुर हीरासिंह की विशालकाय हवेली थी. हवेली के नजदीक पहुंचकर घिरतें अंधकार के बावजूद उनकी दयनीय स्थिति एक ही नजर में उजागर हो उठती थी. दीवारों में दरारें ही दरारें थीं. पलस्तर का तो कहीं निशान भी दिखलाई नहीं पड़ता था. चालीस पचास सालों से तो हवेली लावारिस ही पड़ी थी.

मैं किसी भी तर्क से यह समझ पाने में समर्थ नहीं हो पा रहा था कि कस्बे से कई मील दूर इस खंडहर और वीरान हवेली में विक्रम क्यों चला आया था? यहीं उसे कौन-सी राहत मिलने वाली थी? उसकी लंबे समय से जो रईसाना आदतें चली आ रही थीं,उनकी पूर्ति की यहां क्या गुंजाइश थी? वह यहां भुतही हवेली में अकेला कैसे रहता होगा और उसका खाना-पीना किस तरह चलता होगा? समय काटने का भी यहां क्या साधन हो सकता है—यहां विक्रम बातचीत भी किसके साथ कर पाता होगा? इसी तरह के पचासों सवाल मेरे जेहन में मक्खियों की तरह भिनभिना रहे थे.

खैर, मैं किसी तरह हवेली की ड्योढ़ी पर पहुंच ही गया. खड़खड़िया साईकिल लिये कुंवरों का बहुत पुराना चाकर मंगल मुझे भीतर से आता दिखाई पड़ा. मुझे देखकर मंगल का सिकुड़ा-सिमटा चेहरा अपूर्व प्रसन्नता से खिल उठा. मुझे यह देखकर संतोष हुआ कि चलो विक्रम के साथ अभी तक मंगल तो है.

मैंने उसकी दुआ-सलाम का जवाब देने के बाद पूछा, "भई कहां हैं तुम्हारे कुंवर बहादुर साहब?"

"कुंमर जी हौल के सामने कुई बैठै हतै. आप उनके ढिग चलौ—मैं अबई बीस मिनट में आवत हूं." उसने चुटकी बजाकर कहा, "न्यौं जावत-आवत हूं तुरत-फुरत."

मैं समझ गया कि वह वाकई उतावली में है. मैंने उसे नहीं रोका और ड्योढ़ी पार करके लंबे-चौड़े सहन को नापते हुए दीवानखाने में पहुंच गया. दीवान खाने में काफी आगे जाकर महोगनी की एक विशालकाय मेज पड़ी हुई थी जिस पर एक जलती हुई लालटेन स्थापित थी. मेज का खंभे से लगा हिस्सा मोटी-मोटी किताबों से भरा हुआ था.मैं बिना देखे भी बता सकता था कि मोरक्को लेदर की जिल्दों की पुश्तों पर सुनहरे अक्षरों में पुस्तकों और लेखकों के नाम खुदे हुए थे. गत पैंतीस-चालीस सालों से विक्रम के पास यही कुछ मूल्यवान धरोहर थी. वह जहां भी होता,यह उसके पास ही रहने वाली थीं.

एक कोने में लगभग जमीन को छूता हुआ एक सोफा पड़ा था. यह भी कुंवरों का एक मूल्यवान प्राचीन अवशेष था. सोफे के पाये मुश्किल से नौ-दस इंच लंबे होंगे मगर उन पर बढ़िया नक्काशी थी. सोफे की पुश्त मेहराबदार थी. वह किसी बादशाह के ताज की शक्ल में कटावदार थी.

दीवानखाने के अलावा बाकी सारे कमरे और कोठरियां बंद पड़ी थीं. ऊपर की मंजिल की भी यही कुछ स्थिति होगी. सहन से पहले जो लंबी-चौडी बारादरी थी उसमें एक चारपाई, हुक्का और थोड़े बहुत बर्तन-भांडे बेतरतीब पड़े थे. जाहिर है वहां विक्रम का सेवक मंगल रहता होगा.

मैंने दीवानखाने की दहलीज पर ठहरकर सहन का दृश्य देखा. सहन में फोर्ड गाड़ी का एक ढांचा पड़ा था जो निश्चय ही विक्रम सिंह के पूर्व पुरुष हीरासिंह की उस जगत प्रसिद्ध कार का था जिसकी हिलती गड़-गड़ाती आत्मा अपने मालिक के साथ ही किसी ऊर्ध्व लोक में विचरण करती घूम रही होगी.

मैं एक पेड़ के भारी-भरकम तने जैसे पत्थर के खंभे के पीछे खड़ा होकर दीवानखाने की सुन-गुन लेने लगा. विक्रम दोनों हाथ पीठ के पीछे बांधे चलहकदमी कर रहा था. उसने अंग्रेजी जमने की कोई सनातन पतलून और फौजी काट के जूते चढ़ा रखे थे. जो बरानकोट उसके घुटनों के नीचे तक फैला हुआ था,वह भी किसी जमने में उसके [illegible] की भेंट थी. विक्रम गंवई देहात में भी रिटायर्ड साहब बहादुर की तर्ज पर रह रहा था.

विक्रम कभी टहलते लगता था कभी कमर झुकाकर एक दो क्षण के लिये ठहर जाता था. मेरी कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि वह इस तरह कमर न्यौड़ा कर क्यों खड़ा हो जाता था. सहसा हल्की-सी गुड़गुड़ाने के लिए टहलते टहलते बीच में थम जाता था. मेरे लिये यह परम आश्चर्य था. मैंने गत चालीस बरसों में विक्रम को कभी हुक्का पीते नहीं देखा था. वह सिग्रेट और बाज मौके पर सिगार को छोड़कर और कुछ नहीं पीता था. मुझे लगा आर्थिक मजबूरियों की वजह से वह हुक्के पर उतर आया था.

बिजली के तेज प्रकाश की अभ्यस्त उसकी आंखों ने मुझे बिल्कुल नहीं चीन्हा. उस वक्त भी वह मेरी ओर से पूरी तरह बेखबर रहा जब मैं उसके ऐन सामने जाकर खड़ा हो गया.

लालटेन की लौ ही धीमी नहीं थी बल्कि चिमनी भी काफी धूम मंडित थी. और उसकी मटमैली-सी रोशनी में चारों तरफ एक रहस्यात्मक वातावरण घनीभूत होता लग रहा था. दीवारों की खूंटियों पर टंगे बेतरतीब कपड़ों की परछाइयां और दीगर सामान उस नीम उजाले में कुछ का कुछ नजर आ रहा था. एक कोने में एक महाकाय पलंग पड़ा था जिस पर एक रेशमी रजाई चार तह की हुई करीने से रखी हुई थी.

मैं चोर कदमों से चलकर उसके पीछे पहुंच गया. उसने हुक्का गुड़गुड़ाकर पीठ ऊपर उठाई तो उसका कंधा मुझसे टकरा गया.

शायद वह इस औचक टकराहट से सनाका खा गया. उसके मुंह से गोली की धांय जैसी विस्फोटक आवाज निकली, "कौन?"

कई क्षणों तक पूरे दीवानखाने में वह खौफनाक ध्वनि चकफेरी-सी देती रही.

मैंने आगे बढ़कर कहा, "डरो मत—यहां मैं हूं."

वह मेरी आवाज पहचान गया और गुर्राकर बोला, "तुम! तुम कैसे आये?"

"अभी आया हूं और कुछ रिक्शे से,कुछ पैदल पहुंचा हूं."

"चलो, कभी तो तुम्हें मेरी याद आयी. यहां काले पानी में आने की किसकी हिम्मत है?"

"क्यों क्या तुम्हारी सीकरी देश से बाहर है?"

वह भयानक विद्रूपभरी हंसी के बीच बोला, "देश के बाहर जाना अब क्या मुश्किल रह गया है. देश में आना भी टेढ़ा काम हो गया है, सुरजीत."

मैंने उसके शब्दों के पीछे गहराती व्यथा को महसूस किया पर मैंने उसे नजरंदाज करके लापरवाही से कहा, "टेढ़ा काम. मैं तो मजे में आ ही गया."

मैं उसकी आदत से परिचित था. वह मझसे बैठने के लिए भी कहने वाला नहीं था. मैं चमड़े से मढ़ी पीठवाले एक मोढ़े पर बैठ गया और हल्के-पन से पूछ बैठा, "और कहो कैसी कट रही है?"

उसने मेरी बात का जवाब न देकर पूछा, "तुम्हें भूख लगी होगी. मैं अभी चाय बनाता हूं."

मुझे वहीं छोड़कर वह मेज के पास पहुंच गया और एक छोटे से लैंपनुमा स्टोव को जलाने लगा. कालिजों की साइंस लैब में टैस्ट ट्यूब के द्रव परीक्षण के लिये जो स्प्रिट लैंप रखे रहते हैं यह लैंप अथवा स्टोव उसी तरह का लग रहा था.

उसने स्टोव जलाकर एक भगौने में आधा प्याला पानी चढ़ा दिया और मेरी ओर देखकर उंगली से अपना माथा घिसते हुए बोला, "एक मिनट में चाय बनती है."

मैंने व्यंग्य किया, "चाय ही क्यों मैं तो समझता हूं इस आलादीन के चिराग पर चुटकी बजाते खाना भी तैयार हो जाता होगा.

उसने मेरे व्यंग्य का कोई उत्तर नहीं दिया. लेकिन मैंने देखा पानी वाकई उबलने लगा था. उसने भगोने में चीनी, चाय की पत्ती और दूध छोड़ा. जरा देर में चाय तैयार हो गयी हो कांच के गिलास में उसे बगैर छाने ही उंडेल दिया. वह हमेशा चाय इसी तरह बनाता था.

चाय की पत्तियां गिलास की तली में बैठ गयीं तो गिलास उठाकर मुझे देते हुए बोला, "जब तक कुछ औ हो इसी को पीओ."



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैंने कहा, "पर तुमने इतनी ठंड में थोड़ी-सी चाय अपने लिए भी क्यों नहीं बना ली?"

उसने आंखें टेढ़ी करके पूछा, "मैं शाम के बाद कभी चाय पीता हूं?"

"लेकिन यहां तुम्हें और मिल भी क्या सकता हैं?"

"सब कुछ मिल जाता है. बस थोड़ा धीरज रखना पड़ता है."

मैं समझ गया कि वह यहां भी कोई न कोई व्यवस्था जरूर कर लेता होगा. तभी मुझे लबड़घोंघों में साईकिल लेकर दौड़ते मंगल का ध्यान आ गया.

मैं अभी चाय पीने ही लगा था कि मुझे बाहर सहन में साइकिल की खड़खड़ाहट सुनाई पड़ी.

साईकिल कहीं खड़ी करके मंगल सहन में आता दिखाई पड़ा. वह हाथ में एक लंबा-सा झोला लटकाये हुए था. उसे दीवानखाने में घुसते देख कर पूछा, "कहां चले गये थे मंगल?"

"अजी जाता कहां सिरकार. नैक सैर (शहर) लौं नायो हतौ..कुछ सौदा सुलफ लानो हो." और यह कहने के साथ ही मंगल ने झोले से हरे रंग की एक बोतल निकालकर मेज पर रख दी. मैं तत्काल समझ गया यह देसी शराब की बोतल थी. इसके बाद उसने और भी दो-चार पुड़ियां निकालकर मेज पर ही डाल दीं.

झोला लेकर जाते-जाते मंगल ने पूछा, "का खाओगे कुंमर जी. कओ तो आलू-गोबी बनाय लऊं. बस तन्नक सो टेम लगेगो."

विक्रम ने लापरवाही से कहा, "जो मन हो बनाओ पर यह खयाल रखना मेहमान की खातिर में कमी न आने पाये."

उसकी ठसक देखकर मैं हंस पड़ा और बोला, "मंगल से यह सब कहने की जरूरत तुम्हें क्यों महसूस होने लगी?"

इस पर विक्रम ने कुछ नहीं कहा, मंगल ही बोल पड़ा, "अजी कुंमर जी जे तो हमारे खास सिरकार हैं, मैं का जानत नाऊं के जे कौन हैं?" अपनी बात कहकर मंगल के सिकुड़े चेहरे पर हार्दिक उल्लास दीख पड़ा.

बीसियों बरस से मैं देखता चला आ रहा था, मंगल हर अच्छे-बुरे क्षण में विक्रम के साथ इतनी ही सघनता से जुड़ा हुआ था.

शायद विक्रम चक्कर काटते और देर तक खड़ा रहने की वजह से थक गया था. मेरे पास एक खाली मोढ़ा खींचकर बैठते हुए बोला, "और सुनाओ जिंदगी के क्या दौर दौरे हैं?"

"कुछ-नयापन नहीं है. नौकरी का आखिरी बरस चल रहा है."

विक्रम ने आश्चर्य व्यक्त किया, "ऊंय? आखिरी? पर तुम तो दो साल हुए साठ पार कर चुके होंगे."

मैंने हंसकर कहा, "दो-ढाई साल का घपला है दसवीं के सार्टीफिकेट में."

"चलो मुफ्त में फसल काटो और कुछ महीने."

मैंने उस बात को वहीं छोड़कर विक्रम से पूछा, "यह तुमको यहां आ पड़ने की क्या सूझी?"

विक्रम कड़वी हंसी हंसकर बोला, "क्या करता, पंछी चहचहा कर उड़ गये. सब को अपनी अपनी सुख चैन की जिंदगी मिल गयी तो कोई यहां वीरानें में आकर क्यों रहता? बस एक मां थी जो मेरे साथ ही बने रहना चाहती थीं हर हाल में—मगर हमारे रेवरैंड बड़े कुंवर रामपाल सिंह उन्हें भी आखिर में अपने साथ घसीट ले गये."

मैं बोला, "कुछ बुरा तो नहीं किया उन्होंने."

"अच्छा भी क्या खाक किया? इस आखिरी दौर में वह बेचारी न जाने किस किस घाट का पानी पीयेंगी."

फिर विक्रम ने एक लंबी सांस खींचकर कहा, "चलो, जो हो रहा है, ठीक ही हो रहा है, हो."

इसके बाद उसने हुक्के की नगाली अपनी ओर करके गुड़गुड़ की. अब तक चिलम शायद एकदम ठंडी पड़ चुकी थी.

लालटेन की उस धुंधली और वीरान रोशनी में मैंने विक्रम का संजीदा चेहरा देखा. सारे चेहरे और मस्तक पर उलझे हुए धागों जैसी झुर्रियां फैली थीं. मैंने सोचा, कभी यह चेहरा कितना हसीन और दिलकश था.

चुपचाप बैठा देर तक मैं सोचता रहा विक्रम से क्या बातें करूं? वह ठप्प पड़ गयी चिलम के हुक्के को भी बेखयाली में गुड़गुड़ाये जा रहा था. दरअसल वह पिछली ओर घूमनेवाले पहिये जैसा हो गया था. मैंने कुछ भी बोलने की कोशिश में कहा, "तुम्हें अम्मा के चले जाने का अफसोस है लेकिन क्यों यह नहीं सोचते कि वह इस उम्र में गंवई देहात और वीरान हवेली में अपना समय किस तरह काटती?"

मेरी बात का विक्रम के पास कोई जवाब नहीं था. कंधे झटककर उसने मेरी ओर देखा और बेसूद बोल पड़ा, "मैं कब कहता हूं कि यहां मेरे पास आकर रहे? जिसे जहां आराम मिले रहे. मैं अपने हाल में खुश हूं."

बातें एक अंधेरी गुफा की दिशा में जाने लगी थीं इसलिए मैंने चुप रहना ही बेहतर समझा. मैं वैसे भी दिन भर का थका-हारा था. सोचने लगा कि मंगल खाना लाये और मैं खा पीकर सोऊं.

लेकिन मंगल खाने की बजाय कांच के दो गिलास और पानी भरा जग लेकर आया. जग और गिलास मेज पर रखकर वह लौट गया और एक प्लेट में प्याज, अदरक वगैरह लेकर फिर आ गया.

"और कुछ लाऊं कुंमर जी?" कहकर मंगल हाथ बांधकर खड़ा हो गया.

विक्रम बोला, "ठीक है, तुम खाना-वाना बनाओ. किसी चीज की दरकार होगी तो बुला लेंगे."

विक्रम मोढ़ा छोड़कर उठा. उसने देसी शराब की बोतल उठायी और उसे हिला डुलाकर देखने के बाद बोला, "शैंपेन और व्हिस्की तो नहीं पिला सकता दोस्त. आज की रात तो इसी को आबेहयात समझो. पता नहीं इसे पी भी पाओगे या नहीं. इट इज नाटर लिकरआ रोटेम स्टफ."

मैंने कहा, "मेरे लिए व्हिस्की, ब्रांडी, सभी एक जैसी ही है. इसमें वह क्या नहीं है जो बाकी नायाब शराबों में होता होगा. यह मैंने जानने की कभी जरूरत ही नहीं समझी. जाड़े की इस कटरबनी रात में एक दो घूंट जैसी भी मिले. नियामत समझना चाहिये."

वह चहककर बोला, "अरे वाह." विक्रम के चेहरे पर अनायास उल्लास उभर आया और उसने परम उत्साह से बोतल का कार्क उमेंठकर तड़का दिया.

बस फिर क्या था? उसने दबादब गिलास भरने शुरू कर दिये. मैंने अपने मुंह की कड़वाहट पर कोई अभिव्यक्ति नहीं दी और एक लंबी घूंट लेकर प्याज चबाने लगा. पर उसने दो तीन घूंट लेकर गिलास खाली कर दिया. गिलास खाली होते ही उसने फिर से गिलास भर लिया.

एक घंटे से भी कम समय में विक्रम ने पूरी बोतल खाली कर दी और हस्बे मामूल उसे पलंग के नीचे लुढ़का दिया.

पता नहीं कितनी देर बाद खाना खाया गया और खाने के दौरान क्या बातें हुई. मैंने कच्ची शराब बरसों बाद कभी पी थी. दो तीन पैग ही मुझ पर काफी भारी हो उठे थे. मुझे न खाने का पता चला न उसके स्वाद का.

विक्रम के पास किसी मेहमान के लिए अलग से बिस्तर की व्यवस्था नहीं थी इसलिए जाड़े की वह रात उसी के बिस्तर में काटने के अलावा अन्य कोई विकल्प मेरे सामने नहीं था.

जब मैं और विक्रम बिस्तर पर अगल-बगल होकर लेट गये तो वह शिकायती लहजे में देर तक न जाने क्या बड़बड़ाता रहा. बात आरंभ करते हुए विक्रम के स्वर में गुर्राहट होती थी पर आगे जाकर वह एक दयनीय-सी रिरियाहट में बदल जाती थी.

मंगल चिलम भरकर लाया और उसे नेहचे पर रखकर बोला, "कुंमर जी, चिलम भदई है, पी लेओ."

मंगल से "जा तू अब सो"-कहकर विक्रम बातें करते-करते हुक्का गुड़गुड़ाने लगा.

पता नहीं विक्रम की हुक्का पीते-पीते झपकी लग गयी या हुक्के का संतुलन गड़बड़ा गया पर हुआ यह कि चिलम रजाई के ऊपर आकर उलट गयी. वह फुर्ती से उठा और उसने रजाई उठाकर फर्श पर झाड़



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

दी चिलम फर्श पर गिरकर फूट गयी और Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri टुकड़े और अंगारे बिखर गये.

इस पर विक्रम एकदम झल्लाकर गालियां बकने लगा और फिर रजाई में घुस गया. मुझे जोर की नींद आ रही थी इसलिए मैंने मुंह से एक भी शब्द नहीं निकाला और बेहोशी की नींद में गर्क हो गया.

यकायक कमरे में भयानक उजाला फैल गया और औतंग सुरती की हालत में लगने लगा कि मैं भट्टी के मुहाने पर बैठा हूं.

मैं चौंककर उठ बैठा. मैंने देखा कि रेशमी रजाई से लपटें उठ रही थीं और रजाई के साथ पायताने पड़ा कंबल भी जल रहा था. मैंने उसे झिझोड़कर जगाया. "विक्रम उठो, बिस्तर में आग लग गयी है."

बिस्तर जलने की बात सुनते ही वह कूदकर उठ बैठा और पलंग से छलांग लगाकर फर्श पर खड़े-खड़े मूक दर्शक की तरह जलती रजाई और दहकते बिस्तर को देखने लगा.

मैं कुछ सोचूं या कहूं इससे पहले ही विक्रम अत्यंत उत्तेजित होकर बमक उठा. "जलो जलो, तुम भी जलो. भैन के...सब जलो-मरो."

पता नहीं उसे क्या झक सवार हुई कि वह बिस्तर को फुंकते देखकर पैशाचिक हंसी हंसने लगा. इतना ही नहीं बीच-बीच में एक से एक फोहड़ा गाली भी बकता चला गया. इतने बरसों में पहली बार मैं उसे अभद्र और अश्लील गालियां बकते सुन रहा था.

विक्रम ने श्मशान में रुद्र भाव से नाचते कापालिक का स्वरूप धारण कर लिया और बकते-झकते हुए पलंग के नीचे झुक गया. मैं विमूढ़ भाव से उसे देखता रहा.

सहसा उसने पलंग के नीचे से पानी का घड़ा उठाया और उसे जलते बिस्तर पर उंडेल दिया.

खैर आग तो किसी तरह शांत हो गयी लेकिन हड्डियों तक घुसी ठंड को भगाने का अब कोई जरिया हमारे पास नहीं रहा.

विक्रम का नशा पूरी तरह टूट चुका था. शराब की बोतल खाली करके वह पहले ही लुढ़का चुका था.

मैंने लालटेन की लौ बढ़ाकर घड़ी देखी. अभी कुल जमा सवा तीन बजे थे. इतनी बीहड़, लंबी रात को काटने का कोई मौजू साधन हमारे पास नहीं था. अगर कंबल बिस्तर से अलग कहीं इधर-उधर रखा होता तो जलने से बच जाता और हम उसे ओढ़कर बैठ जाते पर अब तो वह आखिरी सहारा भी जलकर भस्मीभूत हो चुका था.

विक्रम ने अपना बरान-कोट मेरे ऊपर फेंकते हुए कहा, "इसी को लपेट लो अब. यह मनहूस मादर...रात तो काटनी ही पड़ेगी किसी तरह."

विक्रम ने गिरते पड़ते हुए स्प्रिट लैंप जलाया और बिना दूध की चाय तैयार की. हम दोनों ने मन ही मन एक दूसरे को शत्रु मानकर कुछ समय चाय पीते हुए और बाकी समय सिसियाते हुए वह यमरात्रि काटी.

सुबह मंगल ने दीवानखाने में वह विचित्र लंकाकांड देखा तो वह भौंचक्का होकर हम दोनों की शक्लें और हुलिया देखता रह गया. उस गरीब की हिम्मत कुछ भी पूछने की नहीं हुई.

थोड़ी देर बाद मैं सहन में निकला मंगल दबले स्वर में अपने मन की व्यथा प्रकट करने लगा, "पतो नाय के कुंमर जी पै सनीचर को पैरायो कित्ते बरसन को है. तो कबऊं भले-चंगे ना रै सकत. मोय तो गीई गनीमत लगें के जरे-जराये तो नाय हैं." फिर उसने स्वयं और भी धीमा करके अपनी जिज्ञासा प्रकट की, "पर सिरकार, लकटी आखर लगी तो कैसे?"

मैंने उसे आग लगने का कारण बतलाया तो वह अपने सिर पर हाथ मारकर बोला, "सत्यानास है गयो. जे रजाई उपंदर भैया (विक्रम का बेटा) की सादी में मिली हती. देख लेआ पैले जाड़े में ही फुंक गयी. पतो नाय के पूरो जाड़ो अब कैसे कटेगो?"

मंगल की बात से मुझे इस बात का पूरी तरह एहसास हो गया कि विक्रम की स्थिति अच्छी नहीं है. जाड़ा अभी बीच में ही था—कम से

से.रा. यात्री

लंबे समय से रचनारत से.रा. यात्री अपनी सहज किंतु प्रभावपूर्ण कथायात्रा के कारण उन कथाकारों में गिने जाते हैं जो कहानी और उपन्यासों पर समान रूप से काम कर रहे हैं.

संप्रति : अध्यापन

कम दो महीने तो रजाई के बिना काटे जा सकने की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी.

मैंने बाहर से लौटकर विक्रम को देखा तो वह मुझे बहुत चिड़चिड़ा और चीमड़ दिखलाई पड़ा. उसके चेहरे की झुर्रियां और भी सघन हो उठी थीं. एक रात की त्रासदी ने उसे कम से कम चार-छह साल अधिक बूढ़ा बना दिया था.

दीवानखाने का दृश्य तो और भी ज्यादा दुखदायी नजर आता था. सारे फर्श पर चिलम के टूटे हुए ठीकरे और पानी में डूबे कोयले और राख बिखरी पड़ी थी. पूरा दिन निकल आने के बाद भी लालटेन जल रही थी. जैसे पुराने वक्तों में लोग अपना दिवालियापन घोषित करने के उद्देश्य से दिन में ही दिया जला देते थे उसी तर्ज पर यह धुआंती लालटेन विक्रम के हर तरह से दिवालिया हो जाने का उममान बनी हुई थी.

दीवानखाने की उखड़ी-पुखड़ी दीवारों पर मेरी दृष्टि गयी तो उस पृष्ठभूमि में विसंगतियों ने और भी बड़ा विद्रूप उपस्थित कर दिया. सुनहरे बेलबूटेवाले मोटे-मोटे फ्रेमों में कैद लंबे-चौड़े आदमकद तैल चित्र विशालकाय दीवानखाने की सभी दीवारों पर टंगे नजर आ रहे थे. ये सब कुंवर खानदान के पूर्वजों की अनुकृतियां थीं. एक तरफ गलमुच्छों, दाढ़ियों और राजसी वेषभूषा से आवृत रौबीली आकृतियां थीं और दूसरी ओर पलस्तर उखड़ी फटी-नुची दीवारें थीं. नीचे मरघट का दृश्य उपस्थित करता फर्श था जिस पर हर तरफ राख और कोयले फैले पड़े थे.

मंगल चाय बनाकर लाया तो थोड़ी राहत मिली. चाय पीने के बाद मैं सुबह के छोटे-छोटे कामों से फारिग होने के लिए सहन में निकल गया. थोड़ी देर बाद मैं लौटा तो मैंने विक्रम को वहीं चक्कर काटते देखा. वह दोनों हाथ पीठ पर बांधे था और उसकी मुद्रा गंभीर थी.

करीब दस बजे मंगल ने नाश्ता तैयार किया तो मैंने सहन में बिछी चारपाई पर बैठकर चुपचाप उसे अकेले ही निपटाया क्योंकि अभी तक विक्रम अपने भीतरी उद्वेगों से मुक्त नहीं हो पाया था.

पूरे सहन में धूप फैल गयी तो मंगल ने मोढ़े वहीं जाकर डाल दिये. जला हुआ बिस्तर उसने फोर्ड गाड़ी के ढांचे पर लाकर डाल दिया. जला-फुंका बिस्तर और फोर्ड का पिंजर अजीब समानधर्मी लग रहे थे.

मंगल ने हुक्का ताजा करके नयी चिलम भरी और हुक्का विक्रम के सामने लाकर रख दिया.

हर तरफ से थके हुए विक्रम ने गंभीर सोच में डूबे डूबे ही हुक्का गुड़गुड़ाना शुरू कर दिया. मैं चुपचाप उसका चेहरा देखता रहा. उसी



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय एक मरियल-सा खजैला कुत्ता न जाने किधर से आया और वहीं हम लोगों मे मोढ़ों के पास आकर पसर गया.

मेरा खयाल था कि विक्रम कुत्ते को देखकर बिगड़ उठेगा और उसमें दो-एक लात जमा देगा पर मैं यह देखकर चकित रह गया कि उसने अपनी पाटदार आवाज में कहा, "मंगू,हीरा को कुछ दो."

जरा देर में ही मंगल तामचीनी की चिलमची में दूध रोटी भिगोकर लाया और उसे कुत्ते के सामने रखकर बोला, "उठ चल रोटी खा."

मैंने किंचित उत्सुकता दिखाई, "यह कुक्कड़ कहां से प्रकट हुआ."

विक्रम ने भौंहे चढ़ाकर मेरी ओर देखा और बोला, "बदजात आदमी को जवाब है यह. इसे टुकड़ा भी नहीं मिलता तब भी यह दरवाजा नहीं छोड़ता."

पता नहीं वह किस-किस अनुपस्थित को जवाब देने की नीयत से यह बात कह रहा था.

हीरा ने चिलमची में मुंह डालकर चप-चप खाना शुरू कर दिया. सहसा विक्रम की निगाह कुत्ते पर चली गयी और क्षणांश में उसका चेहरा तनाव रहित लगने लगा.

मैं ताज्जुब में पड़कर सोचने लगा कि जिस आदमी को किसी से भी संवाद करना पहाड़ मालूम पड़ता है और भौंहों के बल कभी नहीं जाते वह एक खजैले से बुड्ढे कुत्ते के प्रति इतना ममत्वपूर्ण कैसे हो गया?

इसी समय मंगल विक्रम के सामने आकर खड़ा हो गया और पूछने लगा."कुंमर जी मं नेंक सैर (शहर) को काम निबटा आऊं?"

विक्रम बिना जवाब दिये मोढ़े से उठा और दीवानखाने में चला गया. दो मिनट बाद वह लौटकर आया और उसने मंगल के हाथ में कुछ रुपये पकड़ा दिये. इतनी ही देर में उसका चेहरा फिर तनावपूर्ण हो उठा था.

मंगल जाकर दीवानखाने की सफाई में जुट गया तो मैंने विक्रम से आंखें बचाते हुए पूछा, "मैं भी मंगल के साथ न निकल जाऊं?"

जब उसने मेरी बात का कोई उत्तर नहीं दिया तो मैं बोला, "क्यों न तुम भी थोड़े दिनों के लिएं मेरे साथ निकल चलो—थोड़ा चेंज हो जायेगा."

विक्रम ने गौर से मेरी ओर देखा और कड़वी हंसी हंसकर बोला, "अब कहीं भी जाकर क्या होगा. दुनिया सब जगह एक जैसी ही है."

मैंने आगे एक शब्द भी नहीं कहा. मैं समझ गया कि वह हर तरफ से विरक्त हो उठा है और उसने स्वयं को खारिज कर दिया है. इसके इलावा वह अपने एक मात्र सेवक साथी मंगल को अकेला छोड़कर कहीं भी कैसे जा सकता था.

एकाएक उसने पूछा, "तुम जाओगे कैसे?"

"सड़क तक तो मैं और मंगल बातें करते निकल जायेंगे—फिर दोनों साइकिल पर बैठ लेंगे?"

विक्रम ने एक लंबी सांस ली और कहा, "तो फिर यही सही."

मैंने विक्रम के चेहरे पर तैरती उदासी देखी. उसकी आंखों में भयावह बुझापन था. शायद उत्सुकता और आग्रह उसके दैहिक रसायन से पूरी तरह निकलकर गुम हो चुके थे.

मंगल दीवानखाने की सफाई करके आया और बोला, "अच्छा तो कुंमर जी मैं जाय रयों हूं. तन्नक देर में ई लौट आवंगो. इत्ते में आप नहाओ-धोओ. मैं लौटत हई. खानो बनाय दंगो."

विक्रम ने सिर को हल्का-सा खम देकर अपनी स्वीकृति दे दी.

मैं और मंगल चलने लगे तो वह सिर्फ मोंढ़ा छोड़कर उठ खड़ा हुआ. बाहर तक साथ जाने का उसने उत्साह नहीं दिखाया.

जब मैंने उससे हाथ मिलाया तो उसने अपना मुंह दूसरी तरफ घुमा लिया और दीवानखाने की ओर बढ़ गया. मैंने उसकी पीठ की ओर देखकर कहा, "कभी-कभी अपने हालचाल देते रहा करो."

मेरी ओर बिना मुड़े ही उसने अपना हाथ ऊपर हवा में उठा दिया. मैंने देखा हीरा अपनी दुम हिलाते हुए दीवानखाने की दहलीज पर जाकर खड़ा हो गया.

हवेली से निकलते हुए अकस्मात मेरी आंखें फोर्ड गाड़ी के ढांचे और रात में जले बिस्तर की ओर चली गयीं.

मैं मंगल से पहले हवेली से बाहर हो गया. बाद में वह साइकिल के हैंडिल पर झोला टांगे आया.

कुछ कदम चलने के बाद मैंने देखा हीरा भी हम लोगों के पीछे चला आ रहा था.

मंदिर के नजदीर पहुंचकर मंगल ने उसे घुड़का, "चल महतारी के..."

कुत्ते को जैसे मंगल के इन्हीं शब्दों को सुनने का इंतजार था. वह आज्ञाकारी सेवक की मुद्रा में पीछे लौट गया.

गांव के सीमांत पर पहुंचकर मैंने हवेली की ओर मुड़कर देखा. अपनी पूरी ऊंचाई और विस्तार के बावजूद हवेली बहुत अकेली लगी. उसी पल, घने फैले पीपल पर बैठी चील अपना कंठ फाड़कर चीखने लगी. पता नहीं किस अजाने अपशकुन से मेरे सर्वांग में सिहरन दौड़ गयी.

मंगल मुझसे बोला, "बाबूजी आप बाइसिकल पै चढ़ लेते. मैं तो पांव प्यादोई पौंच जावगो. आप जाय (साईकिल कौ) चुंगी के मुंसी के ढिग रख जइयों और कै दइयो के मंगल ले जायगो."

मैंने कहा, "नहीं मंगल, तुम साईकिल पर निकल जाओ. मैं तो इस गुनगुनी धूप में टहलते हुए निकल जाऊंगा. मुझे गांव देहात में आने का मौका मिलता ही कहां है?"

मंगल मेरे साथ चलते हुए, वास्तविक भावुकता के स्वर में शिकायती तौर पर बोला, "बाबूजी, आप तो कुंमर जी के बालपन के हम जोली ठैरे—दो दिना ठैर जाते तो उनकू कछु सहारो मिलतो—तन्नक दिल ई भैल जातो." फिर वह दुख भरे स्वर में कहने लगा, "पतो नाय इनकी बुढ़ौती कैसे कटेगी. मोय तो सोच-सोच के अपसोस होतो रहयो करै?"

मंगल की चिंता एकदम वाजिब थी. एक भी पैसे की आमदनी का कहीं कोई सहारा नहीं था. इस घोर गंवई देहात में सिर्फ दिन काटे जा सकते थे....वह भी कितने दिन...

सहसा मुझे जले हुए बिस्तर की याद आ गयी. मैं ठहर गया और जेब से पर्स निकालकर बोला, "हां मंगल,यह तो बतलाओ,एक ठीक-सी रजाई कितने रुपयों में बन जाती होगी?"

"मोय तो कुछ अंदाजो है ना बाबूजी,सौ डेढ़ सौ रुपय्या आज्जकल्ल लगई जात हुगे."

मैंने पर्स से सौ-सौ रुपये के दो नोट निकालकर मंगल की ओर बढ़ाते हुए कहा, "देखो,तुम फौरन साइकिल पर चढ़ो और तुरंत एक रजाई का इंतजाम करो. तुम्हारे कुंवर साहब के पास रात को ओढ़ने का कोई इंतजाम नहीं है."

मंगल ने हिचकते हुए रुपये तो पकड़ लिये मगर संशयपूर्ण स्वर में बोला, "कऊं ऐसो ना होय के कुंमर साब मेरी ऐसी की तैसी ई न कदई. उनको कुछ बी पतो ना चले—कैन लगै के सारे तैने रूपप्पया च्यौं लै लये?"

"उसकी फिक्र बाद में करना. पहले रजाई का खोल खरीदकर उसमें किसी धुने से या मशीन पर रूई भरवाओ."

सहसा मंगल की बूढ़ी थुकी आंखों से अश्रुधारा प्रवाहित हो उठी और वह भर्राये गले से बोला, "बाबूजी, हमाये कुंमर जी बिरकुल इकले पर गये हैते. विनकू बिसार मत दीजिये—कबऊ भैरते (बहुरते) रहियो."

मंगल के इस निश्छल आग्रह ने मुझे हिला दिया. मुझे लगा वह विक्रम के भीतर की ज़ुबान बन गया है.

मैंने उसे जबरदस्ती साईकिल पर चढ़ाया और अपने पर्स से विजिटिंग कार्ड निकालकर देते हुए बोला, "जब जरूरत हो, कहीं से भी एक लाइन लिखवा देना."

पता नहीं क्यों अंतिम वाक्य कहते-कहते मेरा स्वर टूट गया. □


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
सुधीश पचौरी

# रूमानी मुद्रा की त्रासदी

साहित्य में एक वक्त ऐसा भी रहा है जब साहित्यकार अपने साहित्य की रचना के लिए इस दुनिया को ठोकर पर रखा करता था. वह अपनी कीमत पर 'रचना' करता था और अपने सिद्धांतों के विरूद्ध समझौता कतई नहीं करता था. हमें नहीं मालूम कि हिंदी साहित्य के इतिहास में ऐसा दौर ठीक-ठाक कब रहा. किंतु इतना तय है कि अपने सिद्धांतों (रचना की स्वतंत्रता) के प्रति इतनी निष्ठा ऐसे दौरों में पैदा होती है जब रचना और जीवन जीने की शर्तें एकमेक हो जाती हैं. यद्यपि रचना और जीवन का ऐसा एकमेवत्व साहित्य की प्रचलित तमाम अवधारणाओं को तोड़फोड़ सकता है और उन्हें फिलहाल छोड़ ही दें तो बेहतर. फिर भी अपने परम रूप में किसी भी रचनाकार के लिए ऐसा एकमेवत्व सिर्फ फंतासी (रचना) की दुनिया में ही संभव है और अत्यंत चुनौतीपूर्ण एवं आकर्षक होते हुए भी यह साहित्य की रूमानी अवधारणा का अंतिम संस्कार है.

इस रूमानी अवधारणा की त्रासदी का अध्ययन साहित्य से अधिक फिल्मों और अब सीरियलों के माध्यम से किया जा सकता है क्योंकि संस्कृति में बड़ी पूंजी के प्रवेश ने इस रूमानी परिकल्पना को या तो करूणाजनक बना दिया है या हास्यास्पद 'मनोरंजन' और 'जिंदगी'. सीरियलों के कुछ खंडों में रूमानी अवधारणा के ऐसे कई रूप नजर आते हैं जो गौरतलब हैं क्योंकि वे एक और रूमानियत को 'क्रांतिकारी' रूप में पेश करते हैं किंतु जिस ढंग से करते हैं वह स्वयं 'क्रांतिकारी संभावनाओं' का तिरस्कार करता है टी.वी. जैसे माध्यम की प्रवृति का भी इस तिरस्कार में योगदान नजर आता है.

'जिंदगी' सीरियल (जिसे अमृता प्रीतम की कुछ प्रख्यात कहानियों एवं उपन्यासों को मिलाकर एक श्रृंखलाबद्ध पटकथा में ढाल कर वेदराही ने बनाया है) में एक प्रसंग यों है: ''एक कथाकार सूरज साहित्य को शौकिया (आत्मानुभूति या सहजानुभूति से परिचालित) कर्म समझता है. वह नॉवेल को पैसे से तोलना जुर्म समझता है. पेट भरने के लिए वह प्रूफ पढ़-पढ़ कर गुजारा करता है किंतु ट्रेडमार्क वाले नामों से (वर्तमान उदाहरणों में कर्नल रंजीत) नॉवेल लिखना गुनाह समझता है. प्रकाशक छद्मनाम से लिखने को कहता है किंतु यह गरीब लेखक सूरज (नाम का प्रतीक महत्वपूर्ण) पांच सौ-सात-सौ एडवांस (सन् 1940-50 का जमाना. पांच सौ–पांच दस हजार से कम न होंगे) को भी ठुकरा देता है और प्रकाशक से कहता है, ''आपकी मूंछें हिटलर से बहुत मिलती है.''

सूरज के इस त्याग, संघर्ष, तपस्या यानी रचना की ईमानदारी (आजकल के शब्द) पर एक अखबार की मालकिन संपादिका फिदा है. वह दर-दर भटकते सूरज को संपादकत्व देना चाहती है (आखिर अखबार की मालकिन को एक मेहनती ईमानदार कलमकार तो चाहिए ही.) किंतु अपनी संघर्षप्रियता (यहां संघर्ष ही संस्कार बन गया है) के चलते वह ठुकरा देता है.

जिन लोगों के लिए हम लिखते हैं वे सस्ता साहित्य पढ़ते हैं. सूरज की इस उलझन को आंटी जी सुलझाती हैं कि ''बड़े लेखक ऐसा नहीं लिखते जैसे दूसरे लिखते हैं. शरदचंद्र, प्रेमचंद्र ने जो लिखा वह बढ़िया भी है और आम आदमी के भी काम का है.'' इस ज्ञान के बाद सूरज कहता है कि ''मैं नौकरी करूंगा और जब सुविधा होगी तब लिटरेचर लिखूंगा. जीवन और रचना का यह अनूठा 'एकमेवत्व' एक नये अंतर्विरोध पर टिका है. जीवन जीने के लिए काम-धंधा करना है, पैसा कमाना है किंतु रचना करने के लिए कोई 'समझौता' (एक जिद की तरह) नहीं करना है. पापी पेट के लिए समझौता और रचना के लिए समझौते का विरोध, अंतर्विरोध का यह तेवर अपने रूमान से पूंजीवाद के विरुद्ध अकेले लड़ने की ऐसी आत्मघाती मुद्रा है. जिसे आसानी से प्रगतिशीलता के लक्षणों में गिन लिया जाता है (यद्यपि प्रगतिशील या क्रांतिकारी होने से उसका कोई संबंध नहीं.) यह रूमानियत आज भी क्रांतिकारी रूमानियत में आसानी से घुली-मिली देखी जा सकती है.

अमृता प्रीतम

छाया : पवन महेंद्र

'मनोरंजन' सीरियल में भी ऐसी रूमानियत एक नये किस्म के 'डिफीटिज्म' की शिकार होती हैं. एक 'सब कुछ जला डालूंगा' जैसी फार्मूला फिल्म के स्टार कुमार के नखरे, उसकी चौतरफा नानाशाही और फाइनेंसरों से मिली भगत है दूसरी ओर इसी फिल्मोद्योग में 'समझौता विहीन' फिल्म बनाने वाले कला फिल्म वाले अनवर साहब हैं जिनकी एक रील बनाने की रकम की व्यवस्था करने के लिए पटकथा लेखक अपनी किताबें बेच देता है. हीरोइन अपने गहनेजेवर और कला-फिल्मों का अहसानमंद नायक जयविजय अपना कीमती समय कम पैसे में भी दे देता है. फिल्म बनाने का जुनून किस कदर सवार है इन नये लोगों में? नायिका टेक पर टेक देने (और इलाज न करा पाने की वजह से) से बेहोश होती है, उधर सैट डिजाइनर लाइट पकड़ता है कि ट्राली के पहिये में पैर कटता है, किंतु चीख तक नहीं निकलती उसकी. क्यों? क्योंकि शॉट पूरा करना है किसी भी कीमत पर. यह सब होता है किंतु वह एक रील सिर्फ इसलिए पूरी नहीं होती क्योंकि अंत में स्वयं जयविजय भी स्टारडम के ग्लैमर का शिकार हो जाता है. यदि अनवर अपनी कला फिल्म बना भी लेते तो भी क्या कोई क्रांति हो जाती? क्या उनकी परिणति भी जयविजय वाली न होती? उनके या उनके मित्रों की फिल्म बनाने की अटूट लगन अंततः उनके भीतर बैठे कलाकार के 'निजी कलाकारत्व' के दावे की मुद्रा भर नहीं कि वे दिखाना चाहते है कि देखो हम कितने ईमानदार कलाकार हैं कि समझौता कतई नहीं करते? पूंजीवादी दुनिया में, जहां सांस-सांस में समझौता होता है, ये मतवाले इस यथार्थ को अपनी रूमानियत की वजह से अस्वीकार करते हैं जबकि इसका दूसरा अस्वीकार सुसंगत क्रांतिकारी समझ से भी संभव था किंतु जिसकी यहां न तमीज दिखी, न गुंजाइश. □


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्म : 30 सितंबर, 1948
'हम लोग' तथा ''अजूबे'' का सहायक निर्देशन. कई कहानियां प्रकाशित.
संप्रति : स्वतंत्रलेखन व फिल्म निर्देशन
संपर्क : 265 सी, पॉकेट-2 मयूर बिहार, दिल्ली

मनमोहन चड्ढा

# माइनस सेवन

अब कभी-कभी उसे लगता था कि वह होश में है. तलाक हुए आठ साल हो गये थे और अब वह उन यादों से धीरे-धीरे छूट रहा था. देवी को लगता है कि जैसे किसी रुष्ट आत्मा ने अपने गुस्से को एक क्षण में उसकी जिंदगी के कई बहूमूल्य वर्ष उससे छीन लिये थे.

शरीर फिर भरने लगा था. चौंतीस की उम्र में 'फिर' का मतलब देवीलाल के लिए बहुत बड़ा था. वैसे भी उसका शरीर इतना भरा-भरा कभी नहीं रहा था. हो सकता हैं, लोगों का यह कहना सही हो कि तीस के बाद शरीर फूलने लगता है. पेशियों की जकड़ ढ़ीली पड़ जाती है. पर अपने शरीर में लौटती ताकत से उसे लगता था, यह शरीर का फूलना नहीं है, खून की दौड़ है.

बीस साल की उम्र में ही देवी का लिखित परीक्षा उत्तीर्ण कर एल.डी.सी. लग जाना देवी के परिवार के लिए एक हादसे की तरह था. मां के चेहरे पर एक नयी रौनक आ गयी थी. आज, दूर से देखने पर, देवी को लगता है जैसे यह सब घटनाएं एक बड़ी दुर्घटना का हिस्सा मात्र थीं. दो साल बाद ही वह दोनों विभागीय परीक्षाएं देकर यू.डी.सी. हो गया था और देवी की प्रसिद्धी घर से निकलकर गली भर में फैल गयी थी. घर से निकलकर जब वह गली में पांव रखता तो प्रशंसा भरी नजरें उसे घेरने लगतीं. इस तीन सौ गज लंबी गली से देवी हर मौसी और ताई की स्नेह और शिकायत भरी निगाह का अपनी नमस्ते से जवाब देते हुए गुजरता. किसी भी निगाह का विनम्रता से जवाब न देने का मतलब था एक नयी अफवाह को जन्म देना. यह निश्चित था कि देवी ने उस गली की परंपराओं को तोड़ा था, उन लोगों के विश्वास को ठेस पहुंचायी थी. क्योंकि तीन बच्चों के पिता ब्रहमदेव मिश्र जब तरक्की पाकर घर लौटे थे और अपने अपर डिवीजन बन जाने का समाचार अपनी पत्नी को सुनाया था तो पत्नी ने खुशी तो जाहिर की लेकिन परंपरा का पालन करने से इनकार कर दिया. परंपरा यही थी कि तरक्की मिलने पर पतिदेव घर आकर शुभ समाचार सुनाते और अगली सुबह पूरी गली में लड्डू बांटे जाते. लड्डू देवी की मां ने भी गली भर में बांटे थे, लेकिन माफी सी मांगते हुए. गली का हर जवान इस मोर्चे पर शहीद हो चुका था जिसे देवी ने पहली बार में ही फतह कर लिया था और दूसरा मोर्चा तो इतना घनघोर था कि लोगों की आंखें चौंधियायी रह गयी थीं. मां जिस घर में प्रवेश करती, लड्डू देते समय, सफाई देना न भूलती. ''भई,हमें तो कुछ पता नहीं, कैसे हुआ यह सब.'' मां के स्वर और शब्दों में दुविधा साफ झलक आती थी.

फिर उस कार का एक समाचार की तरह गली में प्रवेश और देवी के घर के आगे ठहरना. देवी ने मां को हिदायत दी थी, ''बस इतना ध्यान रखना मां, आवाज में ज्यादा ललो-चप्पो न आने पाये.'' मां ने कुछ हंसकर, कुछ नाराजी से उसे टाल दिया था. मां और काका दोनों को ही इस बात पर विश्वास करने का मन नहीं हो रहा था कि देवी की जो इतनी प्रशंसा हो रही है, वह असली है. दो-तीन दिन से मां कुछ ज्यादा मुखर हो उठी थी. ''अरे बोलने का क्या? बोला और हवा में गया, ये सब उड़ती बातें हैं. हम जानते हैं किस तरह रातों को जगाकर पढ़ाया है बेटे को.'' मां ने कहा था और पिता ने हमेशा की तरह मां की हां में हां मिला दी थी, ''और क्या देवी की मां, लोगों को तो आज दिखाई देता है, इस आज को लाने में कितनी मेहनत लगी है,यह किसने देखा है?'' और तब देवी मजाक में इतना ही सोच पाया था कि उसकी मां को मर्द और पिता को औरत होना चाहिए था. पर आज यह सोच ही देवी को कंपकंपा देने के लिए काफी है.

**देवी उस पूरी शाम इस बात पर हैरान होता रहा कि यह लड़की उसकी बीवी क्यों है? और देवी उसका पति क्यों है? चपड़ासी क्यों नहीं है? देवी को लगा था कि यह लड़की बुद्धि, विचारों और आकांक्षाओं में उससे बहुत ऊपर खड़ी है और देवी जहां खड़ा था, वहां से उस तक पहुंच पाना संभव नहीं था.**

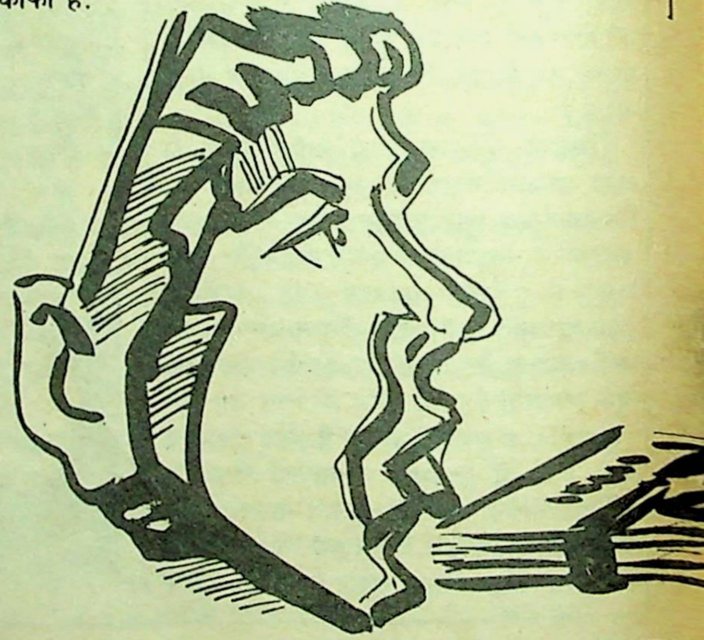



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस शहर में आने के बाद देवी को लगा था कि अतीत की इस सोच से वह आसानी से उबर जायेगा. वह किसी के साथ रहा ही कब है और कितने दिन. जो उसे अब अकेला रहने में तकलीफ होगी. और हमेशा की तरह उसका मन इस दुविधा में उलझ जाता है कि उसे तकलीफ है या नहीं. शरीर जो भर रहा है,उससे साफ लगता है कि तकलीफ नहीं है और बिल्कुल नहीं है, पर मन को तो बस देवीलाल का मन ही जानता है. नौ बजे शाम को ही पूरी तरह ऊंघ जाना, सुबह आठ बजे जबरदस्ती बिस्तर से अपने आपको छुड़ाना, जल्दी-जल्दी तैयार होकर साइकिल निकालना और ऑफिस की तरफ चल देना. रास्ते में नाश्ता ले लेना और फिर दिन भर फाइलों में उलझे रहने की कोशिश करना. पिछले डेढ़ साल से, जब से देवी अपने विभाग का सुपरिंटेंडेंट बना है, उसके पास बिल्कुल काम नहीं रह गया है और पिछले नौ साल से दस से पांच तक जमकर काम करने और जवाबदेही की आदत उसे अब परेशान करती रहती है. देवी को लगता है,यही समय है जब घर में एक औरत होनी चाहिए, एकाध बच्चा, ताकि उनके बारे में सोचते हुए सुबह को दोपहर और दोपहर को शाम किया जा सके.

पर अब क्या वह सब दुबारा हो पायेगा. लगता तो नहीं. सिर के आधे बाल तो उस तीन महीने की बीमारी ने खा लिये थे और बाकी के आधे इन बरसों की सोच ने सफेद कर दिये. इस बूढ़े को अब कौन अपनी लड़की देगा और अगर लड़की मिल भी गयी तो क्या देवी उसे संभाल पायेगा? जब वह भरी जवानी में नहीं संभाल पाया.

कई बार मौका मिला है देवी को होम टाउन की ट्रांसफर का. उसे मालूम है, घर गया तो मां आस का वास्ता देकर उसे दूसरी शादी के लिए मजबूर कर देगी. और देवी को भला यहां क्या तंगी है?

तंगी, तो वाकई बिल्कुल नहीं है. लाला का खाना हमेशा लजीज होता है और देवी का तो वह खास खयाल रखता है. एकाध बार उसने सोचा है कि शायद लाला की कोई लड़की हो और लाला को उसका इतिहास मालूम हो. पर यह सब देवी के खाली दिमाग की उपज है, लाला तो सीधा आदमी है, छोटा व्यवसायी. "बाबूजी, आप कुछ बोलते ही नहीं इसलिए खुद ध्यान रखना पड़ता है कि कभी सब्जी खराब भी लगी तो बाबूजी तो कुछ कहेंगे नहीं. इतने अच्छे ग्राहक का कौन ध्यान नहीं रखेगा? जो चिल्ला कर मांग लेते हैं या जरा सी बात पर शिकायत करते हैं, उनका ध्यान रखने की क्या जरूरत है?"

काश, यह बात वह लड़की समझ पाती कि शिकायत वह कर ही नहीं पाता. अच्छी तरह जानते हुए भी कि रोज जो जली हुई रोटी उसे मिल रही है, उसका हकदार वह नहीं है.

लड़का उन्हें होनहार लगा था, कुछ करके दिखाने वाला. तभी तो वे पीछे ही पड़ गये थे. देवी की मां तो खुशी से पागल थी. "अरे कितनी अमीर है देवी की ससुराल, पूछो मत. एक साले का तो बच्चों के खिलौने बनाने का कारखाना है और दूसरा क्रिकेट के बैट बनाता है. पैसा पानी की तरह बरसता है घर में." और शादी के साथ टेलीविजन, सोफा, फ्रिज, देवी के लिए स्कूटर सब कुछ आया था घर में. सब कुछ सिवाय लड़की के.

दसेक दिन रही थी वह देवी के साथ. देवी को कुछ याद सा आता है. वैसे अब तो देवी को लगता ही नहीं कि वह इस सबसे होकर गुजरा था. उसे लगता है जैसे उसने कोई फिल्म देखी थी, जिसमें ऐसी एक लड़की थी.लड़की उसे अच्छी लगी थी या खराब या वह लड़की को कैसा लगा था... इतना सोचने का समय भी तो उसे नहीं मिला था. हां, वह देवी से तरक्की करने का आग्रह करती रही थी. कुछ हिना और पत्थर का उदाहरण-सा देती रही थी.

ग्यारहवें दिन लड़की का भाई आया था, और वह उसके साथ चली गयी थी. अगले हफ्ते उसका एक प्यार भरा खत आया था कि देवी को अपना समय नष्ट नहीं करना चाहिए और पी.सी.एस. का फार्म भर देना चाहिए. देवी को याद आया था कि फार्म कैसे भरना है, कौन से विषय लेने हैं और उसका रिश्ते में एक बड़ा भाई है जो पी.सी.एस. पास करने के बाद अब बड़ा आफिसर है, कितना बड़ा सरकारी बंगला उसे मिला है. आफिस के आधे नौकर घर पर काम करते हैं और कितनी ऊपरी कमाई है. यह सब, वह देवी को उन दस दिनों में बताती रही थी.

देवी पूरी नैतिक ईमानदारी के साथ पी.सी.एस. की तैयारी में जुट गया था. 'यह उसकी पत्नी की एकमात्र इच्छा थी, उसे पूरा करना उसका दायित्व था और दायित्व निभाना देवी अच्छी तरह जानता था.' देवी की अपने ही स्वर की यह कड़वाहट तब तो उसकी कल्पना में भी नहीं थी. उन दिनों तो उसने रात के एक बजे तक जागकर नोट्स तैयार करने और सुबह छह बजे उठकर उन्हें याद करने का नियम बना लिया था. मां जरूर बारह बजे के बाद, देवी को सो जाने और आंखों पर ज्यादा जोर न देने का आदेश देती रहती थी. तब देवी अपने आप से कहा करता, "असल में तो उन लोगों को मालूम है कि तरक्की कैसे की जाती है. हमारा क्या, बस जैसे गुजरी जिंदगी गुजार ली. अब मां को ही देखो, बेटा सारी उम्र चाहे क्लर्क रहे लेकिन चश्मा नहीं लगना चाहिए." इम्तहान पास आने पर देवी शाम को छह से आठ तक, ट्युटोरियल्स में भी जाने लगा था. जहां ऊंची परीक्षा में उत्तीर्ण होने के खास गुर बताये जाते थे.

पहली तारीखों के आसपास जब रोज शाम को घर में पकोड़ों के साथ चाय होती थी. मां ढेर सारे पकौड़े और चाय की पतीली ला बीच में रखती और हरेक का खाली गिलास भरती जाती. काका बीच-बीच में कभी एक आध पकौड़ा उठा लेते थे. देवी को सिर्फ प्याज के पकौड़े पसंद थे इसलिए वह गोभी और आलू के पकौड़ों से बचता हुआ प्याज के पकौड़े चुनता

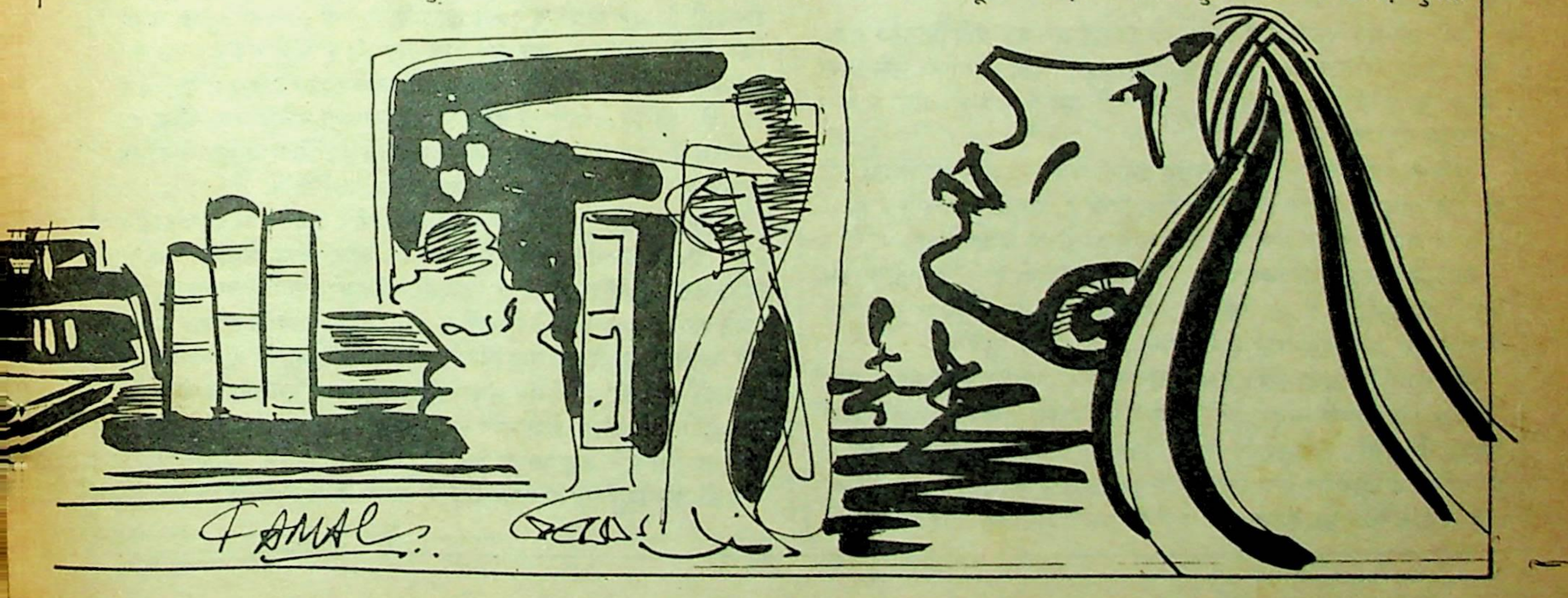

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहता. पारो और लक्ष्मी में पकौड़े उठाकर मुंह तक पहुंचाने और निगलने की होड़ लगी रहती थी.

काका छोटी पारो को गोद में खींच लेते तो वह छूटने के लिए तड़पने लगती. उस समय उसे पकौड़ों से दूर खींचना ऐसा ही था जैसे किसी मछली को पानी से बाहर खींच लेना. काका कहते, ''थोड़ी देर सांस तो ले ले. आदमी जो खाता है, वही हो जाता है. सुबह जब हम देखेंगे कि हमारी पारो गायब है और उसकी जगह पकौड़ों का ढेर लगा है, तब क्या करेंगे?''

पारो तब तक रोने लगती, काका उसे छोड़ देते और उसांस लेते हुए कहते, ''बहू बीच में बैठी होती तो कितना अच्छा लगता.''

और अचानक देवी को याद आता कि उसकी शादी हो चुकी है.

छह महीने जब यूं ही बीत गये तो काका ने उसे कहा था, ''जा,एक बार देख के तो आ वहां क्या कर रही है? आती क्यों नहीं?''

उसे जाने का कोई कारण नहीं लगा था. ''क्या कहेगा वह उससे जाकर, और अगर उसने कह दिया कि वह नहीं आयेगी, तब वह क्या करेगा?

लेकिन ऐसी कोई बात नहीं हुई थी. वहां पहुंचने पर उसकी खूब खातिर हुई थी. उसे लगा था कि वह किसी दूसरी दुनिया में आ गया है. लेकिन तीसरे दिन यह तिलिस्म टूट गया था. शाम के समय वह उसे अपने कमरे में ले गयी थी और बहुत देर तक बोलती रही थी. देवी को अब कुछ याद नहीं. सिर्फ इतना याद है कि उसने देवी को समय नष्ट न करने की सलाह दी थी और कहा था कि वह समझ नहीं पा रही है कि परीक्षा इतने पास होते हुए भी देवी बेकार की बातों के बारे में क्यों सोच रहा है? लेकिन देवी उस समय कुछ और ही सोच रहा था उसे लग रहा था कि यह लड़की जो उसे यह सब समझा रही है, उसकी बीवी नहीं हो सकती. क्या सिर्फ इसलिए एक औरत बीवी कहलाने लगती है क्योंकि वह कुछ रातें उसके साथ सोयी है? क्या आज तक वह कभी अपने विचारों को इस प्रकार धाराप्रवाह और तर्कपूर्ण ढंग से व्यक्त कर पाया है?

देवी उस पूरी शाम इस बात पर हैरान होता रहा कि यह लड़की उसकी बीवी क्यों है? और देवी उसका पति क्यों है? चपड़ासी क्यों नहीं है? हीनता भाव के काले घने बादलों ने देवी की आत्मा को पूरी तरह ढक लिया था. देवी को लगा था कि यह लड़की बुद्धि, विचारों और आकांक्षाओं में उससे बहुत ऊपर खड़ी थी और देवी जहां खड़ा था,वहां से उस तक पहुंच पाना असंभव था.

देवी ने जवाब में एक शब्द भी नहीं कहा था.

देवी अकेला लौटा था. काका ने तब पहली बार उसे गाली दी थी. कुछ भी पूछने की जरुरत समझे बगैर उन्होंने कहा था, ''एक ये नामर्द पैदा हुए हैं हमारे घर में.''

देवी का मन पढ़ने से एकदम उचट गया था. वह घंटों किताब लेकर बैठा रहता, लेकिन मन न जाने कहां भटकता रहता और फिर उसे ध्यान आता कि इतनी देर से उसने कुछ भी नहीं पढ़ा है. बस बेध्यानी में पन्ने पलटता रहा है.

परीक्षा देकर वापस लौटते समय देवी ने महसूस किया था कि छह घंटे की रेल यात्रा ने उसके शरीर को तोड़ दिया है. घर पहुंचकर जब मां के हाथ में उसने बक्सा थमाया तो उसे एक सौ दो बुखार था.

दो महीने तक देवी बिस्तर पर रहा था. उठा था तो अपनी ही शक्ल उससे पहचानी नहीं जा रही थी. इस बीच रिजल्ट निकल चुका था लेकिन देवी का नाम पास होने वालों की सूची में नहीं था.

फिर एक दिन अचानक वह आ गयी थी. दरवाजा मां ने खोला था और उसने झुककर मां के पांव छुए थे. पीछे रिक्शेवाला हाथ में एक खूबसूरत अटैची केस और बिस्तरबंद लिये खड़ा था. उसने रिक्शेवाले को दो रुपये दिये थे और रिक्शेवाला सलाम करता हुआ चला गया था. मां को कुछ अजीब लगा था, स्टेशन के पास ही सब्जी मंडी थी और मां वहां से आने के आठ आने दिया करती थी.

बिस्तर पर लेटा देवी उठकर बैठ गया था. इस लड़की के अब तक न आने की जैसे कोई वजह नहीं थी, हो सकता है इसके अचानक आ जाने की भी कोई खास वजह न हो. देवी उसे देखकर मुस्करा दिया था.

लघुकथा

## ज्ञान की परख

बलबीर सिंह

कन्फ्यूशियस विभिन्न इलाकों का भ्रमण करते हुये एक देश में पहुंचे, तो वहां के राजा ने उन्हें अपने दरबार में आमंत्रित किया. उसने उनकी महान विद्वता के बारे में सुना हुआ था और उसे परखना चाहता था. कन्फ्यूशियस के आने पर उसने तीन पिंजरे मंगवा कर उनके सामने रखवाये.

उनमें से एक पिंजरे में एक चूहा था, जिसके सामने उसकी मनपसंद की खाने की चीज़ों का ढेर लगा हुआ था. लेकिन चूहा था कि उनमें से कोई भी चीज खा नहीं रहा था.

दूसरे पिंजरे में एक बिल्ली थी, जिसके सामने दूध-मलाई से भरे कटोरे पड़े थे, लेकिन उसने उन्हें मुंह तक नहीं लगाया था.

तीसरे पिंजरे में एक बाज़ था, जिसके सामने ताज़ा मांस की बोटियां रखी हुई थी, लेकिन उसने उसमें से एक भी नहीं खायी थी.

कन्फ्यूशियस ने यह सब देखा और अपने शिष्यों को संबोधित करते हुये कहा. ''देखा, डर कितनी बड़ी चीज़ है! चूहा भूखों मर जायेगा, लेकिन भावी डर के बजाये उसे वर्तमान डर की कहीं अधिक चिंता है. वह यह नहीं सोचता कि जब आगे-पीछे मरना ही है,तो खाकर क्यों न मरे. यही हाल बिल्ली का है. बाज को देखते हुये उसे हर क्षण अपनी मौत नजर आ रही है, और वह खाने के बारे में सोच तक नहीं सकती लेकिन बाज की हालत इन दोनों से निराली है. वह कभी चूहे को खाने के बारे में सोचता है, तो कभी बिल्ली को. उसकी नजर इन दोनों पर ही अटकी हुई है. उसके सामने जो खुराक पड़ी है, उसे वह चूहे और बिल्ली से कम महत्व दे रहा है, जो कि पता नहीं कब उसकी खुराक बनेंगे. यह जीव का स्वभाव है. अगर यह तीनों इसी प्रकार पिंजरों में बन्द एक दूसरे के सामने रहे, तो अन्त में तीनों भूखों मर जायेंगे.''

कन्फ्यूशियस एक क्षण के लिए रुके और उन्होंने राजा की ओर देखा. फिर, उन्होंने अपने शिष्यों की ओर मुंह मोड़कर कहना जारी रखा, ''और इन तीनों से कहीं अधिक मूर्ख यह राजा है, जो अपने ज्ञान के अहंकार में दूसरों के ज्ञान की परीक्षा लेना चाहता है. ऐसे व्यक्ति की हालत एक दिन उस सपेरे जैसी होती है, जो अपनी बीन की धुन पर सांपों को नचाता हुआ उनका शिकार करता है, लेकिन किसी समय अचानक सुर-ताल से उखड़ कर खुद किसी सांप का शिकार बन जाता है.''

तभी कन्फ्यूशियस मुड़े और दरबार में से चले गये. □



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सीधी-सादी मां को लगा था कि सब कुछ बिल्कुल ठीक हो जायेगा, पहले की तरह. देवी ने देखा था कि मां पूरी तरह इस कोशिश में जुटी है कि बहू को किसी तरह की कोई तकलीफ न हो. क्या मां उन दिनों को वापस लाने की सोच रही थी जो कभी थे ही नहीं?

और देवी? क्या वह सब कुछ जानते समझते हुए भी, एक छोर तक पहुंच चुके इस संबंध को सुधारने के लिए कुछ कर सकता था? शायद इससे समय इन खिसकी ईंटों पर कुछ लीप-पोतकर उन्हें ऐसा कर दे कि बाहर से देखने पर पता भी न लगे कि वे कभी बुरी तरह खिसक गयी थीं.

समझौता, हर साल में समझौता. देवी को लगता है कि आज वह जो कुछ भी है, अच्छा या बुरा, सिर्फ इस एक शब्द की वजह से है.शायद उसके शब्दकोष में दूसरा कोई शब्द ही नहीं है.

पर झुकने का मौका ही नहीं मिला था और समय ने किसी भी तरह की लीपा-पोती करने से इनकार कर दिया था. शायद चौथे या पांचवें दिन जब वह दफ्तर से लौटा था, तब वह सजी-धजी तैयार थी. मां ने देवी से आग्रह किया था कि वह बहू को घुमा लाये. उसने कोशिश की थी कि पारो या लक्ष्मी को साथ ले ले ताकि किसी भी तरह की बात करने की गफलत से बचा जा सके.

एक छोटा-सा पार्क था पत्थर की बेंच पर वह कुछ हटकर बैठा था. थोड़ी ही दूरी पर कुछ बच्चे खेल रहे थे. फिर ठीक वही हुआ जिसे वह टालना चाह रहा था. "देखो, इतनी जल्दी थोड़े ही कोई निराश होता है. तुम तो एकदम हिम्मत हारकर बैठ गये हो. फेल भी तो वही होते हैं जो इम्तहान देते हैं. अब तो तुम्हारी पूरी तैयारी हो चुकी है. मुझे विश्वास है, इस बार तुम जरूर पास हो जाओगे. और फिर...." देवी चुप सुनता रहा था. उसका सारा शरीर तपने लगा था. उसे यूं लगा जैसे किसी ने उसे उठाकर जलती भट्टी में फेंक दिया हो. उसे मालूम था कि उसके पास कोई जवाब नहीं है. पर एक साल और, बीते साल की तरह गुजारने के खयाल भर से उसके रोंगटे खड़े हो गये थे. देवी ने सोचा था कि इस समय जरूर उसे कुछ बोलना चाहिए, अब भी अगर न बोल पाया तो वह अपने आप को इस क्षण के लिए, जीवन भर माफ नहीं कर सकेगा. अत्याचार की किस्में होती हैं, इस लड़की ने पता नहीं अत्याचार के कौन से स्कूल में दीक्षा ली थी पर अब यह सब देवी के लिए असहनीय हो चुका था.

देवी सिर्फ इतना ही कह पाया था, "तुम कहती हो तो मैं जरूर कोशिश करूंगा, लेकिन तुम्हें यहीं रहना होगा, मेरे पास." देवी और भी बहुत कुछ कहना चाहता था कि वह उसके पास रहेगी तो उसे एक प्रेरणा मिलती रहेगी. वह रोज नयी ताकत से मेहनत कर सकेगा वगैरह वगैरह. पर यह सब सुनने का समय उसके पास नहीं था. "छिः छिः मैं तो उसी सरकारी बंगले में रहूंगी जो तुम्हें मिलेगा. यहां तो ये चार दिन भी मैंने बड़ी मुश्किल से काटे हैं. एक गंदी सी बदबू घुसती रहती है नाक में, चौबीस घंटे."—उसने तेजी से कहा था.

देवी को लगा था जैसे किसी ने उसके सिर के अंदर हाथ डालकर उसके दिमाग को निचोड़ दिया हो. फिर देवी का दायां हाथ इतनी तेजी से उसके गाल पर पड़ा कि देवी को भी तब होश आया जब उसे अपने झनझनाते हाथ का खुद पता लगा.

घर आकर आधे घंटे में ही उसने अपना सामान बांध लिया था और गली से एक बच्चे को भेजकर रिक्शा मंगा लिया था.

"बहू........" काका ने शायद पहली बार उसे सीधे संबोधित किया था.

"जाने दीजिए उसे काका." देवी की आवाज बहुत ऊंची उठी थी.

काका ने फिर एक कोशिश की थी. वे स्वयं ही देवी की ससुराल जाने को तैयार हो गये थे. "आखिर पता तो चले, खोट कहीं हमारे ही लड़के में तो नहीं." देवी ने उन्हें समझाने का प्रयत्न किया था, "काका, आप वहां बेइज्जती कराने जा रहे हैं. उन लोगों के सोचने का तरीका हम लोगों से बहुत अलग है." लेकिन काका अगली भोर जल्दी ही निकल गये थे.

मां को भी सारा कुसूर देवी का ही नजर आ रहा था—"मेरे साथ तो जो दो-चार दिन रही, अच्छी तरह बोलती बतियाती रही, तेरे साथ बात करके, पता नहीं उसे क्या हो जाता था."

उन दिनों देवी को यह पता चलना ही बंद हो गया था कि वह होश में जी रहा है या बेहोशी में. देवी दिन में पचास बार सोचता था कि गलती उसी की है और दिन में पचास बार सोचता था कि गलती उसकी बिलकुल नहीं है. सारी रात उसे लगता था कि कोई आकर उसके सिर में बैठ गया है और ढोल पीट रहा है.

अगले दिन शाम को काका लौट आये थे और पूरी शाम चुप बने रहे. मां की प्रश्नातुर निगाहें जरूर उन्हें कोंचती रहीं. सोने से पहले काका ने रुकी बात कह डाली थी—"भई उन्होंने कहा है कि आपके घर में ही कुछ कमी है, जो लड़की दो-तीन दिन से ज्यादा नहीं रह पाती. आपके मना करने पर भी हमने तो सब कुछ इसलिए दिया था, ताकि हमारी लड़की आराम से रह सके. अब वह नहीं रह पाती तो इसमें गलती किसकी है?

दो दिन बाद ही उसका भाई आया था और वे सब चीजें जो उस बांसुरी बजाने वाले जादूगर के पीछे-पीछे एक दिन इस घर में चली आयी थीं, उसी बांसुरी बजाने वाले जादूगर ने पीछे-पीछे इस घर से चुपचाप निकलकर वापस चली गयी थीं. और वह घर जो उन चीजों के आने से पहले भी, बहुत भरा भरा लगता था, उन चीजों के जाने से एकदम खाली हो गया था.

गुस्से और दुःख में काका ने कहा था, "यह अधूरा सच है कि दहेज सिर्फ लड़के वाले ही मांगते हैं और न मिलने पर लड़की की जिंदगी तबाह कर डालते हैं. ऐसा भी तो होता है कि लड़की वाले दहेज मांगें और न मिलने पर लड़के की जिंदगी तबाह कर दें. इस समाज में ताकतवर हमेशा से कमजोर को दबाता आया है. इस बात से क्या फर्क पड़ता है कि आप लड़की वाले हैं या लड़के वाले."

सेपरेशन मिलते ही देवी ने ट्रांस्फर के लिए एप्लाई कर दिया था. सुबह और शाम गली से गुजरते हुए उससे उन मौसियों और ताइयों की सहानुभूति भरी नजर सही नहीं जाती थी, जो कल तक उसे प्रशंसा भरी नजरों से देखा करती थीं.

इस शहर में आकर भी देवी को उस स्मृति से छूटने में वर्षों लग गये हैं. इन सात वर्षों में देवी को मां और काका के कई अनुरोध भरे पत्र मिले हैं. लेकिन हर बार घर लौटने की बात सोचते ही, देवी को लगता है कि समय के जादूगर ने उसके साहस को कैद कर लिया है. शरीर की ताकत तो जरूर लौटने लगी है लेकिन टूटा मन जुड़ने में अभी शायद कुछ वर्ष और लग जायें और तब शायद किसी दिन देवी उस तीन सौ गज लंबी गली से सहज भाव से गुजरकर अपने घर तक पहुंचने की हिम्मत जुटा सके. □

## चलते-चलते

**पहली बार हवाई सफर करने वाली एक वृद्धा ने जहाज में यह घोषणा सुनी: मैं आपका कप्तान बोल रहा हूं. जहाज का चौथा इंजिन तकनीकी खराबी के कारण बंद कर दिया गया है पर घबराने की कोई बात नहीं है उड़ान तीन इंजनों से भी बदस्तूर जारी रहेगी हम ठीक समय पर लैंड करेंगे. अब कप्तान ने चुटकी ली आप के लिए यह शुभ सूचना है कि जहाज में चार पादरी पहले से मौजूद हैं.**

**घोषणा सुनकर घबड़ाई वृद्धा महिला ने तत्काल विमान परिचारिका को बुलाया और उससे कहने लगी मेहरबानी करके कप्तान से कह दो कि हमें इंजिन तो चारों चाहिए...पादरी तो तीन भी चलेंगे.** □

वीथिका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्म : 13 नवंबर, 1961
आत्मकथ्य : मेरे लिए जिंदगी को जीना उसके हर क्षण को पूरी गहराई के साथ महसूस करना है.
संपर्क : 190 करणपुर, देहरादून (उ.प्र.)

नवीन कुमार नैथानी

# पोखर

**किसन को लगा कि उसके लिए रजा की जिंदगी के उन्हीं सालों की अहमियत थी जिनमें वह खुद उसके साथ मौजूद था. शायद रजा के लिए भी वही साल महत्वपूर्ण थे. चार घंटे तक वे उन्हीं सालों को टटोलते रहे.**

वह फिर से धुंए के बादल के पार चला गया. सत्यवती ने लकड़ी चूल्हे से निकाली. आगे का लंबा हिस्सा लाल खिला हुआ दहक रहा था. उसने उसे लकड़ी से अलग किया. लोटे से हथेली की अंजुरी पर पानी लिया और फिर उस अलग पड़े लाल हिस्से पर छिड़क दिया. छिम्मम्.... एक तेज दबी-सी सरसराहट के साथ हलका धुंआ ऊपर उठा और आहिस्ता से टीन पर बैठ कर घुल गया.

किसन ने बीड़ी दरवाजे से बाहर फेंकी और फिर जोर से खांसा... उसके खांसने की आवाज में एक अजीब तरह का कंपन था जिससे रसोई बुरी तरह कांप गयी. सत्यवती ने सर उठाकर उधर देखा. उस कोने में जंग लगी बाल्टी के नजदीक किसन चुपचाप बैठा बुझी हुई लकड़ी की तरफ देख रहा था. उसकी आंखें थोड़ी बुझी, थोड़ी चमक लिये..,.. कहीं और खोयी हुई-सी लग रही थीं.

"हुंह!" सत्यवती ने हलकी-सी ध्वनि निकाली.

यह एक ध्वनि थी या फिर कोई शब्द था. किसन ने सुना और सत्यवती की तरफ देखा. उसका चेहरा उदासीन था. उसके हाथ चूल्हे से कोयले बाहर निकाल रहे थे. वह थोड़ा आगे सरक आया.

"गाड़ी चली गयी थी." बहुत देर बाद सत्यवती कुछ बोली.

"हां."

"उन्हें जगह मिल गयी थी?"

"हां."

"छोटू हंस रहा था?"

"हां."

"वो उन्हें प्रेशान करेगा."

"बच्चा नहीं है क्या?"

"कै दिन लगेंगे उन्हें पहुंचने में?"

"तीन भी और चार भी. कम अज़ कम तीन दिन."

"नरेन कुछ बोला था?"

"क्या बोलता.... बेचारे बड़ी हड़बड़ाहट में थे. छोटू ने नाक में दम कर दिया!" इस बार किसन ने बड़े हल्के तरीके से कहा और बात को पूर्ण विराम दे दिया. अजीब औरत है! पूछेगी तो पूछती चली जायेगी. आध घंटा हो गया. रोटी के लिए नहीं कहा, पूछा नहीं कि भूख लग रही होगी. बस नरेन कैसा होगा. कैसे जायेंगे. कोई बात है भला... औरत है कि घनचक्कर है.

सत्यवती अपनी ही रौ में बही जा रही थी. वह सिर्फ चूल्हे के नजदीक बैठी भर थी... उसकी मौजूदगी को भूलकर. "क्यूं आग बेकार हो रही है?" वह आवाज में सख्ती लाने की एक नाकामयाब कोशिश कर गया.

"हुंह..." सत्यवती ने फिर एक ध्वनि निकाली. यह ध्वनि थी या फिर कोई शब्द था. वह समझ नहीं पाया. अजीब औरत है. पिछले पांच-छह दिन से एक नयी आदत बना रखी है. जबान जैसे किसी ने सैंत दी है.

"एक हफ्ते की बात थी. रुक जाते तो कौन-सा जुलुम हो जाता." इस बार सत्यवती की आवाज में एक पुराना गीलापन था. किसन ने देखा... आवाज उसकी आंखों को नम करते हुए निकली थी. यह आवाज उसे हमेशा गीला कर देती है. वह खुद गीला हो गया.

"प्रभा की मांजी, अब वो बच्चे थोड़ा ही हैं."

"तुम मुझे टोकते रहते हो!"

"बाबा, जरा अपने भेजे से काम ले."

"हां, हां, मैंने किया क्या है? अपने दीदे फोड़े ना, कौन जनम के कुकरम थे.." अब वह बड़बड़ाने की सीमा के नजदीक आ गयी थी. अजीब ही औरत है. क्या चाहती है.. पता नहीं चलता. हुंह.... कुढ़ कुढ़ कर मरेगी... किसन के भीतर गीली तहें कुडुवी सतहों में उभरने लगीं.

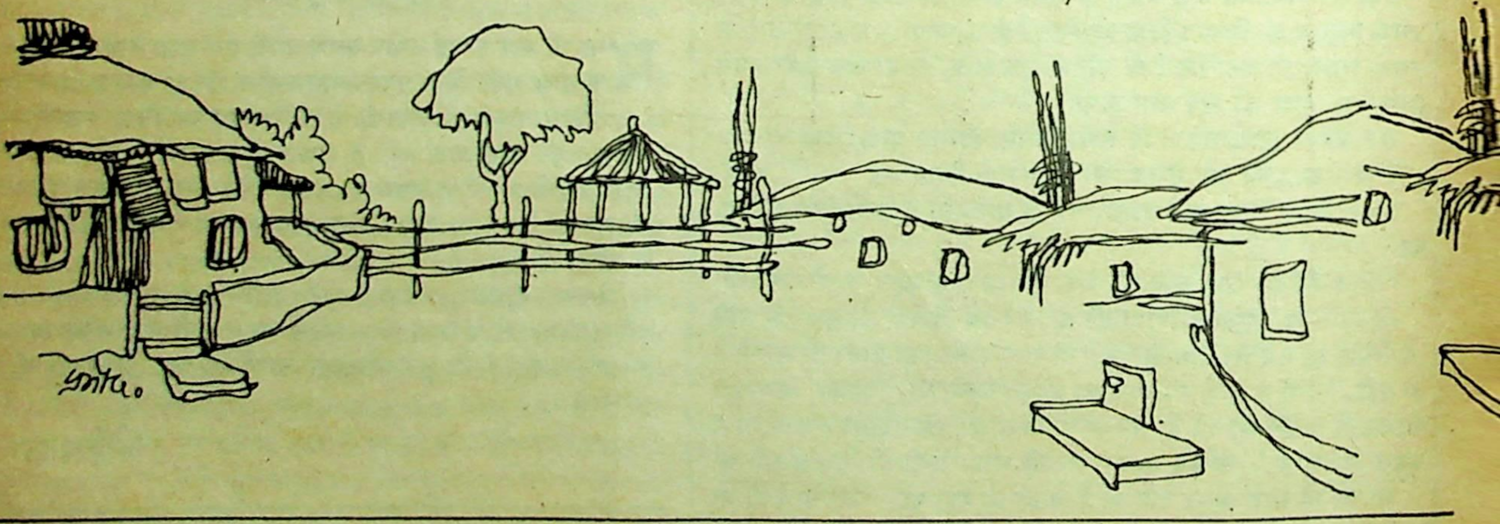

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"देखो, प्रभा की मां, कुकर्म कोई नहीं होते. सब समझने का फेर है."

"हां, हां... मैं हूं ना. मेरा भेजा नहीं है ना... मैं नहीं समझती ना. तुम ही समझदार हो. तीस साल घर के बाहर रहे ना... कौन-सी बड़ी जायदाद खरीद दी.... कौन-सा सुख दे दिया तुमने मुझे."

"तुम सौ जनम में भी सुखी नहीं रह सकतीं."

"बस, तुम हो सुखी, तुम्हारा बेटा है सुखी. पता नी कौन से कुकरम थे... मेरा बेटा ... जैसी-तैसी मां होती तो पांच जूते मार निकालती. मैं तो लालची हूं. नासमझ हूं. पुरानी बुढ़िया हूं. बस तुम हो गये नवेले बुड्ढे."

और अब वह रोने लगी. उसकी आंखों से ढेर सारे आंसू बिना आवाज किये नीचे को लुढ़कने लगे. उसका चेहरा एक ऊबड़-खाबड़ घाटी बन गया जिस पर यहां-वहां कुछ बरसाती नाले उभर आये... वह अब गिलास पर पड़ी घंटा भर पुरानी चाय के घूंट भरने लगी. जैसे-जैसे आंसू उसकी आंखों से निकलते वह फिर-फिर चाय के घूंट ले उन्हें हलक से नीचे उतार लेती. "तुम फिर हमेशा वाला राग छेड़ती हो. आज बच्चे गये तो रोने लगी." फिर किसन उठ गया. इस औरत का यह रोज का चक्कर है.. पता नहीं कौन-सी साईत पैदा हुई. शक था ऐसा जरूर होगा.. किसन आहिस्ता से चलता रसोई से बाहर निकल गया.

बाहर उनका वह पुराना मकान अपने विस्तार को समेटने की बेइंतिहा कोशिश में भी सफल नहीं हुआ. बड़ा और लंबा चौक घास के बिखरे हुए तिनकों की उधार ली मेहरबानी से भी भर नहीं सका. भैंस खूंटे पर बंधी सींग दीवार पर टकरा रही थी. खट्...खट्... खट्...वह सींग टकराये ही जा रही थी. उसकी आवाज मकान के भीतर और बाहर अब अकेली आवाज रह गयी, सत्यवती बिना आवाज किये रोने वाली औरत है. खट् खटा खट्... खट् खटा खट्... भैंस अब तेजी से सिर टकरा रही थी. "चोप् सूअर की बच्ची!" किसन की सख्त और खुरदुरी आवाज निकली. भैंस सहमकर चुप हो गयी. उसने पूंछ ऊपर उठायी और गोबर कर दिया.

"चुप, साली... हरामजादी... मैं साफ कर-करके मर जाऊं तू हगती रहेगी. घूटने को मिलरा ना... साली तेरी खुराक बंद!" वह फिर चिल्लाया और भैंस की तरफ बढ़ा. भैंस सहमकर थोड़ा हटी. "ले साल हग!" उसने एक लात भैंस को जमायी. भैंस अपनी हद में बंधी-बंधी दूसरे कोने में चली गयी. फिर वह नीचे बैठ गया और भैंस का गोबर उठाने लगा...

रसोई से बरतनों के रगड़ने की आवाज आने लगी. एक गिलास शायद जोर से जमीन पर गिरा... वह फिर भीतर चला गया. बरामदा-या बैठक-एक तख्त, एक मेज, दो लोहे की पुरानी कुर्सियां लिये उसका इंतजार कर रहा था. दीवारों पर सफेद पुताई के नीचे पीली मट्टी की एक हलकी और धुंधलायी पट्टी पूरे कमरे की लंबाई को अपनी चौहद में बांध रही थी. दीवार पर एक दस साल पुराना भगवान शंकर का कलैंडर, दो पिछले साल वाले चुन्नू-मुन्नू के कलैंडर और एक नया कलैंडर जो नरेन लाया था, टंगे थे. वह तख्त पर लेट गया और बीड़ी को टटोलने के अंदाज में कमीज की जेब पर हाथ डाला... वहां बीड़ी का बंडल था... एक माचिस थी... और उसे किसी ठंडी चीज की छुअन महसूस हुई. वह बैठ गया. उसकी अंगुलियां फिर से जेब के भीतर गयीं. वह गोल चीज थी. उसकी गोलाई के किनारे एक खास खुरदरापन लिये थे—वैसा, जैसा पचास पैसे का सिक्का हुआ करता है. उसने उसे बाहर निकाल लिया...

तांबे की गोल बटिया सत्यवती को हमेशा से पसंद रही-वह इसे सूरज भगवान मानती है. पूजा की जगह से छोटू इसे उठा लाया था. बहू ने उसे डांटा...वह रो पड़ा. उसे चुप कराते-कराते न जाने कितनी देर हो गयी थी... वे लोग गाड़ी पर पहुंचे तो गाड़ी छूटने को थी. उसने यह सूरज भगवान अपनी जेब में रख लिया था.. जाते समय छोटू को देने के लिए...

उसने बीड़ी जला ली. बीड़ी का धुआं अपने भीतर उंडेलते-उंडेलते वह बस की याद करने लगा... वे दोनों-नरेन और बहू-छोटू को लिये परेशान थे. नरेन सीट पर से समान ठीक करने में व्यस्त था और बहू छोटू को लिये बदहवास-सी सीट पर बैठने और उठने की कोशिश में लगी थी. बस में और लोग शायद उसे ही देख रहे थे. उसने दो बार उनके पास तक जाने की कोशिश की थी... फिर उनकी बदहवासी देख रुक गया था. सूरज भगवान उसकी जेब में पड़े थे-छोटू अपनी मां की परेशान गोद में अचानक सहम कर चुप हो गया था. कंडेक्टर ने सीटी दे दी थी. ड्राइवर ने इंजन चालू कर दिया था.. उसने उन तक पहुंचने की एक कोशिश और की थी.. जाते-जाते बेटे और बहू उसे सेवा लगाना भूल गये थे... लेकिन वह तो छोटू को देखना चाहता था.. नरेन अभी तक समान ही ठीक कर रहा था. "जल्दी-जल्दी उतरो..." पता नहीं कौन बोला था. उसे लगा जैसे यह नरेन की आवाज थी. जब तक वह नीचे उतरा बस आहिस्ता-आहिस्ता आगे को सरक गयी थी... फिर रुक गयी थी. वह बस के किनारों की खिड़कियों तक पहुंचा... भीतर से छोटू की एक झलक दिखायी दी. बहू की झलक भी मिली. फिर बस तेजी से आगे चल दी. वहीं खड़े-खड़े उसने देखा-नरेन शायद अपनी सीट पर बैठ रहा था...

...खट्-खट्-खट्. भैंस फिर से सिर दीवार पर टकराने लगी थी. उसने बीड़ी नीचे फेंक दी. बरामदे से बाहर आया. भीतर से ढेर सारा बलगम बाहर उगल दिया. एक नजर भैंस पर डाली और फिर भीतर चला गया. एक पल बीता, दूसरा पल भी बीत गया, तीसरा पल आया कि नहीं, उसे होश भी न रही. वह उसी तरह तख्त के नजदीक खड़ा रहा. बेमतलब सा.. पता नहीं अब तक कितने पल बीत चले थे.

"पंडतजी..." उसने बाहर से कोई आवाज सुनी. वह जैसे सोते से जागा. मगर फिर भी अपनी जगह से हिला नहीं.

"हां जी... पंडतजी... कौन से विलायत में हैं आप?" अब वह चेता. एकाएक तेजी से आगे बढ़ा. रुका.. अपनी कमीज की तरफ देखा...

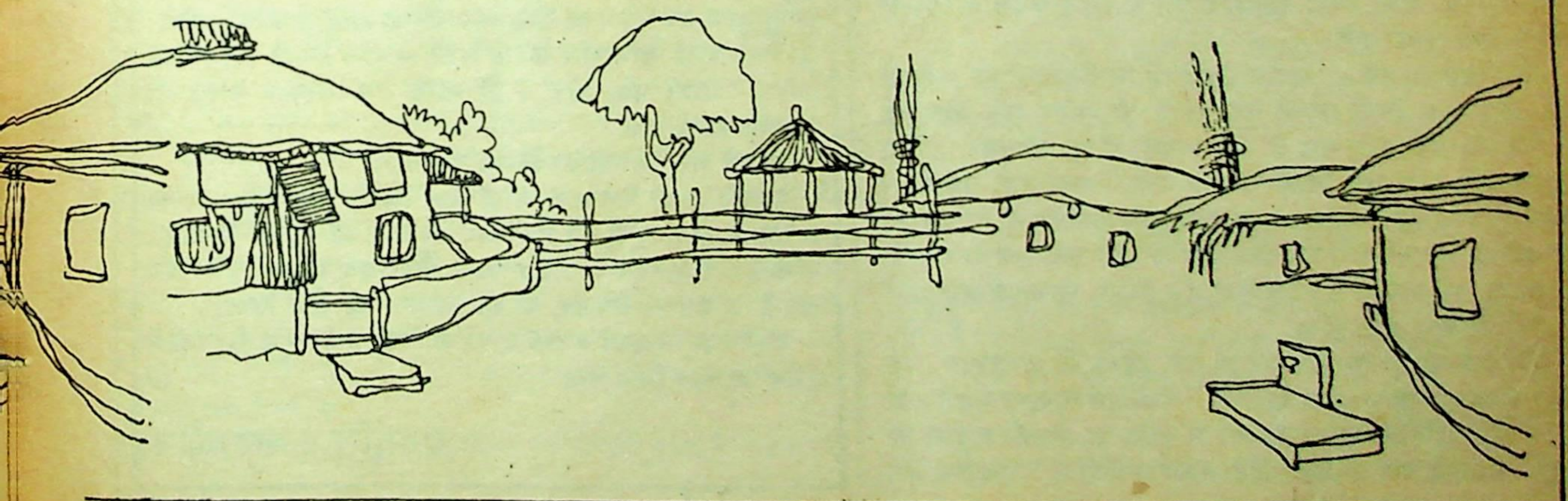

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तनिक संतुष्ट हुआ, फिर आगे बढ़ गया. आगे-जहां दरवाजा था, एक अपरिचित चेहरा बड़ी शालीनता से खड़ा मुस्करा रहा था. अपने चेहरे पर एक तरह की खिसियाहट का-सा भाव लिये वह मुस्कराया, दरवाजे पर इस तरह साधिकार खड़े मुसकराते आदमी को देखकर वह थोड़ा हैरान हुआ, थोड़ा-सा परेशान भी हुआ. परेशान होने जैसी कोई बात वहां नहीं थी-अगले ही पल उसने महसूस किया. वह एक बूढ़ा आदमी था. उसके शहरी कपड़ों पर धूल जमी हुई थी.

''कहिये पंडतजी...हैरान हो गये. हं-हं-हं.'' वह एक धीर-गंभीर हंसी हंसा. उसने प्रतीक्षा की कि हंसी थमे. हंसी रुकी और वह दरवाजे के भीतर चला आया ''बयावां में भी मिल लेंगे. सनम जो तुम वहां होगे.'' वह फिर उसी गूंजदार आवाज में बोला और अपना हाथ उसकी तरफ बढ़ा दिया. पता नहीं पल का कौन सौवां हिस्सा था जब वह अचानक उस बूढ़े को पहचान गया. ''सच रजा...'' उसके मुंह से महज ये शब्द ही निकल पाये. बस... उसने अपने हाथ में उसका सख्त मजबूत हाथ महसूस किया. उसे अपने बहुत नजदीक महसूस किया. उसका चेहरा अपनी आंखों से इंचों के फासले पर टिकता हुआ देखा. उसके चौड़े कंधों को अपने दोनों हाथों के गिर्द महसूसा. उसके समूचे व्यक्तित्व को एकाएक अपने इर्द-गिर्द लिपटा हुआ पाया.

जब तलक यह गरमजोशी ताप के इधर से उधर चले जाने तक ठंडी पड़ी, वह सालों के पार गया...ठहरा रहा... फिर एकाएक लौट आया ''आओ...रजा, आओ. हं..हं. बैठो. तुम जैसे धरती फोड़कर निकल आये.''

उसने लोहे की कुरसी अपनी जगह से थोड़ा हटायी, हाथ से उस पर जमी काल्पनिक धूल झाड़ी और फिर से उसे अपनी जगह सरका दिया. एक नरम आंच-सी आंखें लिये उसने रजा की तरफ देखा, बैठने को फिर कहा. रजा दूसरी कुरसी पर बैठ गया. वह वापस चलकर तख्त पर आ बैठा. एकाएक उसने कमरे में एक लंबी खामोशी को रेंगते हुए महसूस किया. रजा की आंखें नम हो आयीं. वह एक्टक फ्रेम में जड़ी प्रेमचंद की तस्वीर की तरफ आंखें टिकाये था. उसके और तस्वीर के बीच सहसा कोई शून्य पैदा हो गया लगता था.

उसने सिर्फ रजा के बोलने का इंतजार किया. उसे लगा कितना अच्छा होता अगर यह रजा महसूस करता कि यहां मैं इस खामोशी को कितनी तकलीफ के साथ झेल रहा हूं.... एकाएक रजा ने सिर हिलाया, एक पल दोनों की आंखें मिलीं, रजा फिर नीचे देखने लगा. वह शायद कुछ कहना चाह रहा था मगर समझ नहीं पा रहा था कि क्या कहें. एक क्षण उसके जहन में कौंधा कि रजा की मुश्किल सिर्फ उसे हल करनी चाहिए. उसे ही कुछ कहना चाहिए. आखिर रजा तीस साल बाद इस घर में आया था और तीस साल बाद ही वे मिल रहे थे. मगर अगले ही क्षण उसे लगा कि वह भी उसी मुश्किल से घिरा है जिस मुश्किल से रजा घिरा हुआ है.

बाहर भैंस फिर जंजीर हिला रही थी. खूंटे से सींग ठकरा रही थी. वे आवाजें उनके बीच पसरी खामोशी पर से अपने कदम हलका-सा धंसाती आगे बढ़ती रहीं.

''तीस साल हो गये...'' आखिर खामोशी को गलना ही था. रजा की आंखें अभी तक किसी शून्य पर अटकी थीं. मगर होंठ बोल रहे थे....''मुझे अच्छी तरह याद है. सन् बावन, चौदह अक्तूबर.... तीस साल दो दिन बाद मुझे किसी ने रजा कहा.'' रजा बड़ी उदासी से मुसकराया.अचानक उसे खयाल आया रजा को यह नाम मां ने दिया था. औरों के लिए वह रजनीश चंद्र ढौंडियाल था. उसे लगा अब फिर चुप्पी बढ़ जायेगी. इसे अब टूटना ही चाहिए. हे भगवान, सत्यवती जरा इधर आ जाती तो बड़ा भला होता.

''मुझे पता था कि तुम रिटायर हो गये. शायद वो दुर्गाप्रसाद... वो तुम्हारे फूफा का लड़का आया था इधर.'' रजा अब सामान्य लगने लगा था... ''हां... वो तो कोई सन् बहत्तर में आया था. उसकी लड़की का रिश्ता तय किया गया था मैंने... यहीं नजदीक सौरी में.'' एकाएक उसे खुशी हुई. वह अब बोल सकता था. रजा के साथ बातें करना किसी जमाने में बड़ी खुशगवार चीज हुआ करता था.

''मुझे पता है. वह लड़की बहुगुणाओं में ब्याही. उसी से पता चला था मुझे कि तुम अब घर ही हो. और कैसा गुजरता है वक्त..''

''सुनो!'' उसने जोर से आवाज लगायी. सत्यवती की तरफ.... ''हलो,'' उसने इस बार दूसरा सुर छोड़ा, ''हलौ जी....''

रजा धीरे से मुसकराया. सत्यवती धड़धड़ाती हुई चली आयी. रजा को देखा तो ठिठकी रह गयी. रजा उठा. उसके पैर छूने को झुका. सत्यवती थोड़ा पीछे हटी. रजा हंसा. धीर-गंभीर हंसी... ठहरे जल पर टकराती हुई. ''भाभी जी... हं हं हं... पहचाना नहीं.''

''ये रजा है. मेरा भाई. अजमेर वाली मौसी का लड़का... याद है कुछ?'' उसने सत्यवती की मदद करनी चाही.

''क्या बच्चों वाली बात कर गये पंडतजी.. भला याद कहां होगा. हमने तो भाभी को देखा था, बारात में जब गये थे.'' सत्यवती बहोत हलका-सा मुसकरायी... फिर वापस रसोई में चल दी. बरामदे में फिर दोनों रह गये. मगर अब खामोशी वहां टिक न सकी. बातों का सैलाब भीतर ही भीतर कहीं उमड़ रहा था और किसी पल अचानक टूट पड़ा...

## टेलीफोन की अर्जी

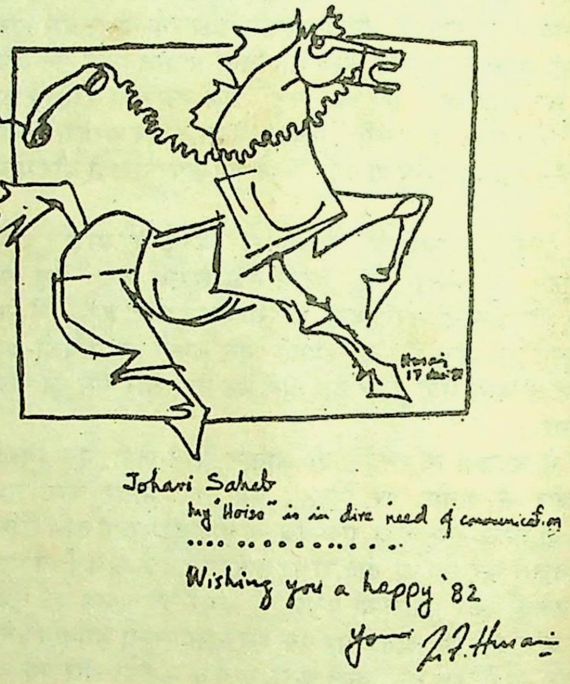


चित्रकार हुसैन को टेलीफोन पाने के लिए न फार्म में लंबी-चौड़ी खानापूर्ति करनी पड़ी, न आठ हजार रुपये जमा कराने पड़े, और न ही सालों तक इंतजार करने की जहमत सहनी पड़ी.

उनकी अर्जी अपनी ही किस्म की थी.

उन्होंने अपने मनपसंद घोड़ों का रेखाचित्र बनाया, उसकी लगाम के साथ जुड़ी हुई टेलीफोन की तार और चोंगा दिखाया, नीचे अपनी जरूरत का जिक्र किया और चित्र बंबई में टेलीफोन कंपनी के जनरल मैनेजर, पी.सी. जौहरी को भेज दिया.

यह चित्रनुमा अर्जी अपना करिश्मा दिखा गयी. कुछ ही दिनों में हुसैन को फोन मिल गया. □

प्रस्तुति : सुखबीर



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई चार घंटे रजा घर में रुका था. रजा का उनकी जिंदगी के बीच एकाएक आना और फिर उसी तरह चला जाना पता नहीं. आने वाले दिनों के लिए कोई अहमियत रख सकेगा भी कि नहीं. एकाएक उसे लगा, सारा दिन ही अहमियत भरा था. रिटायर हो जाने के बाद उसकी जिंदगी सुबह चार बजे उठना थी. जिंदगी के पल रसोई पर आग की आंच से निकलता धुआं था. जिंदगी के घंटे भैंस पर घास डालते हाथ थे. जिंदगी के दिन सत्यवती के नजदीक खड़े-खड़े उसकी बड़बड़ाहट झेलते कुछ अनकहे शब्द थे, महीने पेंशन के लिए शहर में बैंक तक के सफर के दोहराव थे. जिंदगी के साल बरसात में छत से टपकती बूंदों की याद थे या फिर बेटे और बहू का चले आने की खुशी भरी यादों का दोहराना थे या फिर आपसी बाले अमीन के चपरासी का आना थे. जिंदगी की घटना गांव में किसी के यहां ब्याह होना थी. जिंदगी की दुर्घटना किसी बूढ़े का मर जाना था.

और अब रजा को गांव के बाहर छोड़कर वापस लौटते वह समझ नहीं पा रहा था कि रजा का आना कोई घटना थी... या जिंदगी के तीस साल थे. कहीं गहरे वह आहत हुआ था. अपनी कायरता की चोट से. तीस साल बाद रजा आया था. तीस साल तक उसने रजा की कोई खबर नहीं ली थी. रजा जिसे मां बहुत चाहती थी, इस तरह उनके बीच से अलग हो जायेगा. मां ने तो सोचा भी नहीं होगा. मां के लिए रजा मौसी की याद था. उसे अच्छी तरह याद है जब वो छोटा था, मां उस रोज दीवार पर सर पटक-पटककर रोयी थी. पास ही रतन चाचा चुपचाप बैठा था. अब न रतन चाचा रहा, न मां रही... और मैं खुद कितने बरस और चलूंगा. एकाएक उसने ऊपर देखा-आसमान में-वहां चीलें थीं, बहुत ऊंचाई पर उड़ती हुई.

रजा को मां अक्सर बुलाती थी. तब वह बड़ा बातूनी था. सालों के लंबे वक्फे ने रजा के बीच से कुछ नहीं बदला. उसने अपने आपको गुनहगार समझा जब उसे पता चला कि रजा ने शादी नहीं की. वह रजा आज भी वैसा ही था. हंसमुख मगर खोया-सा... एकाएक भावुक हो जाने वाला. और तीस साल... मां को गुजरे बत्तीस साल हो गये. वह खुद हैरान हुआ. उसे सालों की गिनती याद क्यों हो आयी. क्या रजा का आना सालों का गिनती की तरह टकरा जाना तो नहीं है? वह खड़ा रहा... बुत की तरह. "जै राम पंडतजी!" सामने से सिगवारु चला आ रहा था. उसने सिर को हलका-सा झटका दिया, हाथ उठाकर सिगवारु को जबाव दिया और आगे बढ़ गया.

किसना ने पंडतजी का सफर तय करते करते वह खुद कितना बदल गया? रजा का आना शायद इस बात की तरफ ध्यान दिलाना था, उसे लगा. रजा को याद था कि दुर्गाप्रसाद की शादी में उसने सत्तर पूड़ियां खायी थीं, कि अपने जमाने में वह बाल्टी मुंह से लगाकर दूध पी जाता था, कि वह तेज पिलायी लाठी पास रखता था, कि एक दफा वह रजा के साथ ऊंटनी का दूध पीने गया था, कि उन्होंने टोपी पर ऊंटनी का दूध निकाला था. सड़क पर चलते-चलते उसने रजा से कहना भी चाहा था कि रजा, अच्छा हुआ तुम आ गये, मुझे जैसे जिंदगी पिछले तीस सालों को छोड़कर फिर से हासिल हो गयी है. उसने इन शब्दों को दो तीन बार दोहराया था. मगर गांव के बाहर रजा को विदा देते उसने सिर्फ इतना ही कहा-"फिर जल्दी आना," रजा ने उसकी तरफ मुसकराकर देखा था.

"पंडतजी..... पिछले तीस साल से मैं किसी जगह दुबारा नहीं गया, बस, एक तमन्ना थी, तुम्हें देख लिया...." वह फिर उदासी से मुसकराया था. जाने से पहले वे फिर गले मिले थे.

"भाभी जितना तुम जानती हो, किसन भाई को... उससे ज्यादा मैं जानता हूं, अब ये वो किसन भाई नहीं रहा... पंडतजी अब तो नहीं करते गुस्सा कभी?" रजा खाते समय कह रहा था. उसे रजा के ये शब्द पता नहीं क्यों अच्छे नहीं लगे थे... शायद इसलिए कि यह सत्यवती को अच्छा नहीं लगा था.

अब एकाएक उसे खयाल आया कि वह कितना मूरख है. सड़क पर चलते-चलते उसकी इच्छा अपने सर पर से बाल नोच लेने की हुई. उसके जी ने चाहा कि उसे मौत क्यों नहीं आ जाती. रजा पूरे चार घंटे पर रुका, न उसने और न सत्यवती ने यह पूछा कि पिछले तीस वर्ष रजा क्या करता रहा... पता नहीं किस बात पर रजा ने सिर्फ इतना कहा था कि उसने शादी नहीं की. बस रजा ने अभी तो कोई ज्यादा पूछताछ नहीं की थी कि इन तीस सालों में मैं क्या करता रहा... उसने नरेन के बारे में नहीं पूछा. नरेन तब पैदा नहीं हुआ था.

किसन को लगा कि उसके लिये रजा की जिंदगी के उन्हीं सालों की अहमियत थी जिनमें वह खुद उसके साथ मौजूद था...शायद रजा के लिए भी वही साल महत्वपूर्ण थे. चार घंटे तक वे इन्हीं सालों को टटोलते रहे थे और सत्यवती के लिये ये साल निरर्थक थे.

एकाएक उसका मन कड़वा हो गया. पता नहीं क्यों... सत्यवती का ध्यान आते ही उसे उसका बड़बड़ाना याद आया. उसने कदम तेज किए और घर की ओर बढ़ने लगा.

घर की तरफ बढ़ते उसे ध्यान आया कि दिन अब ढलने लगा है. भैंस के लिए घास काटकर लाना है. उससे तो कुछ होगा नहीं. औरत है कि घनचक्कर है. जरूर भैंस भूखी होगी. तेज-तेज कदम रखते हुए उसने अहाते में कदम रखा. उसकी नजर सीधे भैंस की तरफ बढ़ी. भैंस ने ढेर सारा गोबर अपने चारों तरफ फैला रखा था और उसके बीच बैठ कर आराम से जुगाली कर रही थी....

वह भैंस के नजदीक गया और उसे खड़ा करने को आहिस्ता से टहोका. भैंस बेअसर बैठी रही. उसने अब जोर लगाया. भैंस फिर भी बैठी रही "साली.... हराम की बच्ची!" इस बार वह चिल्लाया. भैंस ने जुगाली करना बंद कर दिया मगर उठी नहीं. "ले... उल्लू की पट्ठी!" उसने एक लात भैंस को लगायी. भैंस हड़बड़ाकर उठ खड़ी हुई. "घुटा-घुटा के मर गया. साली... हगती रहेगी...मर! तेरा खाना बंद!" वह बड़बड़ाता जा रहा था और गोबर उठाता जा रहा था.

"घर में आये नहीं, फिर गालियां निकालने लगे." सत्यवती न जाने कब भीतर से बाहर निकल आयी.

"प्रभा के पिताजी, तुम्हें सौ बार टोका, पशु पे लात ना उठाओ."

"तो ससुरी तेरे पे उठाऊं!" किसन दहाड़ा.

"हां...हां...यही तो नसीब है मेरा! तुम्हें पका के खिलाऊं.. तुम्हारे बेटे-बहू आयें..उन्हें पका के खिलाऊं.... तुम्हारे मेहमान आयें उन्हें पका के खिलाऊं... मैं हूं चुल्हे में आंख फोड़ने वाली... मेरे तो मां-बाप थे जिन्होंने..."

"चोप्, सुअर की बच्ची!"

"हां...हां.. गाली दे दो. सुख तो दिया नहीं...बस गाली दो. हां. हां मुझे गाली पहनाओ... गाली ओढ़ाओ."

किसन ने गोबर का टोकरा उठाया और बाहर डालने चला गया. जब वह वापस लौटा सत्यवती भीतर रसोई में जा चुकी थी. वह बरामदे में गया. नरेन के दिए हंटिंग बूट पैरों में डाले. रसोई के बाहर ताक पर रखी पाठल उठायी और बाहर निकल आया.

"सुनो, मैंने सत्तू से कहा था." सत्यवती की आवाज सुनकर वह ठिठका, "वो भीमल ढा के ले आवेगा." उसने हलके से सांस खींची,वापस आंगन में लौटा. रसोई की तरफ बढ़ा और पाठल वापस ताक पर रख दी... □

## चलते-चलते

हॉलीवुड के एक रेस्तरां के दरवाज़े पर लिखा हुआ है—'मेहरबानी करके हमारे बेटों का अपमान न करें. ग्राहक तो हमें और भी मिल जाएंगे.'

-भेरूंलाल गर्ग



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृतियां : 'शापित लोक', 'जिलाधीश की वापसी', 'ऊंचाइयों का ईश्वर', 'राह के पत्थर', 'एहसासों की शाम'
संप्रति : निदेशक, राजभाषा विभाग पटना.

भगवतीशरण मिश्र

# पवन पुत्र

धर्म का आचरण लोगों को लज्जाजनक लगता है. पुराणपंथी कहे जाते हैं धर्माचारी. मुझे हंसी आती है. धर्म ही तो मनुष्य की सारी कामनाओं की पूर्ति का एकमात्र साधन है और अंततः वही उसे ईश्वर-सान्निध्य भी प्रदान कराता है. मैं नहीं कहता कि आप अमुक धर्म मानें अमुक नहीं. कि राम ही एक मात्र ईश्वर है और कृष्ण, क्राइस्ट और बुद्ध, महावीर व्यर्थ की बातें हैं. यों मेरा तुलसी कुछ ज्यादा ही कट्टर था और उसने वृंदावन में कृष्ण-मूर्ति के सामने टेक ही लगा दी कि जब तक धनुष-बाण नहीं धारण करो मेरा सिर नहीं झुकने का------

कहां कहौ छवि आपकी,
भले बने हो नाथ।
तुलसी माथा तब नवे,
धनुष-बाण लो हाथ।।

कृष्ण को झुकना ही पड़ा था तुलसी के सामने और मुरली छोड़ धनुष-बाण को हाथ में लेना पड़ा था. यों मैं इसे बुरा भी नहीं मानता. आपकी आस्था इतनी पक गई हो कि सर्वत्र अपने इष्टदेव के ही दर्शन होने लगें तो साधना का इससे अच्छा उदाहरण क्या हो सकता है?

तो मैं कह रहा था खूब है आपकी समझ. कुछ सरकारें धर्म-निरपेक्ष हो गयीं तो बहुतों ने मंदिर--मस्जिद जाना ही छोड़ दिया. खूब लगाया आपने धर्म-निरपेक्षता का अर्थ. धर्म-निरपेक्ष हो जाना तो अपने में बड़ी अच्छी बात है. यह तो सभी धर्मों को समान आदर देने का बड़ा अच्छा आधार है. किसी के धर्म से भी घृणा नहीं करना, सभी धर्मों का सम्मान करना यही न है धर्म-निरपेक्षता? कि नहीं? पर जिसको धर्म के नाम से ही विरक्ति हो उसके लिए बड़ी अच्छी ढाल है आपकी यह निरपेक्षता. वह निरपेक्ष हो गया पूरी तरह---किसी धर्म से उसे कोई लेना-देना नहीं. फिर ईश्वर का भी ऐसे व्यक्ति से कोई लेना-देना नहीं रहता और एक दिन मूल-कटे वृक्ष की तरह वह कहीं का नहीं रहता. उसका अधःपतन स्वाभाविक है.

पर मेरे दुःख का सबसे बड़ा कारण है लोगों में धार्मिक सहिष्णुता का अभाव. ऐसे तो लोग धर्म के नाम पर नाक-भौं सिकोड़ेंगे पर जब दो धर्म-संप्रदायों के मध्य टकराव की स्थिति आयेगी तो वे अपना रक्त बहाने सबसे आगे आ जायेंगे. रोज ही देखता हूं ऐसी घटनाएं और रोज ही सिर-पीटता हूं आप सबों की नादानी पर. अयोध्या तो मेरा मुख्यालय है न? यहीं की हनुमान-गढ़ी में तो लोग मेरा मुख्य आवास मानते हैं. इस हनुमान गढ़ी के कंगूरे से मैंने क्या-क्या नहीं देखा? धर्म के नाम पर लोगों को कटते-मरते भी देखा और कभी विभिन्न धर्मावलंबियों को एक दूसरे के लिए महान् त्याग करते भी पाया. हिंदुओं को मस्जिदें और मुसलमानों को मंदिर बनाते भी देखा. पहले दूसरी बात को ही लेता हूं. अपने इस हनुमान गढ़ से ही आरंभ करता हूं.

यदि कभी आपने अयोध्या आने का कष्ट किया हो और मेरे मंदिर तक पहुंच पाये हों तो आप इसकी विशालता और विचित्रता से अवश्य ही प्रभावित हुए होंगे. हनुमान-गढ़ी इसका नाम यों ही नहीं पड़ा. किसी विशाल गढ़, किसी किले से कम नहीं लगता यह स्थान. इसकी स्थापत्य-कला दिल्ली और आगरे के लाल किले की याद दिलाती है. चारों ओर उठी ऊंची चहारदीवारी के ऊपर से कृत्रिम तोपें भी झांकती हैं और किले-बंदी के अंदर के आकार ग्रहण करता धीरे-धीरे ऊपर आता देवालय किसी शांत सरोवर में शनैः-शनैः प्रस्फुटित हो रहे कमल-कुसुम की छवि प्रस्तुत करता है. नहीं, कमल का आकार नहीं है मंदिर का पर एक समग्र प्रभाव जो पड़ता है मन पर, उसी के निरूपण का प्रयास कर रहा हूं. सीढ़ियों की एक लंबी पंक्ति बिछी है जो बाजार के किनारे से आरंभ होकर ऊंची, और ऊंची चढ़ती विशाल प्रवेश-द्वार तक पहुंचती है. कई तो इन ऊर्ध्वगामी सोपान-पंक्तियों को देखकर पहले ही हिम्मत हार देते हैं और मुझे एक मानसिक नमस्कार ही निवेदित कर आगे बढ़ जाते हैं. सच, बड़ी सहज नहीं है चढ़ाई, चाहे वह इस मंदिर की हो या जीवन की. ऊंचाईयों के अवलोकन-मात्र से जिनका सिर चकराता है वे इन पर अपने को स्थापित करने में सफल भी कैसे हो सकते हैं?

**यदि कभी आपने अयोध्या आने का कष्ट किया हो और मेरे मंदिर तक पहुंच पाये हों तो आप इसकी विशालता और विचित्रता से अवश्य ही प्रभावित हुए होंगे. हनुमान-गढ़ी इसका नाम यों ही नहीं पड़ा...** **हनुमान के जीवन पर आधारित आत्मकथात्मक उपन्यास का एक अंश...**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो कई और बाधाएं भी हैं मेरे तक पहुचाने वाली इन सीढ़ियों को पार करने में. आपके मन ने साहस बटोर लिया और पैरों ने साथ दे दिया तब भी इस मंदिर के मेरे ही नामधारी रखवारे आपको बड़ी आसानी से मुझ तक कहां पहुंचने देंगे! मेरे नामधारी इसलिए कहा कि ये भी कपि ही हैं जो सीढ़ियों के आर-पार के मुंडेरों और दीवारों पर घात लगाए जमे रहते हैं. इनका ध्यान आपके हाथों में पड़े मिष्ठान-पात्र पर होता है और आप इनकी दुरभिसंधि से सर्वथा अनभिज्ञ सीढ़ियों की दो-चार दस पंक्तियां पार नहीं कर पाते हैं कि ये कई ओर से आप पर इस तरह टूटते हैं कि आप किं-कर्त्तव्य-विमूढ़, इनके मुंह ताकने लगते हैं और ये आपके हाथ की मिठाई को झटक अपने उदर के हवाले करते कंगूरों पर जा चढ़ते हैं. इसके पहले कि आप समझें कि आप के साथ क्या घटित हो गया, आपकी बगल का आदमी आपको अपने कर्त्तव्य की याद दिलाने सामने आ जाता है—"अब जाइये दूसरा 'दोना' लाइये. आपको पता नहीं केसरी नंदन के भोग लगाने के पूर्व इनके ये स्वजाति वर्ग मिठाइयों की स्वाद-परीक्षा अपना दायित्व समझते हैं. मिठाइयां इन्हें भा गयीं. अच्छी हैं. जाइये, और लाइये तथा अब की बार हाथ में एक छड़ी भी लेना न भूलिये. वहां दुकान पर मिल जायेगी. नहीं, मारने के लिए नहीं, केवल डराने के लिए. यहां अहिंसा परमो धर्मः का सिद्धांत पूरी तरह चलता है वर्ना सीढ़ियों पर वानरों की यह वाहिनी कैसे पलती-पुसती रहती?"

भाषण तो आपने अच्छा सुन लिया पर मैं बताऊं अहिंसा परमो धर्मः कभी अयोध्या का मूल मंत्र रहा होगा अब नहीं है. जब मैं अहिंसा को यहां का मूल-मंत्र कहता हूं तो आप अन्यथा नहीं लें और राम-रावण की कहानी अथवा ताड़का, खर-दूषण और मारीच या अन्य असंख्य राक्षसों के बध की याद आप मुझे नहीं दिलाएं. दुष्टों की हिंसा भी अहिंसा की श्रेणी में ही आती है क्योंकि एक की हिंसा से शत-सहस्र की हिंसा रुकती है. खैर मैं तो कह रहा था, अयोध्या में अहिंसा का राज्य अब रहा नहीं! कभी था और तब वानरों के झुंड-के-झुंड यहां भी गलियों में निर्भीक विचरते थे. मंदिरों पर किलकारियां मारते और अटारियों पर उछलते-कूदते एक गृह से दूसरे गृह तक निर्विरोध घूमते-खेलते-कूदते थे. आज भी बहुत-से पुराने मकानों के दरवाजों-खिड़कियों पर मढ़ी लोहे की जालियां वानरों की अधिकता की सूचक हैं. पर अब ये जालियां बेकार हैं. बंदर अब भी हैं अयोध्या में पर गिनती के. इनकी रक्षा के लिए अब किला-बंदी की आवश्यकता नहीं------जाली और जाल की आवश्यकता नहीं.

जाल में ही फंसा लिए गये यहां के निरीह वानर. क्या समझे आप? फंसा लिए गये और मनमानी कीमतों पर झोंक दिए गये समुद्र-पार के अस्पतालों और प्रयोगशालाओं में जहां परीक्षण-प्रयोग के बहाने इन्हें भीषण शारीरिक यंत्रणा और अंततः अप्राकृतिक और असामयिक मृत्यु का सामना करना पड़ा. उजड़ गयी बंदरों की मंडली अयोध्या से. जो कुछ रह गयी है वह पूर्व की छाया मात्र है-----दो--चार--दस दर्जन लंगड़ाते भूखे-मरते कपि. कहां हैं उन्मुक्त शाखामृगों के वे झुंड के झुंड जो इस नगरी की नैसर्गिक शोभा में चार चांद लगाते थे?

नहीं, मेरा दर्द यों ही नहीं है? हनुमान गढ़ी के किले से सटा ही है एक इमली-वन. 'है' कहना अब व्यर्थ है 'था' कहना ही ज्यादा उचित. अब भी इमली के कुछ वृक्ष हैं---बूढ़े, जर्जर. कुछ कमर से टूटे तो कुछ जड़ से खोखले. जमीन ऊबड़-खाबड़; गंदगी और घास से भरी. कभी यह हरा-भरा था पूरी तरह. दर्शनीय देह-यष्टि के बंदरों का बास था इस वन की डाली-डाली पर. लोग भीगे चनों की डालियां भर-भर इस बाग में आते. कपियों के झुंड-के-झुंड उनके समक्ष जम जाते. उनके हाथों से छीन-छीन चने चबाते. कोई कंधे पर उछल आता, कोई कमर पर. नहीं, किसी से किसी को भय नहीं था तब. न नर को वानर से न वानर को नर से. पारस्परिक सद्भाव और विश्वास का वातावरण व्याप्त था सर्वत्र. और जाल बिछ गये इस इमली-वन में भी, वानरों की संख्या क्षीण हो चली. धीरे-धीरे प्रायः लुप्त हो गयी. वन के उन्मुक्त वानर शाखा से शाखा को उछलने, कूदने-फांदने और प्रकृति के अपार प्रेम में पलने वाले शाखामृग पिंजरों में बंद हो, एक-दूसरे पर गिरते-पड़ते, नोंचते-खसोटते, क्षुआ और पिपासा की अग्नि में जलते चल पड़े हजारों मीलों की यात्रा पर. नरों की धन-लिप्सा की आग में स्वाहा होने.

अब भी कुछेक बंदर हैं इस इमली-वन में. पर अब कोई किसी के हाथ के चने नहीं चुनता. न किसी नर में हिम्मत है तलहथी पसारने की न किसी वानर में साहस है पास फटकने का. पारस्परिक प्रेम और विश्वास छीन लिया है आपसी भय, अविश्वास और घृणा ने. चने अब लुटाये जाते हैं यहां, बिखेरे जाते हैं, बांटे नहीं जाते.

उजड़ गया इमली-वन, लुट गयी उसकी श्री-सुषमा और उसी के साथ लुट गयी हनुमान गढ़ी की भी गरिमा बहुत हद तक. हां दुःख है मुझे इसके उजड़ने का. कपियों के कैद होने और अंततः असह्य पीड़ा के असंख्य द्वारों को पार करते, तिल-तिल कर मृत्युमुख में प्रवेश करने का.

पर दुःख अधिक इस बात का है कि यह बाग आपने नहीं लगाया था. आपने अर्थात् तथाकथित हनुमान-भक्तों ने, आपकी शब्दावली में कहूं तो हिंदुओं ने. यह कहानी मैंने हनुमान-गढ़ी के स्थापत्य को लेकर शुरू की थी. कहा था भिन्न है यह स्थापत्य, आपके सामान्य स्थापत्य से. इस विशाल गढ़, इस विराट मंदिर को बनाया था एक मुसलमान सुल्तान मंसूर अली ने आज से कोई तीन सौ वर्ष पूर्व. मंसूर अली तब लखनऊ और फैजाबाद का प्रशासक था. संत अभयारामदास का सहयोग मिला था उसे और उन्हीं की देख-रेख और निर्देश में पूर्ण हुआ था यह विशाल निर्माण-कार्य. निर्वाण आखाड़ा के शिष्य थे अभयारामदास जी और यहीं अपने संप्रदाय का अखाड़ा भी स्थापित किया था उन्होंने. मंसूर अली ने ही लगाया था यह बाग. हनुमान गढ़ी के आस-पास की कोई 52 बीघे जमीन दे दी थी उसने मंदिर और बाग के निमित्त. शाखा-मृगों के लिए मंदिर बनाना है तो शाखाओं का प्रबंध तो करना पड़ेगा----- तरुवरों का. तो इमली के पेड़ से अच्छे पेड़ क्या होते—छाया की छाया, फल का फल, और फल भी कैसे? कच्चे में कसैले-खट्टे, पकने पर खट-मिट्ठे.एक ही साथ कई-कई स्वादों का प्रबंध कर दिया उस मुसलमान भक्त ने वानरों के लिए.

तो मंदिर और बाग दोनों का श्रेय जाता है उस मुसलमान सुलतान को. अनास्था के शिकार इस घोर कलियुग में भी एक तथाकथित विधर्मी की



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अगाध आस्था का प्रतीक है यह विशाल मंदिर. धर्म-निरपेक्षता के सबसे अच्छे उदाहरण के रूप में अवस्थित है यह देवालय. नहीं, वह मुसलमान हिंदू नहीं बन आया या मंदिर बना कर मस्जिदों की नमाज उसने नहीं बंद कर दी थी, पर इस निर्माण के द्वारा उस काल में भी धर्म-निरपेक्षता सरकारों का दायित्व नहीं बनी थी. उसने सर्वधर्म समन्वय और धार्मिक सहिष्णुता का एक व्यावहारिक प्रतिमान उपस्थापित कर दिया था इस कृति के माध्यम से.

कहानी है इस निर्माण की भी. सुलतान का एक मात्र पुत्र बीमार पड़ा था और प्राण बचने के कोई आसार नहीं रह गये थे. रात्रि की कालिमा के गहराते ही जब उसकी नाड़ी उखड़ने-उखड़ने को हो आयी थी और प्राण अनंत पथ के पथिक बनने को आतुर हो आये थे तो उस सुल्तान ने मेरी गुहार लगाई थी-----

"रहम करो पवन सुत! संकट-मोचन कहते हैं लोग तुम्हें! दे दो रहमत की भीख. बख्स दो जिंदगी मेरे बेटे को. बहुत दरवाजों पर माथा टेका मैंने. पीर की मजारों से लेकर मस्जिद की दीवारों से सिर टकराया पर हाथ कुछ नहीं आया. बेटे की बीमारी बढ़ती ही गयी तूफानी रफ्तार से. अब तुम्हीं यह आफत टालो तो टालो वर्ना छिन गया मेरा औलाद-सुख. बड़े-बड़े चमत्कार सुने हैं तुम्हारे. साधु-संतों के तुम एक मात्र रखवारे हो. मैं कोई साधु-फकीर तो नहीं अंजनी-कुमार, पर मेरा दिल पाक जरूर है. मैं यह नहीं जानता कि खुदा होता है अथवा नहीं, अथवा होता भी है तो आसमान की किन बुलंदियों में बसता है वह, मैं उन ऊंचाइयों तक कैसे पहुंच पाऊंगा? मेरे खुदा तो बस तुम्ही हो. तुम्हीं......."

मेरा वश चलता तो मैं यहीं पर मंसूर अली के मुख पर अपना हाथ रख देता. खुदा अर्थात राम. मेरे राम और मंसूर के अल्लाह में कितना अंतर है? कुछ भी तो नहीं हनुमान सब कुछ हो सकता है पर वह राम बन आये वह बर्दाश्त नहीं. और मैंने मंसूर को और मौका नहीं दिया. इसके पहले कि वह दुबारा मुझे खुदा का दर्जा दे दे मैंने अपने आराध्य को याद किया और पलक झपकते मंसूर के बेटे की धड़कन वापस आ गयी. पर इस घटना से आप यह न समझ लें कि सभी मंसूरों और मौहनों की इच्छाएं यों ही बात की बात में पूरी हो जाती हैं और कभी मुर्दा शरीरों में यों ही प्राण फूंक आते हैं. यह तो था कुछ ऐसा मंसूर की प्रार्थना, उसकी विह्वलता और उसके समपर्ण-भाव में कि पिघलना पड़ा मेरे राम को भी. युगों में कभी-कभार किसी प्रहलाद अथवा किसी ध्रुव की पुकार पर पसीज आती है उस करुणासागर की असीम करुणा की संपूर्ण ऊष्मा, अंतर की सारी छटपटाहट सिमट आती है तो यह पुकार प्रकृति के सारे विधि-विधानों को निरस्त कर असंभव को संभव कर देती है.

तो यह था एक उदाहरण जिसमें एक तथाकथित विधर्मी ने बनाया मेरा मंदिर. यह कोई एकाकी उदाहरण नहीं. अनेक दृष्टांत हैं ऐसे पर मैं एक ही ऐसी और घटना का वर्णन करूंगा.

लखनऊ का नाम तो आपने सुना होगा. यह था कभी लक्ष्मणपुर. अपभ्रंश होते-होते हुआ लखनपुर और कालांतर में इस्लाम के प्रभाव ने बना दिया इसे लखनऊ. इसी लखनऊ के अलीगंज में एक मंदिर है मेरा जिसकी मान्यता अपने ही ढंग की है. हनुमानगढ़ी की तरह यह भी एक प्रमुख स्थान बन गया है मेरा. प्रमुख इसलिए नहीं कि यह मेरे द्वितीय मुख्यालय के रूप में ख्यात है. नहीं, यह बात नहीं. प्रमुखता इसकी इस अर्थ में है कि लखनऊ या इसके आस-पास अथवा दूर-दराज के भी किसी मंदिर में मेरी मूर्ति स्थापित हो रही हो तो उसकी प्राण-प्रतिष्ठा तब तक अपूर्ण मानी जायेगी जब तक इस मंदिर से प्राप्त सिंदूर और लंगोटे का प्रयोग नहीं हो. मंदिर से मुफ्त ही ये वस्तुएं वितरित होती हैं—घंटा और छत्र तक. मंदिरों का मंदिर है अलीगंज का यह हनुमान-मंदिर. मेरे इस स्थान की महिमा प्रत्येक ज्येष्ठ मास में बढ़ आती है जब हर मंगल को यहां विशाल मेला जुटता है. नर-नारियों, बाल-वृंदों की अपार भीड़ उमड़ती है और उत्सवों-महोत्सवों का लंबा सिलसिला चल पड़ता है. भक्तों की आस्था का एक अपूर्व उदाहरण तब मिलता है जब मेले के एक सप्ताह पूर्व से ही शत-सहस्र व्यक्ति लाल लंगोटा पहने सड़कों पर पेट के बल खिसकते---प्रणाम निवेदित करते-----मंदिर की ओर बढ़ते हैं. इस प्रक्रिया में अधिकांश के पेट, छाती और ठुड्डी रक्त-रंजित हो उठते हैं पर श्रद्धा और भक्ति से अभिभूत इन भक्तों को शारीरिक पीड़ा का जैसे भान तक नहीं हो पाता.

खूब है अलीगंज का यह मेरा स्थान. मनोकामना-पूर्ति की पीठ ही मान ली है लोगों ने यह. रोज सैकड़ों मनौतियां मानी जाती हैं और उनमें अधिकांश पूरी भी हो आती हैं. इसका श्रेय जाता है मुझे. पर मैं बताऊं मैं तटस्थ ही रहता हूं अक्सर. जो कुछ होता है आपके प्रयास और इच्छा-शक्ति के बल पर ही. इच्छा का महत्व भी कुछ कम नहीं. इच्छा जब श्रद्धा से संयुक्त हो जाती है तो देवता चाहे न चाहे उसकी पूर्ति के सारे अवदान-उपादान स्वतः आकृष्ट हो आते हैं. अधिकांश स्थितियों में इतना और मात्र इतना ही योगदान होता है मेरा आपकी मनोकामनाओं की पूर्ति में. आपकी श्रद्धा, आपका विश्वास जाग्रत हो जाता है मेरी मूर्ति का संबल पा और श्रद्धा-विश्वास से संबलित आपकी आकांक्षा आकार ग्रहण कर लेती है.

श्रद्धा और विश्वास के इस आधार को आप साधारण नहीं समझें. विश्वास फल कर रहता है क्योंकि विश्वास बल देता है आपकी आकांक्षा को. यह सारा संसार, यह संपूर्ण ब्रह्मांड एक ही नियम पर टिका है और वह है पारस्परिक आकर्षण का. हर वस्तु, समान-धर्मी वस्तुओं को खींचती है अपनी ओर. विश्वास से बलवती हो आयी वायवीय इच्छा अपनी भौतिक प्रतिलिपि को आकृष्ट कर आपके सामने ला खड़ा करती है. यह सब कुछ, विश्व-ब्रह्मांड से सामान्य नियम के अंतर्गत ही घटित होता है. आपको पता है विश्वास के इस खेल के अत्याधुनिक उदाहरण का? नहीं तो बताता हूं.

आज से कोई लगभग दो हजार वर्ष (1987 वर्ष) पूर्व पैदा हुआ था क्राइस्ट. ईश्वर का बेटा कहते थे लोग उसे. चमत्कार-पूर्ण था उसका जीवन. जैसे कृष्ण ने अपने गुरु संदीपनी के पुत्रों को उनकी मृत्यु के वर्षों पश्चात् ला कर खड़ा कर दिया, उसी तरह क्राइस्ट ने भी कई निष्प्राणों को प्राण-दान दिए. क्राइस्ट की सबसे बड़ी विशेषता थी उनकी रोग-निवारण शक्ति जिसको आंग्ल-भाषा में 'हीलिंग पावर' की संज्ञा देते हैं. नेत्रहीनों को ज्योति और कोढ़ियों को 'काया' प्रदान करना क्राइस्ट के लिए साधारण बात थी. जिधर से निकलता वह ईश्वर-पुत्र उधर ही लोगों की भीड़ उमड़ पड़ती--लंगड़े-लूलों और अंधों-कोढ़ियों की. लोग चिल्ला पड़ते----- "क्राइस्ट कृपया मुझे ठीक कर दो."

"तुम्हें विश्वास है मेरे बेटे कि मैं तुझे ठीक कर दूंगा?" क्राइस्ट किसी पीड़ित के पास रुकते और पूछते.

अगर जबाब आता--- "हां मेरे मालिक, तुम ऐसा कर सकते हो," तो रोग-विकार भी तत्काल चले जाते. अंधों को आंखें मिल जातीं, कोढ़ी को 'काया'. यह था विश्वास जनित चमत्कार. पर जबाब में जहां जरा भी देर होती, संशय की छाया की भी जहां झलक लगती वहां कुछ नहीं होता. उस ईश्वर-पुत्र के किये भी वहां कुछ नहीं होता जहां विश्वास का अभाव होता.

तो कह रहा था अलीगंज के अपने मंदिर की बात. आपका विश्वास ही फलता है यहां. और जगहों की अपेक्षा अगर वह यहां अधिक फलता है तो उसका कारण भी वही विश्वास ही है—युगों से फलीभूत होती लोगों की आस्था. वर्षों से इस स्थान पर फलता-बढ़ता लोगों का अदम्य विश्वास, उनकी अपार श्रद्धा. विश्वास के इस घनीभूत स्वरूप का सहारा पा लड़खड़ाता विश्वास भी अगर सशक्त हो आपकी मनोकांछा-पूर्ति का बहाना बन आता है तो श्रेय मुझे नहीं आपकी श्रद्धा, आपके विश्वास को ही मिलना चाहिए. मेरे तुलसी ने तो श्रद्धा और विश्वास को शिवा और शिव का स्वरूप ही कह दिया. उनकी प्रतिमा का एक मात्र साधन--"भवानी शंकरौ बंदे, श्रद्धा विश्वास रूपिणौ." तो जो विश्वास साक्षात् शिव के साक्षात्कार का आधार बन सकता है, जो श्रद्धा



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वयं भवानी को अनुकूल कर सकती है, उस श्रद्धा, उस विश्वास के समक्ष अप्राप्य क्या रहता है, असंभव क्या बचता है?

तो मैं कहूंगा, अपनी श्रद्धा को ही संवारिए, अपने विश्वास को बल दीजिए और फिर मनौती चाहे अलीगंज के मंदिर में मानिए या अपने गांव के अश्वत्थ-वृक्ष के नीचे, उसे पूर्ण होने से कोई रोक नहीं सकता.

बात फिर घूम कर अलीगंज आ गयी. कहना यह था कि अयोध्या की हनुमानगढ़ी की तरह ही इस कामना-पीठ के इतिहास के पीछे भी किसी तथाकथित अहिंदू का ही हाथ है.

बात आज से कोई दो सो वर्ष पूर्व की है. अवध के नवाब थे मुहम्मद अली शाह. उनकी बेगम रबिया औलाद सुख से वंचित थी और दवा-दारू से लेकर दुआ-प्रार्थना तक बे-असर साबित हुई थी. तब इस मुसलमान-भाई को किसी ने एक हिंदू फकीर की याद दिलाई. इस्लामबाड़ी में कभी रहा था मेरा एक छोटा-सा मंदिर. पर उसका अब कोई अता-पता नहीं था. इस्लामबाड़ी का नाम पहले कभी हनुमानबाड़ी ही था किंतु आज से कोई 600 वर्ष पूर्व बख्तियार खिलजी ने इसका नाम इस्लामबाड़ी कर दिया. इसी इस्लामबाड़ी में रहते थे वह विरक्त साधु. बाड़ी के बाबा के नाम से ही लोग जानते थे उन्हें. मुझ में अपार श्रद्धा थी उनकी. रबिया बेगम ने बाड़ी के बाबा के यहां आंचल फैलाया और बाबा ने फरियाद पहुंचाई मुझ तक. पर मैंने रबिया की भक्ति की परीक्षा लेनी चाही. स्वपन हुआ बेगम को-- "इस्लामबाड़ी के टीले के नीचे गड़ी-पड़ी है एक हनुमान-मूर्ति. उसका उद्धार कर किसी मंदिर में स्थापित करो उसे."

रबिया दौड़ी बाड़ी के बाबा के पास. स्वप्न का संवाद सुनाया और बाबा के निर्देश पर खुदाई आरंभ हो गयी टीले की. मिट्टी के नीचे दबी मिली वही मूर्ति जो आज अलीगंज के मंदिर में स्थापित है. हाथी पर लादकर वह विग्रह लाया गया था यहां. इरादा था गोमती-पार ले जाकर मुख्य नगर में स्थापित करने का. पर हाथी बढ़ा ही नहीं इस स्थान से आगे. लोग कहते हैं भा गया मुझे यह स्थान. बेगम ने ही बनाया यहां पहला मंदिर. मूर्ति के भोग-राग और पुजारी तथा साधु-संतों के भरण-पोषण के लिए भूमि मिल गयी. महमूदाबाद रियासत से. इस तरह मेरे इस मंदिर और भूमि दोनों का श्रेय जाता है उन्हें जिन्हें आप विधर्मी की संज्ञा देते नहीं थकते. अब सोचने की बात यह है कि विधर्मी कौन है? वह जो धर्म के नाम पर मात्र रस्म-अदायगी करता है अथवा वह जो नींव को पक्की करने के लिए मंदिरों के कंगूरे गढ़ता है?

खैर, अलीगंज नहीं पड़ा था तब इस मुहल्ले का नाम. इसके लिए भी एक चमत्कार को घटित होना था. तब हुआ करते थे अवध के एक बड़े मशहूर नवाब ---- नवाब वाजिद अली शाह. शाह की दादी आलिया बेगम ने एक बार बिस्तर पकड़ा. किसी ने याद दिलाई मेरे मंदिर की और रबिया बेगम की संतान—प्राप्ति की कहानी की भी. बेगम ने मनौती की और रोग-मुक्त हो गयी तो बहुत बड़ा उत्सव आयोजित किया मेरे मंदिर पर. फकीरों, दरवेशों और साधु-संतों को छककर खिलाया. गरीबों-भिखमंगों को निहाल किया. तभी से चल पड़ी मेले की परंपरा जो आज तक वर्तमान है और तभी से पड़ गया इस मुहल्ले का नाम अलिया बेगम के नाम पर ही अलीगंज.

यहीं पर समाप्त हो जाती अलीगंज के मंदिर की यह गाथा अगर नवाब वाजिद अली शाह की दरियादिली की अनगिनत कहानियों में एक इससे भी नहीं जुड़ी होती.

नबाब उन दिनों अपनी चहेती बेगम कैसर के नाम पर कैसर बाग का निर्माण करा रहे थे. तरह-तरह के फूल-पौधों और ताल-तड़ागों से घिरी एक शानदार इमारत खड़ी हो रही थी बेगम के नाम पर.

इधर मारवाड़ का एक व्यापारी कई ऊंटों पर कस्तूरी-केसर लादे पहुंचा था लखनऊ की मंडी सआदतगंज में. कस्तूरी-केसर के लिए देश भर में विख्यात इस मंडी में वह सौदागर जटमल, पड़ा रहा दिनों तक पर किसी ने हाथ नहीं लगाया एक दाने को भी. जटमल घबराया तो लोगों ने याद दिलाई 'अलीगंज के हनुमान जी' की. जटमल पहुंचा इस मंदिर में. मरता क्या न करता? लाखों पर पानी फिरने, जीवन भर की पूंजी के डूबने के भय ने भर दी उसकी कातर प्रार्थना में इतनी शक्ति कि अपूर्व हो आयी उसकी श्रद्धा, अडिग हो गया उसका विश्वास. श्रद्धा-विश्वास की तरंगामित लहरों ने जा छुआ नवाब के कुछ दरबारियों के मन-प्राणों को और उनमें एक नवाब को एक विचित्र प्रस्ताव दे बैठा----"बेगम साहिबा के नाम को रोशन करना हो तो पुतवा दीजिए पूरे कैसर महल को केसर-कस्तूरी से. पूरा इलाका गम-गम कर उठेगा केसरिया गंध से और सार्थक हो जायेगा कैसर-बाग नाम भी."

भा गयी नवाब को दरबारियों की बात और बिक गया जटमल का सारा केसर. मैंने उसके लिए कुछ किया या नहीं पर दोनों हाथों से धन उलीचा था उस सौदागर ने इस मंदिर के नाम. मूर्ति के ऊपर सोने का छत्र चढ़ाया जो आज तक वर्तमान है. स्थान का नव-निर्माण हुआ और ऐसा उत्सव-आयोजन संपन्न हुआ यहां कि हजारों लोगों की भीड़ उमड़-उमड़ पड़ी कई दिनों तक. मेले का महत्व तब से निरंतर बढ़ता गया और आज यहां के ज्येष्ठ मासीय मेले का महत्व दूर-दराज तक विख्यात है और उसकी हनुमान-भक्ति अधूरी ही मानते हैं आप जिसने अलीगंज के मंदिर में माथा नहीं टेका हो और इसके मेले में भाग नहीं लिया हो. □

# ग़ज़ल

## सुखवीर विश्वकर्मा

इस सदी को ये क्या हो गया दोस्तो,
आदमी अजदहा हो गया दोस्तो.

अब तो चारों तरफ छा गयी खामोशी,
अम्न मुर्दार सा हो गया दोस्तो.

फिक्र अब रोशनी की किसी को नहीं,
हर तरफ धुंधलका हो गया दोस्तो.

हर जगह कत्लो-खूं और डाकेजनी,
देश में क्या से क्या हो गया दोस्तो.

संतरी संतरी-सा न दिखता कहीं,
लूट का ये खुदा हो गया दोस्तो.

नस्ले आदम ही जब खोखली हो गयी,
प्यार भी खोखला हो गया दोस्तो.

हर तरफ मुफ़लिसी का धुआं ही धुआं,
सांस लेना सजा हो गया दोस्तो.

घुल रहा है हवा में जहर खौफ़ का,
वक्त इक हादसा हो गया दोस्तो.

जिंदगी का सफर हो गया बेमजा,
दर्द भी लादवा हो गया दोस्तो.

इस चमन पे गिरेंगी कई बिजलियां,
तुमने जो कुछ कहा हो गया दोस्तो.

पेड़ का दर्द कोई भी सुनता नहीं,
पेड़ बेआसरा हो गया दोस्तो.

लूट लेता है जो कर्म के नाम पर,
धर्म भी इक जुआ हो गया दोस्तो.



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृष्ठ 36 से जारी

नहाते-नहाते उस पार से अपनी देवी का कंठस्वर उसके भीतर के तारों को कुछ इस तरह छेड़ गया कि वह उसी क्षण उसकी एक झलक भर पाने को व्यग्र और उत्कंठित हो उठा. क्या हुआ यदि उस पवित्र और प्यारी मस्ती की झोंक में वह कूद पड़ा. रोजमर्रा की अपनी नदी में—और तैरते-तैरते थोड़ा ज्यादा ही आगे निकल गया. जहां से उसने अपनी प्रेयसी के अंगों की एक झलक भर पाई होगी, वह जगह क्या उस पेड़ से भी नजदीक रही होगी?

खैर, किस्सा कोताह यह, कि विदुला का नदी-स्नान उसके बाद बंद होना ही था और हुआ. इसमें भी कोई शक नहीं कि पुजारीजी अभी उसी वर की प्रतीक्षा में एक वर्ष मजे से गुजार देते अगर यह फिजूल-सी घटना नहीं घटी होती. घटना भी क्या, निरी बकवास.

लोग सीधेपन के, सरलता के खामखाह गुन गाते हैं. अरे क्या है इस जिंदगी में और खुद आदमी में, जो सीधा हो. हर जगह बांकपन है, हर जगह घुमाव है. यह जितनी सारी चीजें तुम्हारी आंखों को, मन को अटकाती हैं, इनमें से एक भी चीज बताओ, जो सीधी हो. यह वर्षा, यह टहनी, नदी की लहर, चिड़िया या तितली की उड़ान...बताओ इनमें कौन-सी चीज तुम्हें सीधी लगती है? मगर इन सीधों की जिद है कि नहीं साहब सब सीधा होता है और सीधा होना चाहिए. जो नहीं दिखता सीधा, उसे हम सीधा कर देंगे. अरे जरा अपनी खुद की चाल ही देख लो.

गोपाल सुबह से शाम तक घाट पर बैठा रहता. विदुला की प्रतीक्षा में. विदुला क्यों आने लगी. गोपाल की समझ में कुछ नहीं आया. एक दिन मित्र-मंडली में से किसी ने उस तक वहीं डाक पहुंचा दी कि इसी हफ्ते विदुला की सगाई पक्की हो जायेगी और इसी महीने ब्याह भी. पुजारीजी स्वयं जाके लड़के को देख आये हैं और विदुला को भी दिखा दिया है.

मंजु ने डाक पहुंचा दी. उसके सामने ही विदुला ने गोपाल की चिट्ठी खोल के पढ़ी. चिट्ठी में टेढ़े-मेढ़े अक्षरों में सिर्फ इतना ही लिखा हुआ था—मेरी बहन के कहे मुताबिक—कि कल शाम तक किसी तरह तुमसे भेंट नहीं हो पाई तो तुम मेरी लाश ही देख पाओगी. मैं घाट पर ही तुम्हारा इंतजार करूंगा. तुम नहीं आयीं, तो जहां जिस जगह तुम नहाती थीं वहीं उसी जगह पर मैं गले में पत्थर बांधकर डूबकर प्राण दे दूंगा.

विदुला छटपटा उठी. ऐसे प्रेम पत्र की उसे कल्पना भी नहीं हो सकती थी. उसने तत्काल एक निर्णय लिया. चिट्ठी लिखकर मंजुला के ही हाथों गोपाल के पास संदेश भिजवाया—"घाट पर नहीं, तुम मुझे मंदिर के पिछवाड़े मिलो. आज ही आधी रात."

वे मिले, जैसे कि, पहले कभी नहीं मिले थे. दो प्रेमी, जो बरसों से लगभग रोज ही मिलते रहे हों और खुले में, दिन के प्रकाश में ही मिलते रहे हों—कल्पना करो कि वे जब पहली बार ऐसी हालत में घुप्प अंधेरे एकांत में दुनिया की नजरों से छुपकर मिलेंगे तो वह मिलना कैसा होगा? बस उसी तरह वे मिले और मिल के अलग हुए.

दूसरे दिन सुबह-सुबह गांव में कुहराम मच गया. गोपाल ने, लगता है, लौटने के तुरंत बाद ही जहर खा लिया. सुबह वह बिस्तर में मरा हुआ पाया गया. सिरहाने उसके एक चिट्ठी पड़ी हुई थी जिसमें मोटे मोटे हरफों में लिखा हुआ था—"मैंने अपनी खुशी से जहर खाया है. मेरी मौत के लिए मेरे सिवा और कोई भी जिम्मेदार नहीं है. सबको मेरा अंतिम प्रणाम—सबका गोपाल."

अधेड़ रेंगता हुआ खोह से बाहर निकला. "चलो अब चलें," उसने कहा, "बारिश बंद हो गयी. सिर्फ हल्की-सी फुहार है. शाम की बारिश का कोई ठिकाना नहीं."

युवक आंखें मलता हुआ बाहर निकल आया तो अधेड़ ने उससे कहा, "क्या बात है जी? तुम तो लगता है जैसे नींद से निकल के आ रहे हो. सो गये थे क्या?"

"नहीं तो," युवक ने कहा, "लड़की का क्या हुआ? यह तो बताया नहीं आपने."

"बताता हूं. पहले तुम यहां से निकलो," अधेड़ तेज चाल से आगे-आगे बढ़ गया.

"किस कदर अंधेरा है," पीछे से युवक की आवाज सुनाई दी. "कितना बजा होगा?"

"अभी बहुत देर नहीं हुई," अधेड़ ने युवक से कहा." कुहरा है, जंगल है, इससे ऐसा लगता है अभी मोटर-सड़क आ जायेगी. तभी पता चलेगा."

"लड़की का क्या हुआ?" युवक ने फिर कुरेदा. अधेड़ जोर से हंसा, "तुम्हारा क्या ख्याल है?"

युवक चुपचाप रहा. अधेड़ ने बोलना शुरू किया—कुछ दिन बाद लड़की की सगाई होने वाली थी ना? हो गयी. महीने भर बाद विवाह का मुहूर्त था. जब तक विवाह नहीं हो गया, पूरा गांव चुप रहा. चुप रहने की ही बात थी. कैसे चुप न रहता! पूरा गांव उमड़ पड़ा था .कैसे न उमड़ता!

किंतु जब लड़की ससुराल में कुछ दिन रहकर अपने मायके लौट के आयी तो उसने क्या देखा कि गांव के सभी लोगों की निगाह ही बदल गयी है. खासकर औरतें तो उससे ठीक से बात ही नहीं करतीं. उसे देखते ही मुंह फेर लेती हैं.

बेचारी विदुला जब बेहद परेशान हो गयी—उसकी सहेलियां भी एक-एक कर कन्नी काटने लगीं—तो उसने मंजुला को ही पकड़ा, "आखिर क्या हो गया तुम लोगों को? इस तरह अजनबियों की तरह क्यों ताकते रहते हो मुझे? कुछ बोलते क्यों नहीं?"

मंजुला को जितना मालूम था, उसने बता दिया, "विदुला! गांव की औरतें कह रही हैं तुमने और गोपाल ने एक साथ जहर खाकर मर जाने की शपथ ली थी. वह तो बेचारा चला गया सचमुच और तुमने शपथ तोड़ दी."

विदुला यह सुनकर सकते में आ गयी. "यह झूठ है," उसने कहा. "और तुम? तुमको तो सब पता है. क्या तुम भी उनकी बातों पर विश्वास करती हो?"

"नहीं, मैं तो नहीं करती," मंजुला बोली, "मैं तो कितना समझाती हूं. मगर कोई सुने तब न?"

तुम समझ रहे हो. मेरे गांव की औरतों पर मंजुला के समझाने-बुझाने का कोई असर नहीं पड़ा. एक बार ही क्यों, विदुला जब कभी गांव आयी, उसका इसी तरह मूक बहिष्कार हुआ. पुजारीजी से जरूर सबको सहानुभूति है. किंतु विदुला से नहीं. तुम आज भी उनसे पूछो तो वे तुम्हारे सामने डंके की चोट पर यही दुहरा देंगी कि विदुला और गोपाल दोनों ने उस रात एक दूसरे का हाथ पकड़ के शपथ ली थी कि इस जन्म में न सही, वे अगले जन्म में अवश्य एक-दूसरे को पा लेंगे. उन्होंने आज तक विदुला को इसके लिए क्षमा नहीं किया कि उसने गोपाल का दिया जहर क्यों नहीं खाया. क्यों उसे धोखा दिया.

तथ्य—मैं तुम्हें बताता हूं—तथ्य निश्चय ही यह नहीं है. गोपाल ने उस रात विदुला को अपने इरादे का रंचमात्र भी आभास नहीं दिया था. इसके ठीक विपरीत, विदुला तो सब कुछ के लिए तैयार होकर आयी थी. गोपाल के साथ गांव छोड़के भाग जाने तक के लिए. मगर गोपाल तो गोपाल ही था. वैसा कुछ उसने जताया ही नहीं. उल्टे यही कहता रहा कि उसकी मनोकामना पूरी हो गई, उसे कुछ भी नहीं चाहिए और विदुला को उसके योग्य वर मिल गया है, यह जानकर वह प्रसन्न है, आशीर्वाद देने आया है...इत्यादि-इत्यादि.

तथ्य तो यही है—अगर विदुला ने मंजु को जो बताया, उसे तथ्य मानें तो. मैं तो यही मानता हूं. मगर एक पूरा और समूचा गांव जो मानता है, वह तथ्य नहीं है, बकवास है, ऐसा भी कैसे कहा जाय! क्यों? तुम क्या सोचते हो? तुम्हारा क्या ख्याल है?

युवक चुपचाप चलता रहा. वह अपनी ही उधेड़-बुन में खोया था: क्या यही सवाल पूछने के लिए अधेड़ ने उसे इतनी लंबी कहानी सुनाई थी?...वह कुछ तय नहीं कर पाया. □



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धारा के विरुद्ध

राजेंद्र राव

# सांस्कृतिक दारिद्र्य हटाओ

किसी विकासोन्मुख नवोदित राष्ट्र को प्रौद्योगिकी, सुरक्षा और चिकित्सा जैसे क्षेत्रों में समुन्नत देशों से सहायता लेनी पड़े तो बात समझ में आती है. परमाणु ऊर्जा केंद्र, भारी कारखाने और मेट्रो रेल के लिये हमने विदेशी तकनीक और धन लिया है क्योंकि समय की रफ्तार के साथ कदम मिला कर चलने के लिये यह जरूरी था लेकिन कला और संस्कृति के क्षेत्र में गौरांग प्रभुओं के अनुदान के बिना कौन-सा काम रुका जा रहा था? ज.ले.सं. की केंद्रीय पत्रिका 'नया पथ' के अंक 4 में अजय तिवारी ने अपने लेख 'अशोक वाटिका में सांस्कृतिक जागरण' में इस महत्वपूर्ण प्रश्न को उठाया है. भारत की सांस्कृतिक दरिद्रता को दूर करने के उद्देश्य से बने मंच, भारत भवन और वत्सल निधि जैसे संस्थानों को अमेरिका के फोर्ड फाउंडेशन द्वारा स्वीकृत अनुदानों को स्वीकार करने की मानसिकता आखिर हमें किस ओर ले जायेगी? एक समय तो ऐसा था जब घर-घर से विदेशी कपड़े बटोर कर होली जलायी गयी. स्वदेश और स्वदेशी का नारा लोगों की जुबान पर था और आज निहायत बेशर्मी से हम विदेशी धन को सांस्कृतिक उत्थान के लिये स्वीकार कर लेते हैं.

अपने लेख में अजय तिवारी बताते हैं कि ''सन् 84 में भारत भवन की स्थापना के लिये 20 लाख रु. की फोर्ड फाउंडेशन की सहायता का मामला उजागर होने पर सचिव अशोक वाजपेई ने बड़े गर्व से कहा था भारत भवन में राज्य और केंद्र शासन ने लगभग चार करोड़ रुपये निवेश कर इसे राष्ट्रीय कला केंद्र के रूप में विकसित किया है. बीस लाख रुपये की राशि इतनी अधिक नहीं है कि अगर उसमें कोई शर्तें होतीं तो उसे हम मन मारकर मान लेते.' यह भी कि, 'संयोग से '84 में ही पता चला कि वत्सल निधि को 25 हजार डालर का अनुदान फोर्ड फाउंडेशन से स्वीकृत है–" बहरहाल हमें खुशी इस बात की है कि इन करोड़ों रु. से बने भवनों से हिंदी कथाकारों का अभी तलक दूर का नाता है.

## नयी पत्रिकाएं

कई नयी साहित्यिक पत्रिकाएं आयी हैं. ज.ले.सं. के तीसरे राष्ट्रीय सम्मेलन के अवसर पर 'नया पथ' के अलावा 'नया विकल्प' तथा 'उद्भावना' के कलेवर और सामग्री देखकर खुशी होती है. शहर लखनऊ से गोपाल उपाध्याय ने पुनः प्रकाशित उत्कर्ष का दूसरा अंक प्रकाशित किया है जिसमें ख्वाजा अहमद अब्बास की एक प्रतिनिधि कहानी और उन पर शकील सिद्दीकी का सुंदर लेख है. लखनऊ से ही वीरेंद्र यादव और राकेश के संपादन में प्रकाशित हो रही है साफ सुथरी और गंभीर पत्रिका 'प्रयोजन'

## कफन का बखिया

हिंदी साहित्य के अफलातूनी आलोचकों की सम्मानीय सूची में एक नाम और, अर्चना वर्मा. अनुमान है कि आप हिंदी साहित्य की प्राध्यापिका हैं. 'कफन' जैसी सहज ही बोधगम्य कहानी के पुनर्मूल्यांकन में आपने अपनी वैश्लेषिक प्रतिभा का जबर्दस्त प्रदर्शन किया है. 'अनेक रचनाओं का जटिल सत्य' जैसे भारी भरकम शीर्षक की व्याख्या में, घीसू के किसानों से कहीं ज्यादा विचारवान होने में विचार शब्द पर विचार करने का यह अंदाज देखें, ''इस सहजता या अनायासता का कारण यह है कि विचारधारा को उस स्थिति में बिना किसी शंका या प्रश्न के, असंदिग्ध रूप से स्वीकार कर लिया गया है, कभी परंपरा तो कभी मर्यादा के नाम पर तो कभी बिना किसी नाम के, मात्र अभ्यासवश. दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि सिद्धांत के बिना व्यवहार संभव नहीं है. जहां वह व्यवहार में अलग से साफ-साफ दिखाई नहीं देता, वहां भी वह मौजूद तो है पर या तो अभी तक अलग से पहचाना और परिभाषित नहीं किया गया है–और जब किया जायेगा तो ऐसा लगेगा कि व्यवहार से सिद्धांत निकला है जबकि वह पहले से ही व्यवहार में निहित था–या फिर वह इतना अधिक जाना-पहचाना और स्वाभाविक हो चुका है कि हम उसे सहज बुद्धि का व्यापार समझने के आदी हो गये हैं अर्थात् जीवन के दैनिक व्यवहार में विचारधारा या सिद्धांत का अर्थ आम आदमी द्वारा जीवन और जगत के प्रत्यऐकता की विधि है.''

**(उद्धरण हंस, अगस्त 87 अंक से साभार)**

## कुलीन शिशु

प्राध्यापकीय अफलातूनों में एक पुराना नाम है–बटरोही. आप हर साल छपने वाली हिंदी कहानियों में से दो प्रतिनिधि कहानियां छांटते हैं. यह गुरुतर दायित्व भली भांति संभालते हुए आप रचनात्मक कर्म में भी संलग्न रहते हैं. आपका विचार है कि ''एक पूरी की पूरी पीढ़ी ऐसी तैयार हो चुकी है जिसमें आस्थाएं आस्थाहीनता में से पैदा हुई हैं. जिसके मूल्य मूल्यहीनता के बीच से निकले हैं और....'' अपनी पीढ़ी के बारे में बटरोही सगर्व बताते हैं कि–''मुझे उस दिन बहुत अच्छा लगा था, जब मैं गोविंद मिश्र से पहली बार मिला और शैलेशजी ने मेरा परिचय उनसे इस रूप में दिया, 'अरे, इन्हें नहीं जानते, ये प्रेमचंद के नाती हैं–बटरोही!' और मुझे सचमुच इस बात का गर्व है कि एक रचनाकार के रूप में मेरे दादा प्रेमचंद और पिता अज्ञेय जी हैं.'' (कहानियां–सितंबर '87 से साभार) अब बताइये इस सादगी पे कौन न मिट जाये!

## फ्रायड और रीतिकाल

हिंदी साहित्य के आदिकाल याने मध्यकालीन साहित्यिक प्रवृत्तियों का सम्यक् अध्ययन, अनुशीलन और समाजशास्त्रीय मूल्यांकन प्रस्तुत करना डा. रमेश कुंतल मेघ जैसे दिग्गज विद्वान के ही बूते का काम है. आपकी पुस्तक 'मनखंजन किनके' .रीतिकाल के फ्रायडीय विश्लेषण के लिहाज से एक दिलचस्प और ज्ञानवर्द्धक पुस्तक है. डा. मेघ ने हिंदी शोध कर्त्ताओं के परंपरागत पोंगापंथ को ताक पर रखकर रीति काव्य और सूरदास का वैज्ञानिक दृष्टि से साहसिक विवेचन किया है. फ्रायड के सिद्धांतों को रीतिकाल से लेकर आधुनिक युग तक प्रासंगिक बताते हुए डा. मेघ ने लिखा है कि ''अनुभूतियों की तीव्रता और यौन लीलाओं, इरोटिक प्लेज की चरम परिणति इन कृतियों में हुई है और यह सभी प्रचुरता नारी को ही केंद्र बनाकर प्राप्त की गयी है. नारी के सौंदर्य और काम का इतना मधुमय प्रवाह केवल अकेले नारी ने नहीं, उसकी कांत संगिनी प्रकृति ने भी वहन किया है.....साहित्य के परंपरागत नख-शिख-वर्णन, बारहमासा, रीतिकालीन नायिकाएं, मृदुला गर्ग और जैनेंद्र के उपन्यासों की कई नारियां आदि उपर्युक्त तथ्य का प्रमाण है. कला के प्रेम और श्रृंगारिक पक्षों में कामपृवृत्तियों की प्रचुरता तो मिलती ही है.'' □

**(मनखंजन किनके, पृष्ठ 16 से साभार)**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



# सवालों के आइने में हिंदी कहानी के सौ वर्ष

सारिका द्वारा आयोजित परिचर्चा "सवालों के आइने में हिंदी कहानी के सौ वर्ष" में आपने लक्ष्मीनारायण लाला, राजेंद्र यादव, हिमांशु जोशी, रमाकांत और गंगाप्रसाद विमल के विचार पढ़े. (नवंबर, 87 अंक में)

इस बार पढ़िये मैनेजर पांडेय, राजकुमार सैनी, चित्रा मुद्गल, सुधीश पचौरी और ब्रजेश्वर मदान के विचार कि उन्हीं सवालों के आइने में ये कहानी की तस्वीर को किस तरह देखते हैं....?

## सत्तर के बाद कहानी का नक्शा बदल गया

मैनेजर पांडेय

हिंदी कहानी के मूल्यांकन के प्रसंग में हालांकि चर्चा प्रेमचंद युग से की जाती है लेकिन हिंदी कहानी का इतिहास प्रेमचंद से पुराना है. यह सही है कि हमारी कहानी की असली परंपरा प्रेमचंद की कहानी से शुरू होती है. एक जमाने में प्रेमचंद की 'बड़े घर की बेटी', 'पंच परमेश्वर', 'ईदगाह' जैसी कहानियां बड़ी प्रसिद्ध थीं. नयी कहानी की चर्चा करते हुये 'कफन' को हिंदी की पहली नयी कहानी बताया गया. जबकि सन् सत्तर के बाद हिंदी कहानी में जो बदलाव आया है उसमें प्रेमचंद की दूसरी कहानियां 'सद्गति', 'आहुति' की चर्चा एक नये सिरे से हुई.

गौर से ध्यान दिया जाये तो प्रेमचंदोत्तर पीढ़ी के कथाकारों के लिए सबसे बड़ी चुनौती स्वयं प्रेमचंद थे. प्रेमचंद के बाद सामाजिक यथार्थ की जगह मनोवैज्ञानिक यथार्थ की खोज–पड़ताल में व्यस्त रहने वाले जैनेंद्र और अज्ञेय पहले थे. यह चुनौती यशपाल के भी सामने आयी, लेकिन यशपाल ने औरों की तरह पीछे हटने की अपेक्षा प्रेमचंद की इस चुनौती का सामना किया. उनकी कहानियां सामाजिक और राजनीतिक यथार्थ की दृष्टि से प्रेमचंद की परंपरा में इस बात का एक जीवित साक्ष्य हैं. आजादी के बाद जब नयी कहानी का आंदोलन आया तो उसका मिजाज एकदम बदल गया. यह कहानी प्रेमचंद की परंपरा से बिल्कुल भिन्न थी जिसमें कोई सामाजिक या राजनीतिक आंदोलन की भंगिमा नहीं है. मेरी दृष्टि में नयी कहानी का आंदोलन पूर्णतः एक साहित्यिक आंदोलन था जिसमें रौमेंटिकता और कलावाद की जबर्दस्त छौंक थीं.

इसलिए कुछ आलोचकों का यह कहना कि नयी कहानी का आंदोलन एक सांस्कृतिक नवजागरण का उभार था, मेरी दृष्टि में यह भ्रांतिपूर्ण कथन है. गौर से देखा जाये तो नयी कहानी के समक्ष कोई चुनौती थी ही नहीं. उनकी एकमात्र चुनौती थी स्वयं को प्रतिष्ठित करना. इसलिए उन्होंने तमाम तरह के उद्योग शिल्प के चमत्कार के रूप में प्रकट किये. लेकिन शिल्प के आतंक का यह खेल बहुत दिन तक चल नहीं सको. हिंदी पाठक मध्यवर्गीय दिमाग वाले कथाकारों की निजी हताशा और फ्रस्ट्रेशन से ऊब गया. इन कथाकारों का सेक्स–चित्रण भी बहुत फूहड़ निकला.

लेकिन, सत्तर के बाद हिंदी कहानी का नक्शा ही बदल गया. दरअसल, हिंदी कहानी में इस बदलाव के लिए भारतीय राजनीति में जन-आंदोलनों की काफी महत्वपूर्ण भूमिका है. इन आंदोलनों में नक्सलवाड़ी का आंदोलन बहुत महत्वपूर्ण है. मेरी दृष्टि में इस आंदोलन ने हिंदी कहानी की एक नयी पीढ़ी पैदा की, जिसने अपने समय की कहानी को सामाजिक और राजनीतिक संदर्भों में व्यापक स्तर पर जोड़ा है, जिसे मैं कहानी की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि मानता हूं. उल्लेखनीय है कि हिंदी कहानी की इस दिशा को बदलने के लिए आलोचकों ने कोई काम नहीं किया बल्कि इसका श्रेय जन-आंदोलनों को है. ऐसे कहानीकारों में ज्ञानरंजन, काशीनाथ सिंह, स्वयं प्रकाश, विजेंद्र अनिल, सुरेश कांटक, संजीव, नमिता सिंह और नासिरा शर्मा का नाम उल्लेखनीय है. यहां मैं समकालीन कथा-सहित्य में महिला कथाकारों की स्थिति की खास समस्या की ओर इशारा करना चाहूंगा, जिसकी ओर लोगों का ध्यान कम गया है. अक्सर कुछ आलोचक समकालीन महिला कथाकारों पर व्यावसायिक लेखन का आरोप लगाते हैं जो वाजिब नहीं है. असल में महिला-लेखन की समस्या उसके सीमित अनुभवों के कारण है. चूंकि हमारे समाज में नारी सामाजिक और राजनीतिक आंदोलनों में उस तरह सक्रिय साझेदारी नहीं कर पाती जैसा उसे करना चाहिये. उसे ऐसी सीमित जिंदगी जीनी पड़ती है जहां सामाजिक संदर्भों का व्यापक अनुभव मिल नहीं पाता. फलतः उनके लेखन में एकरसता और दुहराव होता है. शायद इसीलिए, समकालीन हिंदी कथा-लेखन में महिला-लेखन की औसत ऊंचाई मन्नू भंडारी तक सीमित है. यहां महाश्वेता देवी और दुर्गा भागवत जैसी लेखिकाओं की कल्पना असंभव है. इसलिए जरूरी है कि स्त्री की, दुनिया को विस्तार देने के लिए उसे जन-आंदोलनों में हिस्सेदारी का



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

मौका दिया जाना चाहिये. मेरी राय में हिंदी की लेखिकाओं को सामाजिक संघर्ष में पुरुष लेखकों के साथ आगे आना चाहिये. तभी उनके लेखन का कोई अर्थ भी हो सकता है.

# मेरी पीढ़ी की विडंबना

## चित्रा मुद्गल

औद्योगीकरण की संस्कृति ने समाज के हर वर्ग के विकास और उत्थान की आड़ में मालिक और मजदूर जैसी व्यवस्था को पोसा....

व्यवस्थागत बढ़ते दबाव के बीच घुटते हुए व्यक्ति का रियक्ट न करना...बढ़ते आर्थिक दबावों के चलते मानवीय भावनाओं का व्यवसायीकरण..

'मामला आगे बढ़ेगा अभी' में कोठी वालों की कार धोकर गुजारा करने वाला किशोर बंडू जब एक रोज यह महसूस करता है कि उसकी हाड़तोड़ मेहनत और ईमानदारी से बेअसर सक्सेना साहब बीमारी के कारण हुए खाड़े का भी पैसा काट लेते हैं तो वह उनके व्यवसायी आचरण से क्षुब्ध होकर एकाएक विद्रोह पर उतर आता है और जिस कार को वह बड़े जतन से धो–पोंछकर चमका-दमका कर रखता था उसे सरिये से पीट-पाट कर डिब्बा बना देता है. व्यक्ति के 'रियक्ट' करने को रेखांकित करती उपरोक्त कहानी के अलावा कुछेक अन्य कहानियां हैं 'केंचुल', 'त्रिशंकु', 'बंद चेहरे', 'ब्लेड', 'फातिमा बाई कोठी पर नहीं रहती', 'गर्दी' आदि. यह 'रियक्ट' करना चाहे शोषण के खिलाफ हो या स्वयं अपनी कुंठाओं या कमियों का इसी प्रकार 'जगदंबा बाबू गांव आ रहे हैं' गांव के हारे हुए सरपंच ठा. सुमेर सिंह के यहां अब भी परजा के रूप में सेवा टहल करने वाली अपने ही वोटों से शोषित सुखन्न भौजी की त्रासदी है. किस तरह वोट की राजनीति सर्वहारा वर्ग के उत्थान की आड़ में बड़ी कुशलता से उनका इस्तेमाल कर अपना उल्लू सीधा कर रही है. ये सामाजिक विसंगतियां हमारे चारों ओर मोह भंग का नैराश्य बुन रही हैं. यह मेरी पीढ़ी के परिवेश की विडंबना है. यही मेरी रचनाओं की मुख्य

ज़मीन है', 'कलम [illegible]' [illegible] 'मुहिम', एक थी 'हंसमुख दे', 'अपना-आकाश', 'चीं घोड़ी', 'टेपचू', 'लड़ाई है', 'कर्फ्यू' (नमितासिंह), 'बिरजू तो मारा ही जायेगा', 'अपराध', 'यह नाटक नहीं है', 'खुद के खिलाफ' आदि ढेरों ऐसी कहानियां हैं जो अपने समय की ईमानदार गवाह हैं □

# 'नई कहानी आंदोलन' के प्रति

## राजकुमार सैनी

हिंदी कहानी की सौ वर्ष (लगभग सौ वर्ष कह लीजिए) की उपलब्धियों को मैं न तो आशावादी के नजरिये से देखता हूं न निराशावादी नजरिये से. मैं उसे गंभीर यथार्थवादी नजरिये से देखता हूं. प्रेमचंद से पहले की कहानी गल्प तथा रहस्यों की रोमांचभरी मानसिकता की कहानी थी. प्रेमचंद के युग में एक यथार्थवादी सामाजिक कहानी ने जन्म लिया और होश संभाला. प्रेमचंद के साथ-साथ कौशिक, प्रसाद, सुदर्शन आदि उस युग के कहानीकारों को इस बात का श्रेय जाता है कि उन्होंने हिंदी की आधुनिक कहानी को विकसित किया. इन्होंने हिंदी कहानी को लल्लू लाल के 'प्रेम सागर' और सैयद इंशा अल्ला खां की 'रानी केतकी की कहानी', किशोरी लाल गोस्वामी की 'इंदुमती', बंगमहिला की 'दुलाई वाली' और आचार्य रामचंद्र शुक्ल की 'ग्यारह वर्ष का समय' जैसी पुरानी कहानियों के मायाजाल से निकाल कर यथार्थवादी जमीन पर उतारा. 'बड़े घर की बेटी', 'नमक का दरोगा', 'पंच परमेश्वर' यथार्थोन्मुख आदर्शवादी कहानियां थीं. गुलेरी की 'उसने कहा था' और कौशिक की 'ताई' शीर्षक कहानियां भी यथार्थोन्मुख आदर्शवादी कहानियां हैं. प्रेमचंद ने अपने परिमाणपरक और गुणपरक कहानी साहित्य द्वारा यथार्थोन्मुख आदर्शवाद से आदर्शोन्मुख यथार्थवाद तक की यात्रा की. प्रसाद और निराला जैसे कथाकारों ने हिंदी कहानी की इस यात्रा को आगे बढ़ाया. बाद में राहुल, यशपाल, अमृतलाल नागर, रांगेय राघव, अमृतराय, नागार्जुन, मुक्तिबोध, भीष्म साहनी, अमरकांत, भैरव, मार्कंडेय, परसाई, शेखर जोशी, ज्ञानरंजन, रामनारायण शुक्ल, इसराइल जैसे कहानीकारों ने इस यथार्थवादी हिंदी कहानी को अपने–अपने ढंग से विकसित और गुणांतरित किया.

दूसरी ओर जैनेंद्र कुमार, इलाचंद्र जोशी, भगवती चरण वर्मा, अज्ञेय, निर्मल वर्मा, राजेंद्र यादव, धर्मवीर भारती जैसे लेखकों ने इस यथार्थवादी हिंदी कहानी के विरुद्ध यथार्थवाद विरोध की कहानियां लिखीं.

इसके बीच एक मध्य-धारा थी जो शुरू से आज तक प्रवाहित होती रही है. चतुरसेन शास्त्री, पांडेय बेचन शर्मा उग्र, भगवती प्रसाद बाजपेयी, उपेंद्र नाथ अश्क, विष्णु प्रभाकर, फणीश्वर नाथ रेणु, मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती, कमलेश्वर, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, मोहन राकेश और रघुवीर सहाय जैसे कहानीकारों की कहानियां यथार्थवादी संकल्प और यथार्थवाद-विरोधी विकल्प दोनों के बीच की कहानियां हैं. इन्हें कहानीकारों ने जाने-अनजाने दोनों तरह की कहानियां लिखीं. उदाहरण के लिए 'ठाकुर का कुआं', 'पूस की रात' (प्रेमचंद), 'बेड़ी', गूदड़ी का लाल' (प्रसाद), 'ज्ञानदान' (यशपाल), 'प्रभा', 'सुरैया' (राहुल), 'चतुरी चमार' (निराला), 'हत्यारे' (अमरकांत), 'अमृतसर आ गया है' (भीष्म साहनी), 'उखड़े खंभे', 'भोला राम का जीव' (परसाई), 'प्रचार', 'सहारा' (राम नारायण शुक्ल), 'उस्ताद', 'बदबू' (शेखर जोशी), 'घंटा', 'बहिर्गमन' (ज्ञानरंजन), 'फिर कहानी उसी की' (इसराइल) जैसी कहानियां यथार्थवादी संकल्प की कहानियां हैं जबकि 'लंदन की एक रात' (निर्मल वर्मा), 'रोज' (अज्ञेय), 'झाड़ी' (श्रीकांत वर्मा), 'गुलकी बन्नो' (धर्मवीर भारती) जैसी कहानियां यथार्थवाद-विरोधी विकल्प की कहानियां हैं.

मुझे लगभग सभी युगों की विभिन्न कहानियां आकर्षित करती हैं. साहित्य को देश–काल से जोड़कर तो देखता हूं लेकिन मैं उसे दशकों में बांटकर नहीं देखता. कौशिक की 'ताई' मुझे आज की भारतीय बुढ़िया की कहानी लगती है. लेकिन निर्मल वर्मा की 'लंदन की एक रात' मुझे पराधीन भारत में अंग्रेजी मानसिकता में जीनेवाले एक पुराने चरित्र की याद दिलाती है. 'ताई' जैसी बुढ़ियाएं उस समय रही होंगी, आज भी हैं, दूसरी ओर अंग्रेजी मानसिकता वाले चरित्र पराधीन भारत में तो थे ही, आज भी हैं. मुझे प्रेमचंद से लेकर परसाई, अमरकांत, भीष्म साहनी, राम नारायण शुक्ल और ज्ञानरंजन तक के दौर की और उनके बाद के दौर की भी विभिन्न कहानियां आकर्षित करती हैं, जैसे

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'कफन', 'पूस की रात', ईदगाह' (प्रेमचंद), 'उसने कहा था' (गुलेरी), 'पुरस्कार' (प्रसाद), 'ताई' (कौशिक), 'बाबा भारती' (सुदर्शन), 'मिठाईवाला' (भगवती प्रसाद वाजपेयी), जज का फैसला (विष्णु प्रभाकर), 'डिप्टी कलक्टरी', हत्यारे', 'दोपहर का भोजन' (अमरकांत), 'चीफ की दावत', 'अमृतसर आ गया है' (भीष्म साहनी), 'फेस के इधर उधर', 'पिता', 'बहिर्गमन' (ज्ञानरंजन), 'बदबू', 'उस्ताद' (शेखर जोशी), 'राजा निरबंसिया' (कमलेश्वर), 'टूटना' (राजेंद्र यादव) और 'एक और जिंदगी' (मोहन राकेश) जैसी विभिन्न दौर-दौरों की कहानियों की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहूंगा.

नयी कहानी आंदोलन के प्रति मैं निष्ठावान नहीं हूं. साहित्य को सामाजिक आंदोलनों से जुड़ना चाहिये न कि कोरे साहित्यिक आंदोलनों से. फिर नया और पुराना मूल्य सापेक्ष भी होता है. उदाहरण के लिए कबीर अज्ञेय की तुलना में मुझे अधिक समकालीन और आधुनिक लगते हैं.

समकालीन कहानीकारों में इसराइल (फिर कहानी उसी की), रमेश उपाध्याय (कामधेनु), रमाकांत (तेवर), धर्मेंद्र गुप्त (समुद्र), प्रदीप पंत (इतने दिनों तक तुम कहां थे?), अवध नारायण मुद्गल (कबंध), चित्रा मुद्गल (जरिया), इब्राहिम शरीक, (नारायणी तू हार गई है!), असगर वजाहत (केक), पंकज बिष्ट (हल), ब्रजेश्वर मदान (लैटर बक्स), सच्चिदानंद धूमकेतु, (अजगर), मधुकर सिंह (बाढ़) आदि कहानियां ध्यान आकृष्ट करती हैं. तथापि ज्ञानरंजन (बहिर्गमन), राम नारायण शुक्ल (प्रचार), कमलेश्वर (राजा निरबंसिया), राजेंद्र यादव (टूटना), मन्नू भंडारी (यही सच है), परसाई (भोला राम का जीव), मार्कंडेय (बीच के लोग), भैरव (आंख क्यों भर आई है), शेखर जोशी (दाज्यू), अमरकांत (डिप्टी कलक्टरी), विष्णु प्रभाकर (धरती अब भी घूम रही है), भीष्म साहनी (चीफ की दावत), हंसराज रहबर (हिंडोलना), मुक्तिबोध (जिंदगी की कतरन), अमृतराय (सांवली लड़की), रांगेय राघव (गदल), रेणु (तीसरी कसम), प्रेमचंद (पूस की रात, कफन), प्रसाद (बेड़ी, ममता, पुरस्कार), निराला (राजा साहब को ठेंगा दिखाया) जैसी कहानियां हिंदी की श्रेष्ठ कहानियां हैं.

## फिर भी अपनी इस यात्रा में अलग और देसी पहचान बनायी है

सुधीर पचौरी

हिंदी कहानी का इतिहास बहुत पुराना है. वह आधुनिक युग के आरंभ के साथ हिंदी में जन्मी है. अतः उसकी यात्रा यूरोपीय कथा साहित्य की तरह लंबी नहीं कही जा सकती. फिर भी हिंदी कहानी ने अपनी इस यात्रा में अपनी अलग और देसी पहचान बनायी है. इस पहचान की वजह से कई बार जब हम यूरोपीय कथा साहित्य को लेकर चली बहसों से निकले मानकों को इन पर लागू करते हैं तो कई बार अनर्थ हो जाया करता है. देखने में यह आता है कि अपने यहां यानी हिंदी में उपन्यास उतना नहीं विकसित हुआ जितना कहानी साहित्य. यह शोध का विषय है कि सघन औपन्यासिक परंपरा के पुष्ट न होने पर भी कहानी परंपरा अधिक बलशाली नजर आती है और कई बार वह साहित्यिक प्रक्रिया के केंद्र में नजर आती है नयी कहानी हिंदी की पहली ऐसी प्रक्रिया है जो शिष्ट स्तर पर समूचे सांस्कृतिक बोध के नयेपन को पहचान योग्य बनाती है. नयी कहानी से पहले प्रेमचंद अकेले पितामह की तरह हैं जहां तमाम तरह की कहानियां और उनके बीज मिलेंगे.

नयी कहानी के बाद ऐसी सामाजिक स्थितियां नहीं बनीं कि कथा साहित्य और खासकर कहानी में नयी कहानी की प्रतिमाओं से बड़ी प्रतिमाएं विकसित हो पातीं. आज तो युवा कथाकारों के चारों ओर एक नकारात्मक और हतोत्साहक वातावरण अधिक है जो उनकी प्रतिमा को क्षीण करता है फिर भी पिछले दस पंद्रह साल में कुछ नये कथाकार बिल्कुल नये ढंग की कहानी और एक नया स्वस्थ विजन लेकर सामने आ रहे हैं. प्रयोग भी इस वक्त शुरू हो रहे हैं. स्वयं प्रकाश, असगर वजाहत, विष्णु नागर, उदय प्रकाश, मधुसूदन आनंद, धीरेंद्र अस्थाना, सुरेश उनियाल, ब्रजेश्वर मदान, शशांक, रमेश बतरा, चित्रा मुद्गल, नमिता सिंह, पंकज बिष्ट, शिवमूर्ति, ललित कार्तिकेय, बलबीर लोकेश, रामानंद राठी, सहीराम आदि अनेक नये लेखकों ने कुछेक बेहद नयी और अच्छी कहानियां लिखी हैं, जिनसे आगे कथा विकास की उम्मीद निश्चित ही की जा सकती है. इनके अतिरिक्त अनेक नवांकुर भी ध्यान देने योग्य हैं. □

# कहानी की पहचान

ब्रजेश्वर मदान

नयी कहानी के दौर के बाद सन् 67,68 के दौर से मैंने लिखना आरंभ किया उस समय कहानी की दुनिया में किसिम-किसिम के आंदोलन सक्रिय थे. किंतु कहा जा सकता है कि नयी कहानी आंदोलन के बाद हिंदी कहानी की स्थिति बहुत संतोषप्रद नहीं थी. जितने कथाकार थे उनके उतने आग्रह और झंडे थे. फतवे देने में लोगों को विश्वास अधिक था, अच्छी कहानी लिखने में कम.

ऐसे कठिन माहौल में हमारी पीढ़ी की मुख्य चुनौती थी हिंदी कहानी को पुनः केंद्र में लाने की. क्योंकि नयी कहानी के दौर के खत्म हो जाने के बाद सातवें दशक में हिंदी कहानी ने तमाम आंदोलनों और मताग्रहों के बीच अपनी पठनीयता और पहचान खो दी. कहानी से आम पाठक का विश्वास ही उठने लगा था. लेकिन मुझे यह कहने में संकोच नहीं कि हमारी पीढ़ी के युवा कथा लेखकों ने एक बार फिर हिंदी कहानी की पहचान को संभव बनाया. हम लोगों ने उच्च वर्ग की अभिजात संस्कृति को छोड़कर निम्न मध्यवर्ग की कठिन जिंदगी को केंद्र में रखकर कहानियां लिखीं. सन 70 के बाद समांतर कहानी आंदोलन, और इधर जनवादी कथा आंदोलन ने नया मोड़ लिया. इससे कहानीकारों की एक लंबी जमात सामने आयी है. लेकिन एक खतरा यह भी पैदा हुआ है कि आज फिर कहानी अपने-अपने खेमें में वापस आ रही है. जिससे एक ओर मूल्यांकन के पूर्वाग्रह का खतरा बढ़ा है तो दूसरी ओर बेहतर कहानी लिखने के माहौल में गतिरोध पैदा हुआ है. इसलिए यह जरूरी है कि समकालीन कहानी का माहौल अपने मत और सिद्धांत के आग्रहों के बावजूद गुट और शिविरों से दूर रहे.

हमारी सौ वर्षों की उपलब्धियां काफी उल्लेखनीय हैं. खास तौर से इधर की कहानी ने हिंदी कहानी के भविष्य की ओर एक रचनात्मक इशारा किया है. जिसको लेकर मैं आश्वस्त हूं. □



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



# जीवन प्रवृत्ति और सृजन प्रवृत्ति का आधार

रामदरश मिश्र की कृति 'जहां मैं खड़ा हूं' को किसी एक विधा और फॉर्म में बांध कर देखना कठिन है. ऊपरी तौर पर यह एक जीवन-कथा या आत्मकथा का आभास देती है क्योंकि यह लेखक के जीवनानुक्रम—जीवन-प्रसंगों और घटनाओं को लिए हुए है. पर यह भी सच है कि यह आत्म तक, निजी जीवन-वृत्त तक सीमित नहीं है. जीवन-वृत्त के बहाने, यह प्रमुख रूप से, समग्र परिवेश को आत्मीयता से उभारती है और आत्मीयता के चलते परिवेश से जितनी टकराहट संभव है, उसे व्यक्त करती है. आत्म और परिवेशगत टकराहट आज उनकी कहानियों और उपन्यासों में भी व्यक्त हुई है. 'जहां मैं खड़ा हूं' कहानी या उपन्यास नहीं है, हालांकि इस में कहानी और उपन्यास जैसी ही पठनीयता और रोचकता है. हां, मोटे तौर पर, सुविधा की दृष्टि से इसे जीवनी या जीवन-वृत्तांत कह सकते हैं.

दरअसल, यह कृति रामदरश मिश्र की जीवन-प्रवृत्ति और सृजन-प्रवृत्ति (जो उनके उपन्यासों, कहानियों, कविताओं और ललित निबंधों में अभिव्यक्त हुई है) के आधारों को स्पष्ट करती है. इससे उनके साहित्य को समझने में मदद मिल सकती है. इससे यह भी लगता है कि उनके जीवन और सृजन में विभाजन नहीं है. इस रचना की खूबी यह है कि आत्मिक स्तरों के साथ-साथ एक विशेष 'देश' और 'काल' में फैले हुए मानवीय संसार के जीवन व्यापारों को, ठोस पात्रों को, उनकी तकलीफों और खुशियों को यह रचना प्रत्यक्ष करती है. सांस्कृतिक संस्कारों और सामाजिक सरोकारों की बेहद संश्लिष्ट और तल्ख पहचान यह रचना कराती है. लेखक का यह कहना सही है— "जहां मैं खड़ा हूं यों तो मेरी जीवन-यात्रा का वृत्तांत है किंतु वास्तव में यह उस परिवेश का वृत्तांत है जहां मेरे जीवन और साहित्य की चेतना, अनुभव और मूल्य-बोध निर्मित हुए." यह परिवेश गांव का है जिसने उन्हें भावुक और संवेदनशील बनाया है. इस परिवेश के सैकड़ों प्रसंगों और संदर्भों में बिंधे-गुंथे अनुभव यहां बिखरे पड़े हैं. सघन अनुभव बिंबों के लिए, अपनी साहित्यिक कृतियों में वे, बार-बार, गांव लौटते हैं. अपने इस सृजन आधार की ओर संकेत करते हुए वे लिखते हैं—"वह अपनी ठोस जमीन है, वह जिसे नहीं प्राप्त है वह यथार्थ जीवन के नाम पर अरूप सार्वभौमिकता के संसार में भटकने के लिए अभिशप्त हो जाता है."

इस पुस्तक में गांव के निजी संदर्भों और सामाजिक संदर्भों का अंतरावलंबन और सन्निधिकरण बड़े मार्मिक ढंग से हुआ है. 'दरअसल यह एक वर्तल जिंदगी थी जिसमें तमाम चीजें, एक दूसरे में समाई हुई थीं, जिंदगी खानों में बंटी हुई नहीं थी. गांव जीवन के साथ रागात्मक संबंधों में बंधा व्यक्ति ही ऐसे संवेदनात्मक बिंबों की सृष्टि कर सकता है:

**'दीवारों के टूटने की एक लय होती है.'** (पृ. 9)

**'आंखों में निरुपायता कस गयी है, एक खाली भविष्य आगे दहाड़ रहा है।'** (पृ. 9)

**'आंखों में एक सीलन भरा सन्नाटा अंटा होता था.** (पृ. 10)

**'अभाव की एक अजीब गंध बाहर भीतर फैली है.'** (पृ. 11)

यहां परिवेश की घटनाएं और स्थितियां अंतर्रात्मा के सीमांतों तक जाती हैं और फैलती हुई सामाजिक सीमांतों से टकराने लगती हैं. बाढ़ के दिनों में गांव में घंटहवा पीपल के पास मुर्दों को जलाने की रस्म को याद करता हुआ लेखक आज की सामाजिक स्थिति पर टिप्पणी करने लग जाता है—"अब घंटहवा पीपल नहीं है, न जाने कब का उजड़ चुका है लेकिन उसने

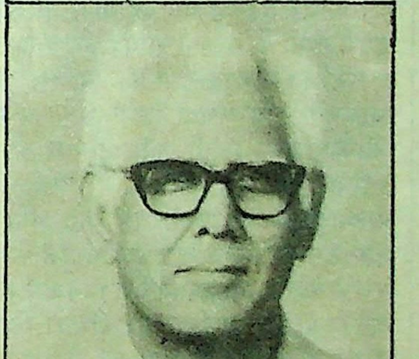
रामदरश मिश्र

जो भय पैदा किया वह जीवित है बल्कि कई गुणा बढ़ गया है. हां, परिदृश्य बदल गया है—पूरे समाज और देश में जगह-जगह घंटहवा पीपल दीख रहे हैं जिन पर मरे हुए मूल्यों, संवेदनाओं और संबंधों के घंट टंगे हुए हैं और नीचे जातिवाद, क्षेत्रवाद, स्वार्थ, हिंसा के भयानक भूत अट्टहास करते हुए तांडव कर रहे हैं और तमाम जीवित इंसानों की भूखी-प्यासी और डरी आंखों की हंसी छिन गयी है. पीपल का भूत तो अरूप है और मेरे अवचेतन में है लेकिन ये भूत तो ठोस हैं और जीते जागते इंसानों के सिर पर है." परिवेश के इस चित्रण के पीछे झलक रहा है लेखक का गहरा सामाजिक सरोकार और इसीलिए वे अपनी जिंदगी को दूसरों की जिंदगी के हिस्से के रूप में देखते हैं. उनके पास है स्थिति और संबंध के तर्क को तोड़ने वाली संवेदनात्मक दृष्टि जो मूल्य की तलाश से जुड़ी हुई है—"आज की पढ़ी-लिखी पीढ़ी की दृष्टि में वे उजड्ड थे, गंवार थे लेकिन क्या वे जीवन-विवेक-शून्य भी थे. क्या अज्ञानी भी थे? मुझे ऐसा नहीं लगता. लगता है वे कहीं ज्यादा विवेकवान थे. जीवन को सही ढंग से जीने की समझ उनमें कहीं ज्यादा थी, उनमें एक निर्भीकता थी जो उजड्ड होते हुए भी कहीं अधिक मानवीय थी. वे कुंठा, संत्रास, अकेलापन, टूटन ढोने वाले आधुनिक सभ्य पुरुष नहीं थे. वे बाहर से भीतर तक धधकती हुई शलाका की तरह जीने वाले लोग थे."

लिखने का अर्थ अगर अभिव्यक्ति है तो इस अभिव्यक्ति का अर्थ मनुष्य के हक में और मनुष्य विरोधी ताकतों के खिलाफ हस्तक्षेप करता भी है. यह प्रश्न अलग है कि यह हस्तक्षेप कैसा है—पोला है या कड़ा, मूर्त है या अमूर्त, जुझारू है या ठस्स, सपाट है या व्यंग्यात्मक, सरल है या व्यंजित या नुकीला? 'जहां मैं खड़ा हूं' का हस्तक्षेप सांस्कृतिक प्रकृति का है—विश्वास, निष्ठा और मूल्य पर खड़ा—मनुष्य के हक में, मनुष्य विरोधी ताकतों के खिलाफ—मूर्त और सहज किस्म का हस्तक्षेप. लेखक ने इस हस्तक्षेप से पैदा होने वाली व्यावहारिक कठिनाइयों और विसंगतियों को नजरंदाज नहीं होने दिया है. उदाहरण के लिए अपने सामंती ब्राह्मण संस्कार से निरंतर जूझते रहने के बावजूद उससे पूरी तरह मुक्त न हो पाने की लाचारगी की ओर उन्होंने एक स्थल पर संकेत किया है—"ऐसा नहीं है कि मैं इस सामंती ब्राह्मण संस्कार से मुक्त रहा हूं. इस संस्कार से मुक्त होने के लिए विचार के स्तर पर बहुत आत्म-संघर्ष करना पड़ता है जो उस समय संभव नहीं था किंतु संवेदना के स्तर



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर मैं उनकी तकलीफ से आहत अवश्य होता था. यों मेरा भी ब्राह्मरूप और मालिक संस्कार कभी-कभी जोर मारता था (और अब एकदम समाप्त हो गया है, यह मैं नहीं कह सकता) और किसी हरिजन के व्यवहार को अपने प्रति अपमानजनक पा कर मैं क्षुब्ध हो उठता था और उसे पीटने की भी इच्छा हो आती थी. हरिजन हो कर उसने मेरे साथ यह सलूक किया, यह सोच कर मैं तिलमिला उठता था किंतु वह क्षणिक होता था और मैंने किसी को पीटा हो, मुझे याद नहीं."

यह भी गौर करने की बात है कि यह दर्शन या राजनीति में हस्तक्षेप करने वाली जीवन-यात्रा नहीं है. यह यात्रा है अपने आस-पास से, गांव से, परिस्थिति से जुड़ते-टकराते हुए आगे बढ़ने की—परिवेश के बदलाव के साथ-साथ स्वयं के बदलाव को आंकते चलने की, परिवेश को ही नहीं स्वयं को भी विश्लेषित करने वाली संवेदनात्मक यात्रा है यह जिसे पढ़ते हुए हम गहरे सर्जनात्मक अनुभव में से गुजरते हैं.

इन जीवन-वृत्तांतों में दर्द और अंतर्वेदना का जो भीगा तार है वह केवल आत्मगत नहीं है, रामदरशजी की पीढ़ी का ही नहीं है, आज की पीढ़ी का भी है. वह दर्द सब का है. स्कूल में पिटाई के दृश्यों की याद दर्दनाक है और इस दर्द को लेखक आज के संदर्भ में भी वैसे ही महसूस करता है और उभारता है. इन जीवन वृत्तांतों की यह एक बहुत बड़ी विशेषता है.

लेखक ने आत्मिक और भावनात्मक धरातलों पर भोगी हुई यातना के संदर्भों को रस्मी अंदाज में या अति नाटकीय बना कर पेश नहीं किया है. प्रसंग में से प्रसंग, घटना में से घटना, स्थिति में से स्थिति निकलती चलती है जो अतीत को वर्तमान में और वर्तमान को अतीत में घुलने देती हैं.

**'जहां मैं खड़ा हूं'** एक ओर जहां जीवन से जुड़े विविध परिवेशों की कथा है, वहीं दूसरी ओर परिवेश के साथ व्यक्ति के संबंधों की कथा भी है. लेखक का विचार इस जीवन कथा को तीन खंडों में लिखने का है. प्रस्तुत पुस्तक पहला खंड है—रामदरशजी की जीवनी का प्रारंभिक हिस्सा—बचपन से जवानी तक की उनकी जीवन-यात्रा! अभी दो खंड आने शेष हैं. वैसे भी जीवनी में जितना कहा जाता है उससे कई गुणा अनकहा छोड़ दिया जाता है. इस ढंग की जीवनी में यह गुंजाइश और ज्यादा रहती है.

**—डॉ. नरेंद्र मोहन**

**चर्चित पुस्तक : जहां मैं खड़ा हूं : रामदरश मिश्र, किताब घर, 917-10 मेन रोड, गांधी नगर, दिल्ली-110031, मूल्य 30.00**

# 'शब्द-बध : एक्सपोजर की सीमा

वीरेंद्र जैन

वीरेंद्र जैन के उपन्यास 'शब्द-बध' को पढ़ते हुए प्रारंभ में ही की गयी यह घोषणा लगातार याद आती रहती है कि "इस उपन्यास का कथा-संसार नितांत काल्पनिक है, सो इस चराचर पर पाये जाने वाले किसी प्राणी से कैसे भी साम्य को महज संयोग या कुयोग ही माना जाये."

यह घोषणा क्यों याद आती रहती है? इसलिए कि यदि आप हिंदी के प्रकाशन-जगत से जरा भी परिचित हैं तो उपन्यास के पात्रों और परिस्थितियों में आपको कुछ जानी-पहचानी सूरतें नजर आने लगती हैं. नाम भले ही बदले हुए हों, किंतु आप पहचान जाते हैं कि ये लोक हितकारी साहित्यमंडल के संचालक लालचंद्र, सूर्योदय प्रकाशन वाले दीपक जी, दीपक जी के मूर्धन्य लेखक-पिता अरिहंत कुमार, वर्णमाला प्रकाशन वाले बलभद्र चौधरी, प्रतिबद्ध प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड की प्रबंध निदेशिका कांता कौर, समग्र साहित्य भंडार वाले केदारनाथ, प्रकाशन का नाम अंधविश्वासियों जैसा रखकर वामपंथी साहित्य छापने वाले गोविंदजी, आदिनाथ और उनके पोते के संचालक चोरनाथ आदि वास्तव में कौन हैं. इन प्रकाशकों के द्वारा शोषित, प्रवंचित, अपमानित और उत्पीड़ित लेखक आनंद आचार्य को भी आप अनायास ही पहचान सकते हैं, जो इस उपन्यास के नायक हैं. अतः उपन्यास पढ़ने के बाद लगता है कि इसके कथा-संसार के नितांत काल्पनिक होने की घोषणा संभवतः कानूनी झंझटों से बचने के लिए की गयी होगी.

उपन्यास पढ़ने के बाद यह भी लगता है कि इसमें नामों के अलावा शायद सब कुछ सच है. प्रचलित शब्दावली में कहें तो लेखक का स्वानुभूत सत्य अथवा जिया-भोगा यथार्थ. रमाकांत द्वारा लिखी गयी भूमिका में भी उपन्यास के प्रसंगों को "लेखक के आत्मानुभव पर आधारित" कहा गया है. अतः उपन्यास में जो कुछ कहा गया है, उसके सच अथवा प्रामाणिक होने के विषय में संदेह नहीं किया जाना चाहिए और भूमिका-लेखक के इन शब्दों को सच मानकर ही रेखांकित करना चाहिए कि यह रचना "उस भ्रष्ट समाज की कलई खोलती है जिसमें एक सम्मानजनक और जायज धंधे के नाजायज हथकंडे चलते रहते हैं." और इसमें हम "अपनी देखी-बूझी दुनिया के ऐसे सत्यों से परिचित होते हैं जो हमें दहला देते हैं." भ्रष्ट समाज की कलई खोलना वाकई साहस का काम है और इसमें जोखिम भी उठानी पड़ती है, इसलिए यह भी स्वीकार किया जाना चाहिए कि इस उपन्यास का लिखा जाना "एक साहसपूर्ण और जोखिम भरा प्रयास है". मगर सवाल यह है कि इस प्रयास की सार्थकता क्या है? दूसरे शब्दों में कहें तो एक साहित्यिक कृति के रूप में इस उपन्यास की अर्थवत्ता और गुणवत्ता क्या है?

कहने का मतलब यह है कि भ्रष्ट समाज की कलई खोलना और दहला देने वाले सत्यों से परिचित कराना एक तथाकथित खोजी पत्रकार के लिए तो अपने कर्तव्य की इतिश्री हो सकता है, लेकिन एक साहित्यिक कृति का मूल्यांकन केवल इन चीजों के आधार पर नहीं हो सकता. साहित्यिक कृति भंडाफोड़ भी करती है, और अक्सर करती है, लेकिन वह इससे आगे भी कुछ करती है. वह समूचे समाज को भले ही न बदल पाये, मगर अपने पाठक को जरूर बदलती है. वह उसे पहले से ज्यादा सचेत, समझदार और समर्थ बनाती है. एक अच्छा उपन्यास यह काम प्रातिनिधिक परिस्थितियों और प्रातिनिधिक पात्रों के यथार्थ चित्रण के जरिए करता है. वह एक दृष्टिसंपन्न चित्रण होता है, जो पाठक को एक नयी दृष्टि देता है. जो यथार्थ-चित्रण ऐसा नहीं कर पाता, वह आत्मानुभव पर आधारित होने और सर्वथा प्रामाणिक होने का दावा करने के बावजूद प्रकृतवादी ही रह जाता है, यथार्थवादी नहीं बन पाता. केवल भंडाफोड़ तक सीमित रह जाने वाला उपन्यास प्रकृतवाद की सीमाओं का अतिक्रमण नहीं कर पाता.

दुर्भाग्य से 'शब्द-बध' इन सीमाओं का अतिक्रमण न कर पाने के कारण एक अच्छा यथार्थवादी उपन्यास बनते-बनते रह गया है.

इस उपन्यास में एक युवा, ईमानदार, मेधावी और कर्मठ लेखक को जीविका के लिए विभिन्न प्रकाशकों के यहां नौकरी करते दिखाया गया है. अपनी इन विभिन्न नौकरियों के दौरान वह प्रकाशन-जगत के काले कारनामों से परिचित होता है और अपनी ईमानदारी तथा स्वाभिमान के चलते या तो नौकरी से निकाल दिया जाता है, या स्वयं ही नौकरी छोड़ने को विवश हो जाता है. अपने लेखन से भी वह जीविका चलाने में असमर्थ रहता है, क्योंकि अव्वल तो नये लेखक को



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़े प्रकाशक छापने को तैयार नहीं होते, यदि छाप भी देते हैं तो अपनी आपसी प्रतिस्पर्द्धाओं में से कुचल कर खत्म कर देते हैं. उपन्यास के अंत में लेखक की एक छोटे प्रकाशक द्वारा छपी पुस्तक को एक बड़े प्रकाशक द्वारा संपूर्ण रूप में खरीद कर जला दिया जाता है.

इसमें कोई संदेह नहीं कि वीरेंद्र जैन ने एक सदाशयी रचनाकार की दृष्टि से प्रकाशन-जगत और उससे जुड़े लेखन तथा शिक्षा के क्षेत्रों में व्याप्त भ्रष्टाचार और निहित स्वार्थों के छल-छद्मों को बड़ी सूझ-बूझ के साथ उजागर किया है और उपन्यास में कई प्रसंग सचमुच बड़े मार्मिक तथा उद्वेलित करने वाले हैं. परंतु पूरे उपन्यास में न तो इसके नायक के मन में, और न शायद लेखक के ही मन में, इस भ्रष्ट व्यवस्था का कोई विकल्प है. विकल्प न होने पर की गयी आलोचना का कोई आधार नहीं होता और वह अधूरी होने के कारण एक अरण्य-रोदन बन जाती है, जो प्रायः हताशा पैदा करता है

यथार्थवाद का मतलब है सतह पर दिखायी देने वाली चीजों के सारतत्व को सामने लाना और समाज के अंतर्विरोधों को उनकी पूर्णता तक पहुंचाना. हालांकि वीरेंद्र ने इस बात को जोर देकर रेखांकित किया है कि पूरा प्रकाशन उद्योग भ्रष्ट नहीं हो गया है और एकदम निराश हो जाने का कोई कारण नहीं है. पृष्ठ 110 और 111 पर उपन्यास के नायक आनंद और उसके साथी के बीच का वार्तालाप इसका प्रमाण है. मगर इस वार्तालाप का एक अंश इस उपन्यास के लेखक की आलोचना के लिए भी इस्तेमाल किया जा सकता है.

यदि लेखक ने प्रकृतवाद की सीमाओं से उबरकर यथार्थवादी दृष्टि अपनायी होती तो भ्रष्ट समाज-व्यवस्था में लेखक की अस्मिता का सवाल उसे केवल प्रकाशन-व्यवसाय से जुड़ा सवाल ही न नजर आता. समाज की व्यवस्था ज्यों की त्यों रहे और प्रकाशन-व्यवसाय ठीक हो जाये, ऐसा कभी नहीं हो सकता. इसलिए जरूरत इस बात की थी कि वीरेंद्र व्यवस्था के ही अंतर्विरोधों पर उंगली रखते. और तब शायद उन्हें लेखन और प्रकाशन की सांप्रतिक दरिद्र अवस्था का वास्तविक समाधान सुझानेवाली वे आवाजें भी अपने समाज में सुनायी पड़ जातीं, जो आज "सबको शिक्षा सबको काम" मांग रही हैं.

**डा. रमेश उपाध्याय**

**शब्द-बध (उपन्यास): वीरेंद्र जैन, सचिन प्रकाशन, 7/34 दरियागंज, नयी दिल्ली-2, मूल्य : 40 रुपये**

नाटक

# मायावी सरोवर में नहाती अर्थ-छायाएं

**शैक्षणिक संस्थानों में पाठ्येतर क्रिया-कलापों का सहअस्तित्व विद्यार्थियों की मानसिक सक्रियता और सृजनात्मक जीवंतता का गवाह होता है. कालेजों में** इस तरह का शौकिया संस्कृतिकर्म एक ओर युवा प्रतिभा को गहरे लगाव के साथ किसी कला माध्यम से उलझने का मौका देता है तो दूसरी ओर कोई व्यावसायिक या आर्थिक दबाव न होने के कारण लीक से अलग हटकर नये और मौलिक प्रयोगों का साहस भी. गत दिनों लेडी श्रीराम कालेज द्वारा प्रस्तुत डॉ. शंकर शेष का 'अरे! मायावी सरोवर' इस तथ्य का ताजा उदाहरण है.

नवभारत टाइम्स के सहयोग से लेडी श्रीराम कालेज के सभागार में प्रस्तुत डॉ. शंकर शेष का यह नाटक आये दिन मंडी हाउस परिसर में होने वाले आम नाटकों से इस नजरिए से एकदम अलग है. नियमित पेशेवर रंगमंच से सर्वथा परे हास्य-व्यंग्य की ताजगी से भरा यह नाटक लगभग पूरी तरह शौकिया या अव्यावसायिक रंगमंच के स्वस्थ विकास का नमूना है.

किमिको पंकज के निर्देशन की यथार्थवादी परिकल्पना में नाटक कई अर्थ-छायाओं के साथ उभरता है. अपने निर्देशकीय में किमिको का कहना है : "सूत्रधार, राजा, मंत्री, रानी, राजगुरु, कुलपति, संन्यासी और मायावी सरोवर की पुरानी कथा दुहराता यह नाटक दरअसल आज का, आज के प्रशासक, आज के चाटुकार, आज की औरत और अंततः आज के इस पूरे जटिल उलझे-पुलझे मायावी जीवन सरोवर का है."

नाटक में सचमुच वे सूक्ष्म सूत्र यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं जिनसे व्यवस्था या समाज के भीतर चलने वाले भ्रष्ट रूप अथवा इंसान की जिंदगी का यथार्थ रूप खुलकर सामने आ जाता है. स्त्री को सत्य और पुरुष को व्यवस्था का प्रतीक बताकर यह नाटक स्त्री जीवन को ज्यादा सृजनशील और संतोष भरा प्रमाणित करता है.

ऋषि-कबीर कौशिक को छोड़ दें (जिन्होंने असाधाणा प्रतिभा दिखाई है) तो सूत्रधार से लेकर राजा, मंत्री, कुलपति (उल्लू), पत्रकार (कुत्ता), सेनापति, धर्मगुरु, कुमार, अंशुमाली और इंद्र तक सभी पुरुष पात्र कालेज की अभिनय कुशल कन्याओं द्वारा ही अभिनीत किये गये हैं. कुत्ते का पत्रकार होना या गाय का डेरी मैनेजर होना विडंबनापूर्ण स्थितियों के भीतर व्यवस्था और सामाजिक ढांचे पर चोट करता है, तो उल्लू का उपकुलपति होना विद्यार्थी, शिक्षा और राजनीति के त्रिकोण को नये आयाम में पेश करता है. उल्लू कुलपति-सोनल होरा, गया-आयशा किदवई, और कुत्ता-दीपिका आनंद के किरदार मजेदार भी हैं और व्यंग्य को उभारने वाले भी.

नाटक का संगीत पक्ष कुछ कमजोर है. शुरू की वंदना "दर्शक देव पधारो" तो अच्छी लगती है लेकिन मायावी सरोवर के राजा के चले जाने पर "आवाज दे कहां है" की तर्ज पर "आजा मेरे राजा, अब बज उठा है बाजा" जैसे प्रसंगों की शैलीबद्ध गतियों में रोचकता तो बनी रहती है किंतु सपाट गायन के कारण अर्थवत्ता नहीं उभर पाती. रिकार्डेड संगीत पर ओडिसी की 'आरभी पल्लवी' का उपयोग भी क्षेपक जैसा ही लगता है.

वैसे इस बात को मद्देनजर रखते हुए कि सारा प्रयास कालेज की छात्राओं का है, किसी पेशेवर रंगमंडल का नहीं—प्रस्तुति इतनी आत्मीय लगती है कि दर्शक अनजाने ही उससे गहरे स्तर पर जुड़ जाता है □

**मंजरी सिन्हा**



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# सारिका कथा पहेली

**कहानियां गौर से पढ़िये**
**और हर महीने १८० रुपये के पुरस्कार जीतिए**

**नये स्तंभ 'सारिका कथा पहेली' में भाग लेने के लिए आप सभी आमंत्रित हैं. प्रतियोगियों को 'सारिका' के इसी पृष्ठ पर पूर्तियां भेजनी होंगी. पूर्तियां सादे कागज पर न भेजें. इस कथा-पहेली के सभी प्रश्न 'सारिका' दिसंबर '८७ अंक पर आधारित हैं. कार्यालय में डाक द्वारा हल प्राप्त होने की अंतिम तिथि २० जनवरी, १९८८ है. पुरस्कार विजेताओं के नामों की घोषणा मार्च १९८८ के अंक में की जायेगी.**

## सारिका कथा पहेली : जनवरी 1988

१. इन पात्रों में, वह कौन-सा पात्र है जो अपने सर्जक से भी कहीं ज्यादा प्रसिद्धि पा गया और वर्ष १९८७ में उसका [जन्म] शताब्दी वर्ष भी मनाया गया. सही पर [ ✓ ] अंकित करें.
[डान क्विग्जोट/ शरलॉक होम्स/देवदास]

२. यह पात्र किन कहानियों के हैं?
कोष्ठक में कहानियों के नाम लिखें :
१. आरती [ ], २. केतन [ ]
३. दीपक शर्मा [ ]

३. शौर्यगाथा... में 'हीरोल' शब्द का प्रयोग हुआ है. इसका अर्थ है......

४. यह इस अंक की सर्वोत्तम कहानी ............................ है.

५. साज-सज्जा और ले-आउट की दृष्टि से ये दो पृष्ठ सर्वोत्तम कहे जा सकते हैं :
१२-१३ [ ] २२-२३ [ ] २७ [ ]
५६ [ ] ६०-६१ [ ]

६. "मूर्ति को पत्थर समझने वाला कभी भी भगवान का भक्त नहीं हो सकता. इसी तरह पत्नी को मात्र वासना का साधन समझने वाला उसके दूसरे रूपों को महसूस नहीं कर सकता." यह कथांश किस कहानी का है?

७. इस अंक के मुखपृष्ठ की मुख्य विशेषता क्या है? :..................

८. 'शरलॉक होम्स का भ्रम' कहानी के प्रकाशन में क्या त्रुटि रह गयी है? :
..........................................................................

९. "जो साहित्य में व्यक्तिगत या व्यक्तिपरक की दुहाई देते हैं वे बहुत ही भोंडी बात करते हैं." यह कथन किसका है? : ...............

१०. इस कहानी में अपराधी बत्तख के कारण पकड़ा जाता है? :

नाम.................................आयु...............................

पता...................................................................

..........................................................................

आप अच्छा साहित्य पढ़ते हैं और स्वयं लेखक बनना चाहते हैं....पर कहीं कुछ ऐसा अवरोध आ जाता है कि आप लिख नहीं पाते. इस स्तंभ के अंतर्गत ऐसे अनुभव प्रकाशित किये जायेंगे जो नयी पौद की दिक्कतों को सामने रखें. आप क्या और क्यों लिखना चाहते हैं....स्पष्ट करते हुए अपनी कठिनाइयां चित्र सहित ३०० शब्दों में लिख भेजिए.

# नयी पौद

## रचनात्मक जागरूकता जरूरी

● महेश 'अनुज'

साहित्य की विभिन्न विधाओं में रुचि एवं कविता के क्षेत्र में एक संग्रह की उपलब्धि सहित अवसर कहानी-लेखन में भी अपने हाथ आजमाने का प्रयत्न किया. कहानी-विधा में हर बार कहानी लिखने के बाद कई ऐसी मुश्किलों का सामना करना पड़ा, जिन्हें सुलझाए बिना अपने लेखन को चालू रखना संभव नहीं. ये मुश्किलें मूलतः विषय को लेकर होतीं हैं. जो विषय जहन में उतर पाते हैं, कई बार उनके चरित्रों का वर्णन करना कठिन लगने लगता है. हालांकि इसका कारण जानता हूं कि उन चरित्रों को वास्तविक जीवन में देखा नहीं होता अथवा उनके बारे में कभी गंभीर रूप से विचार नहीं किया होता. तब लगने लगता है कि कहानी लेखन के लिए खास मानसिकता शुरू से ही बना लेनी चाहिए जैसे कि जीवन की घटनाओं तथा आने वाले चरित्रों को उसी वक्त ध्यान से देखना तथा मस्तिष्क में उनकी तथा उनसे जुड़ी हर बात एवं यथार्थ को जैसा का तैसा उतार लेना. बात यहीं खत्म नहीं हो जाती, क्योंकि इस बात का अंदरूनी अभ्यास भी होना चाहिए कि हर बात के विषय में बाद में गहराई से सोचते हुए तुलनात्मक पक्ष भी विचारा जाए.

नए-नए लेखन मे एक बड़ी रुकावट तब आती है जब हम कहानी में अब तक के विकास पर नजर डालते हैं और इस कोशिश में रहते हैं कि हम अपने विषयों अथवा शिल्प में कहीं पिछड़ तो नहीं रहे. ये भय हमारा काफ़ी समय ले लेता है और एक कहानी के बाद दूसरी कहानी लिखने के बीच एक लंबा अंतराल आ जाता है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# स्वस्थ शरीर

— विशेष परिशिष्ट

## स्वस्थ शरीर आदमी की पहली जरूरत है.

एक कहावत है कि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क होता है. याने जो व्यक्ति शरीर से चुस्त और दुरुस्त होगा, उसका मस्तिष्क भी उतना ही बुद्धि और विवेक से संपन्न होगा. लेकिन शरीर का स्वस्थ होना ही पर्याप्त नहीं है. उसका सुंदर होना भी अनिवार्य है. क्योंकि सुंदर और स्वस्थ शरीर ही दूसरों को आकर्षित करता है, और ऐसा व्यक्ति ही जीवन में सफलता प्राप्त करता है.

स्वस्थ और सुंदर शरीर पाने के लिए जरूरी है कि हम अपने खान-पान की आदतें ठीक रखें और नियतिम व्यायाम करें. भोजन उतना ही लें जिससे हमारे दैनंदिन के कार्यों में खर्च होने वाली उर्जा की कैलरी हमें प्राप्त हो, उचित मात्रा में प्रोटीन, विटामिन तथा खनिज आदि अनिवार्य तत्व हमें मिल सकें. कई बार जब भोजन में इनमें के कुछ चीजें कम रह जाती हैं तो शरीर कमजोर होने लगता है. ऐसे में च्यवनप्राश आदि आयुर्वेदिक अथा विभिन्न प्रोटीनों, विटामिनोंवाले एलोपेथिक टॉनिक लेने से उनकी पूर्ति हो जाती है और शरीर फिर से स्वस्थ हो जाता है.

व्यायाम करने से शरीर की मांसपेशियां लचीली रहती हैं तथा सही आकार में रहती हैं. इसके अतिरिक्त व्यायाम करते हुए हम जो श्रम करते हैं उससे शरीर के विभिन्न भागों में जमी चर्बी भी गलती है जिससे शरीर में मोटापा नहीं आता, और इस प्रकार शरीर सुडौल बना रहता है.

व्यायाम न करने से शरीर में जगह-जगह चर्बी जमा होने लगती है और मांसपेशियों का लचीलापन खत्म हो जाता है. चूंकि मांसपेशियों में चलने की अधिक शक्ति नहीं रहती इसलिए आदमी किसी भी काम को करते हुए जल्दी ही थकने लगता है. इतना ही नहीं, मोटापा बढ़ने के साथ-साथ धममनियों में कोलस्ट्रोल भी जमा होने लगता है, और हृदय को शरीर में रक्त का प्रवाह बनाये रखने के लिए अधिक कार्य करना पड़ता है. ऐसे में कई तरह की हृदय की बीमारियां होने का डर भी बना रहता है.

इसलिए जरूरी है कि हमारी खान-पान की आदतें ठीक रहें और हम नियमित व्यायाम करें.

## झंडु फार्मेसी : एक परिचय

झंडु फार्मेस्युटिकल लिमिटेड पिछले 75 वर्ष से भी अधिक बरसों से आयुर्वेद के विकास में जुटी हुई संस्था. आयुर्वेद की सेवा में समर्पित.

इस संस्था ने आज के आधुनिक दौर में बहुत से लोगों के दृष्टिकोण को बदला है. उनमें विश्वास जगाया है और इस देश की सदियों पुरानी परंपरा को जन-जन तक पहुंचाया है. झंडु आयुर्वेदिक दवाएं बनाने वाली कोई एक संस्था मात्र नहीं रह गयी बल्कि एक आंदोलन का प्रतीक बन चुकी है. जिसे देश और विदेश में एक सम्मान मिला है. यह महान उपलब्धि कोई साल दो साल में नहीं मिली बल्कि तीन-चौथाई सदी की कोशिशों का परिणाम है.

यूं तो हर संस्था की सफलता के पीछे कई हाथ होते हैं. लेकिन असल में झंडु की सफलता का श्रेय उसके प्रेरणा पुरुष श्री झंडु भट्ट जी को जाता है. उन्होंने इस संस्था की आधारशिला रखी और उन्हीं के नाम पर इसका नाम रखा गया झंडु, जो आगे चलकर झंडु फार्मेस्युटिकल लिमिटेड हुआ.

आयुर्वेदिक चिकित्सा की पारिवारिक परंपरा झंडु भट्ट जी पर आकर थम नहीं गयी. उनके प्रयासों को उनके पौत्र श्री जुगतराम शंकर प्रसाद जी ने आगे बढ़ाया. जुगतराम शंकर प्रसाद जी ने राजकोट लेबोरेट्रीज में प्रोफेसर ली स रसायनशास्त्र और औषध विज्ञान की शिक्षा ली. आयुर्वेद का विस्तृत अध्ययन करके अधिक से अधिक अनुभव प्राप्त किया. तब 1910 ई. में बंबई नगर में झंडु फार्मेस्युटिकल वर्क्स की बुनियाद रखी. उन्होंने तीन चौथाई सदी पहले जो बीज रोपा था आज उसने एक विशाल वृक्ष का रूप ले लिया है. और झंडु फार्मेस्युटिकल लिमिटेड के नाम से हमारे सामने है अगर यह कहा जाए कि जुगतराम शंकर प्रसाद वैद्य जी की दूरदृष्टि बाद में आने वाली कितनी ही संस्थाओं के लिए अनुकरणीय बन गयी तो अनुचित न होगा.

शुद्ध, विश्वसनीय औषधियां बनाना बेशक एक महत्वपूर्ण काम है. लेकन उनके प्रति लोगों में विश्वास जगाना और व्यसायिक स्तर पर उन्हें सफल बनाना भी कम महत्वपूर्ण नहीं है. शुरू से ही कम्पनी के इस पक्ष को संभ्राता श्री मथुरादास भक्तिदास पारेख जी ने. झंडु फार्मेस्युटिकल की अपार व्यवसायिक सफलता में उनकी सूझ-बूझ और सही आर्थिक निर्णयों का बड़ा योगदान है. यह उन्हीं के प्रयासों का परिणाम है कि झंडु फार्मेस्युटिकल का शुमार आज देश की आर्थिक रूप से सुदृढ़ कम्पनियों में होता है और कम्पनी के अंशधारियों (शेयर होल्डर्स) को हर तरह का इत्मीनान है. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# साठ साल के बूढ़े या साठ साल के जवान ?

कभी आपने ग़ौर किया है कि सड़क पर दौड़ते यह बुजुर्ग ६० बरस की उम्र में भी क्यों शक्ति और स्फूर्ति से भरपूर हैं? जबकि आप अभी ३० ही के हैं फिर भी थके-थके से रहते हैं.

इसका जवाब है, केसरी जीवन. हर दिन, दिन में दो बार दो छोटे चम्मच.

**ज़ाफ़रान (केसर)–अनमोल तत्त्व!**
केसरी जीवन की बोतल खोलिए. ज़ाफ़रान की लुभावनी खुशबुएँ सबसे पहले आपका स्वागत करेंगी. शुद्ध, असली ज़ाफ़रान. दुनिया की सब से महँगी जड़ी-बूटियों में से एक. जिसे ख़ास तौर से कश्मीर की वादियों से चुना गया.

केसरी जीवन में ज़ाफ़रान के अरोग्यकर और सौंदर्यवर्धक गुणों के साथ-साथ ताज़ा आँवला और कई दूसरी जड़ी-बूटियाँ मिली हुई हैं. यह सब मिलकर आपके शरीरगठन को मज़बूत करते हैं. शरीर के टिशूज़ को वृद्धावस्था में भी चुस्त बनाए रखते हैं और आज की तेज़ रफ़्तार ज़िन्दगी के तनावों से आपको मुक्त रखने में आपकी मदद करते हैं. तो आज ही से इसे अपनी आदत बना लीजिए. और जीवनभर बीमारियों से मुक़ाबला करने की शक्ति जुटा लीजिए. वृद्धावस्था में सेहत का अनमोल रत्न आप भी पा लेंगे, और सारी ज़िन्दगी, ज़िन्दगी से भरपूर तरो-ताज़ा रहेगी.

## झंडु केसरी जीवन

ZP/8/244 HIN

**रग-रग में जान – ज़िन्दगी की शान**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## शारीरिक व्यामाम के उपकरण

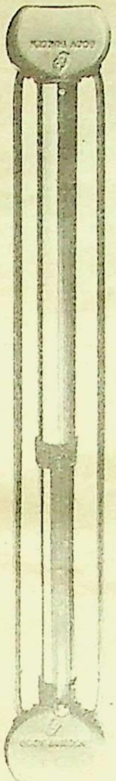

महाराष्ट्र फिटनेस इक्विपमेंट्स कंपनी प्राइवेट लिमिटेड शरीर को चुस्त बनाने वाले उपकरणों का निर्माण करती है. इनके द्वारा बनाये गये सभी उपकरणों में आइसोटोनिक तथा आइमोमीट्रिक, दोनों प्रद्धतियों के व्यायामों का अच्छा सम्मिश्रण किया गया है.

इस कंपनी द्वारा पहला उपकरण जो बाजार में भेजा गया वह था—बॉडी बिल्डर. यह मांसपेशियों को लचीला बनाने तथा शरीर को चुस्त बनाने में सहायता करता है. इस उपकरण को ग्राहकों तथा व्यापारियों ने बहुत पंसद किया. इसकी बिक्री से उत्साहित होकर ही महाराष्ट्र फिटनेस इक्विपमेंट्स कंपनी लिमिटेड ने एक और उपकरण बाजार में भेजा है. इस उपकरण का नाम है. टमी एलिमिनेटर याने पेट घटाने वाला उपकरण. यह काफी हल्का-फुल्का उपकरण है और इसे आसानी से कहीं भी ले जाया जा सकता है.

दोनों उपकरणों पर कुछ ही मिनट के हल्के फुल्के व्यायाम से अच्छे परिणाम निकलते हैं. और इनकी कीमतें भी इतनी कम हैं कि आम आदमी इन्हें खरीद सकता है. □

## व्यक्तिगत दुर्घटना बीमा सामाजिक सुरक्षा योजना

केंद्र सरकार ने १९८५ में लगभग १०० जिलों में समाज के कमजोर वर्ग के हित में यह बीमा योजना शुरू की थी. वर्ष १९८६ में १०० और जिलों में यह योजना शुरू की गयी. सरकार का इरादा है कि सातवीं पंचवर्षीय योजना अवधि के अंत तक पूरे देश में यह योजना लागू हो जाये.

अगर किसी गरीब परिवार के कमाने वाले सदस्य की किसी दुर्घटना में मृत्यु हो जाती है और उसे किसी भी अन्य स्रोत से हर्जाना नहीं मिलता तो इस योजना के अंतर्गत उसे तीन हजार रुपये की राहत राशि दी जायेगी. इस योजना में वे ही परिवार (पति पत्नी और उन पर निर्भर बच्चे) शामिल होगे जिनकी कुल वार्षिक आय 5000 रुपये से कम है.

किसी भी मौत की दशा में मौत के ९० दिन के भीतर दावा जांच एवं निर्धारण अधिकारी के समक्ष अपना दावा प्रस्तुत करना होता है.

विभिन्न बीमा कंपनियों को क्षेत्र बांट दिये गये हैं. ये इस प्रकार है :

नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड : उत्तरी तथा उत्तर पूर्वी क्षेत्र के सभी राज्य एवं केंद्र शासित प्रदेश

न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड : पश्चीमी क्षेत्र के सभी राज्य एवं केंद्र शासित प्रदेश

ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड : उत्तरक्षेत्र के सभी राज्य एंव केंद्र शासित प्रदेश

यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड : दक्षिण क्षेत्र के सभी राज्य एवं केंद्र शासित प्रदेश □


**Now! Getting into shape is a treat and not a treatment...**
**What's more, it's within your means!**

**A portable device**

In Europe they have developed a 1 kg exercise device you can carry in your overnight bag. They call it 'NO STOMACH'. Designed specifically to eliminate all excess fat from your stomach,it is a stretching and exercising device made with one/two steel coil springs, so you can choose the level of workout you want.

**10 Minutes a day and your Pot Belly will be gone!**

That's our guarantee. If you're not satisfied with how it works for you, return it for full refund. There are six simple exercises to do and you can do them almost anywhere. In a hotel room, in your own home etc. That is why **bb TUMMY ELIMINATOR is the answer for people who travel, who like to have good meals but who don't want the belly that often comes as a result.**

**ONLY Rs.168/- single spring for Women & Men**
**Rs.198/- double spring for Men only**

**14-DAY FREE HOME TRIAL**

**If you are not satisfied with the results you may return everything within the 14-day free trial period for immediate refund (Less Rs. 28/- towards postage.)**

**Also available at all leading sports shops.**

**FREE! Exercise Chart**

Introducing

TUMMY ELIMINATOR

**18 MONTHS' UNCONDITIONAL GUARANTEE!**

**It is built of superior materials with superior technology!**


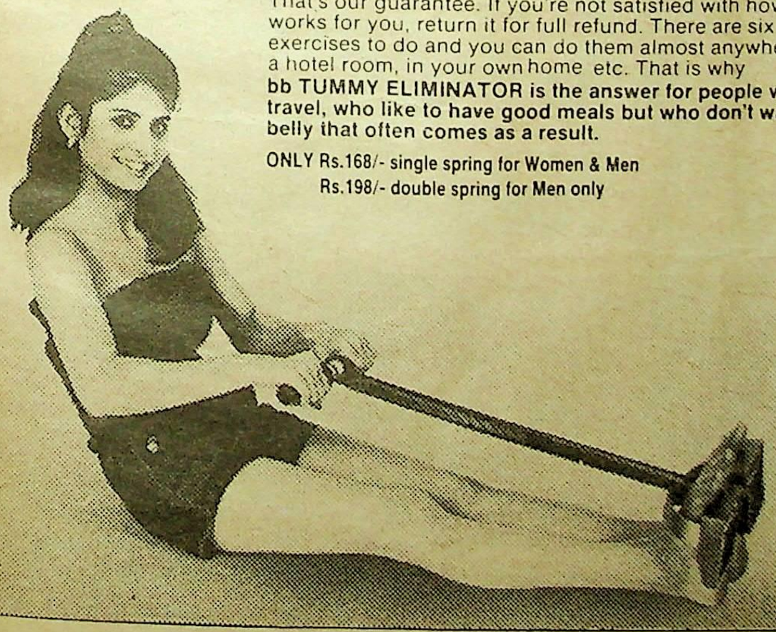


To SR 1
**MAHARASHTRA FITNESS EQUIPMENTS CO. PVT. LTD.**
Krishna Kunj, 2 Main Avenue, Santa Cruz,(West), Bombay 400 054

Please send me
□ bb Tummy Eliminator (Single spring) [Rs.168/-]
□ bb Tummy Eliminator (Double spring) [Rs.198/-]
✓Tick your preference

by
□ Registered Post. I am sending Rs.168/- or Rs.198/-as required by D.D./I.P.O./M.O. No ______ dated ______
(Payable to Maharashtra Fitness Equipments Co. Pvt. Ltd.)
□ V.P.P. I promise to pay postman Rs 168/- or Rs.198/- as required on delivery
✓Tick appropriate box

Name ______
Address ______
______
Signature ______




CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# इन सबको तो है बचाता ...
# जी आई सी का बीमा छाता

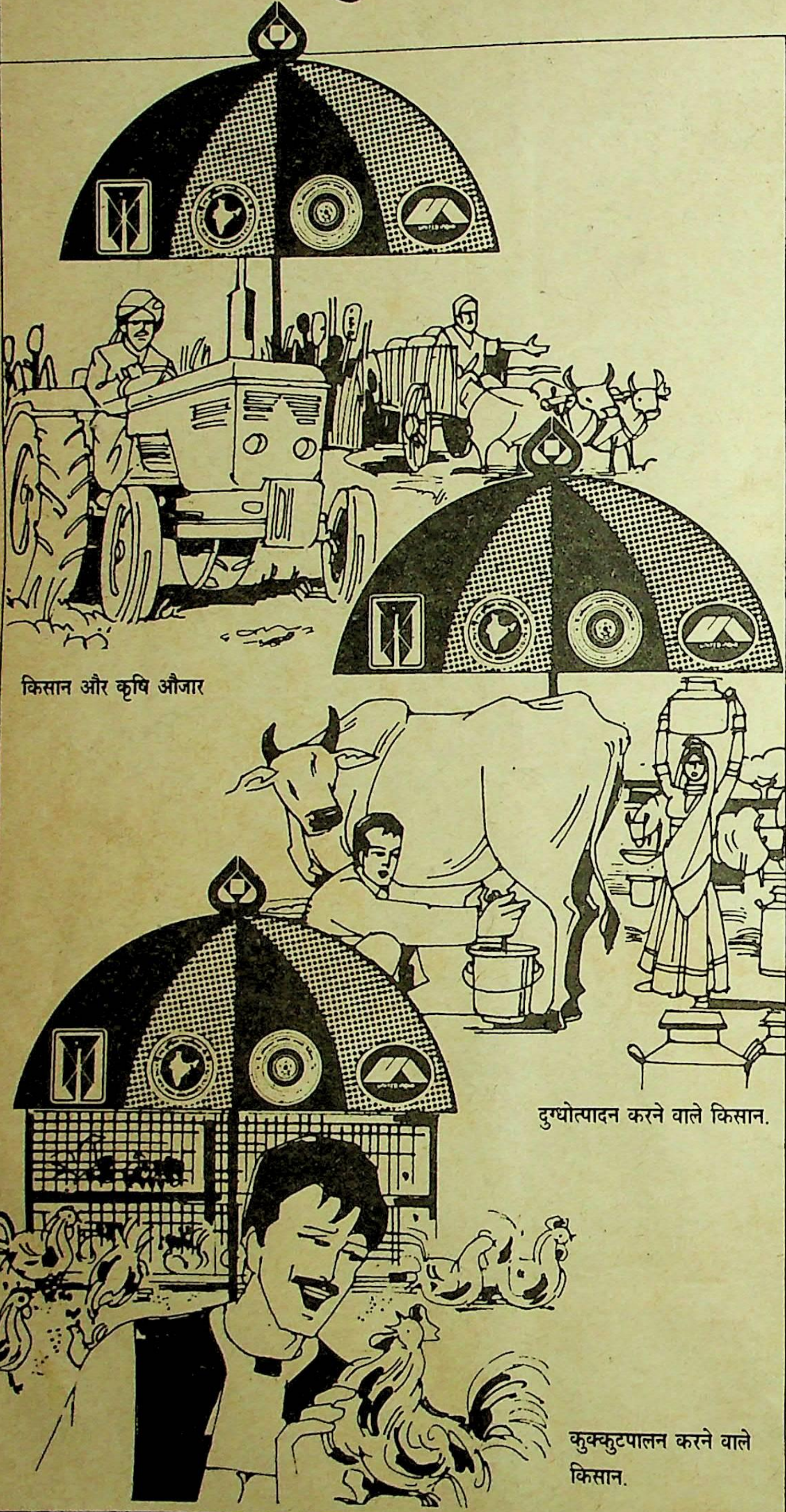

किसान और कृषि औजार

दुग्धोत्पादन करने वाले किसान.

कुक्कुटपालन करने वाले किसान.

## और आप?

आपको अकसर तरह तरह के ख़तरों का सामना करना पड़ता है। कभी बाढ़, सूखा और कभी तूफ़ान आपके मवेशियों, या मालअसबाब को मटियामेट कर देते हैं... कभी बैलगाड़ी बैल दुर्घटना की चपेट में आ जाती है–कभी पम्पसेट या ट्रैक्टर ही ठप्प पड़ जाते हैं--इन सबके कारण आपके ऊपर ख़र्च का बोझ तो बढ़ता ही है–परेशानी सो अलग !

इन सब समस्याओं से अपने को सुरक्षित करने का एक ही तरीका है–वह है जी.आई.सी. का बीमा छाता।

आपकी जरूरत और सुविधा के मुताबिक जी आई सी. के पास विविध प्रकार की पॉलिसियां हैं। यदि आपने बीमा करवाया हुआ है, तो माल असबाब के नुकसान की हालत में आपको कम्पेन्सेशन (हरजाना) मिलता है। बीमे के कारण आपको जो सुरक्षा, हिफाजत और मानसिक शांति मिलती है, उसके सामने आपके द्वारा भरा जाने वाला मामूली सालाना प्रीमियम कुछ भी नहीं !

भारतीय साधारण बीमा निगम की चार सहयोगी कम्पनिया हैं जो हर तरह का साधारण बीमा करती हैं। इनमें से कम से कम एक कंपनी का दफ्तर तो आपके करीब ही होगा जहां से आपको पूरी जानकारी मिल सकती है; या चाहें तो आप किसी साधारण बीमा एजन्ट से भी पूछताछ कर सकते हैं जो सहर्ष आपके प्रश्नों के उत्तर दे देगा। या फिर आप बीमा के योग्य अपनी सम्पत्ति का हवाला देकर हमें भी लिख सकते हैं।

**सर्वतोमुखी सुरक्षा है देता–**

**जी आई सी का बीमा छाता**

जनरल इन्श्योरेन्स
कॉर्पोरेशन आफ इन्डिया
इन्डस्ट्रियल एश्योरेन्स बिल्डिंग
चर्चगेट, बम्बई ४०० ०२०

नैशनल इन्श्योरेन्स कम्पनी लिमिटेड | दी न्यू इंडिया एश्योरेन्स कम्पनी लिमिटेड | दी ओरिएन्टल एश्योरेन्स कम्पनी लिमिटेड | युनाइटेड इंडिया एश्योरेन्स कम्पनी लिमिटेड

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Multimedia Aquarius/GIC/1/87/H

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# ये मुस्कान रहेगी कायम

जिस दिन से मिल गया उसे अनचाहे गर्भ से छुटकारा,
उसकी खुशियों का झिलमिलाया सितारा।
अपने परिवार को छोटा रखने के लिए आज
संसार में साढ़े छः करोड़ से भी ज्यादा औरतें ओरल पिल्स यानि
गर्भ निरोधक गोलियां खा रही हैं।
उन्हीं की तरह उसने भी माला-डी-नई छोटी
खुराक वाली गोलियां खाना शुरू कर दी हैं।
ये गोलियां खासतौर से भारतीय महिलाओं
के लिए अनुकूल हैं।
पहला बच्चा जल्दी नहीं,
दूसरा उसके तीन साल बाद
और इसके लिए हर समझदार औरत खाती है गर्भ निरोधक
गोलियां
माला-डी-गोलियों के प्रयोग से छाती का कैंसर,
डिम्ब ग्रंथि का कैंसर, गर्भाशय कैंसर तथा पेड़ू
में सूजन जैसे रोग का खतरा कम हो जाता है।

**डाक्टर की सलाह लीजिए,**
**वह आपको माला-डी की राय देंगे।**

**माला-डी, बच्चों के जन्म में अन्तर के लिए**
**सुरक्षित, सरल और शर्तिया उपाय**
**नई खाने की गर्भ-निरोधक गोलियां,**
**रियायती दामों पर,**
**सिर्फ 2 रु. में एक पैकेट।**

डी ए वी पी 87/146

. रोड, बंबई-400 001.
त ईस्ट, कलकत्ता-700 069;
. दन टेलिफोन नं. 01-903-9696.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


# अच्छी पुस्तक अच्छा साथी

विशेषकर तब, जबकि वह आपको अपने पड़ोसी राज्यों की संपूर्ण जानकारी देती हो. नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया तेरह भारतीय भाषाओं में मौलिक पुस्तकें अथवा उनके अनुवाद प्रकाशित करता है.

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया के अनुदित प्रकाशनों के विषय में आप पायेंगे कि वे निश्चित रूप से भारतीय भाषाओं की सर्वश्रेष्ठ मौलिक पुस्तकों के अनुवाद हैं.

नेशनल बुक ट्रस्ट ने तेरह भारतीय भाषाओं के कथा-संग्रह प्रकाशित किये, साथ ही भारतीय ज्ञानपीठ, साहित्य अकादमी तथा अन्य प्रादेशिक पुरस्कार प्राप्त पुस्तकें सर्वप्रथम नेशनल बुक ट्रस्ट द्वारा ही प्रकाशित की गईं.

## कुछ महत्वपूर्ण कहानी-संग्रह जो हमारे विभिन्न विक्रय-केंद्रों पर उपलब्ध हैं :

इक्कीस बांग्ला कहानियां
उर्दू कहानियां
तमिल कहानियां—I
समकालीन तमिल कहानियां—II
हिंदी कहानियां—I
समकालीन हिंदी कहानियां—II (प्रकाश्य)
तेलुगु कहानियां
मलयालम कहानियां—I
समकालीन मलयालम कहानियां—II
जयकांतन की कहानियां
प्रेमचंद की कहानियां
पदुमइपित्तन की कहानियां
गुजराती कहानियां

**नेशनल बुक ट्रस्ट,**
इंडिया ए-5, ग्रीन पार्क,
नयी दिल्ली-110 015

# अब आप रोक सकते हैं गंजापन

सीकरी या रुसी, बालों का गंजेपन की शुरुआत है। गंजापन पुश्तैनी हो या नया, पूर्ण रूप से ठीक हो सकता है। हमारी जड़ी-बूटियों के अदभुत उपचार द्वारा सफेद बाल भी पुनः जड़ से काले उगते हैं। पूर्ण जानकारी हेतु मुफ्त परामर्श करें।

इलाज से पहले

इलाज के बाद

**बाल खोने की समस्या का उपचार सम्भव है।**

९.०० से दोपहर १.०० बजे तक, रविवार सहित
संध्या-५.०० से ७.०० बजे तक, रविवार बंद.

**भारतीय चिकित्सा संस्थान**
जी—62, प्रीत विहार, नई दिल्ली - 110 092.
फोन : 2201749


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

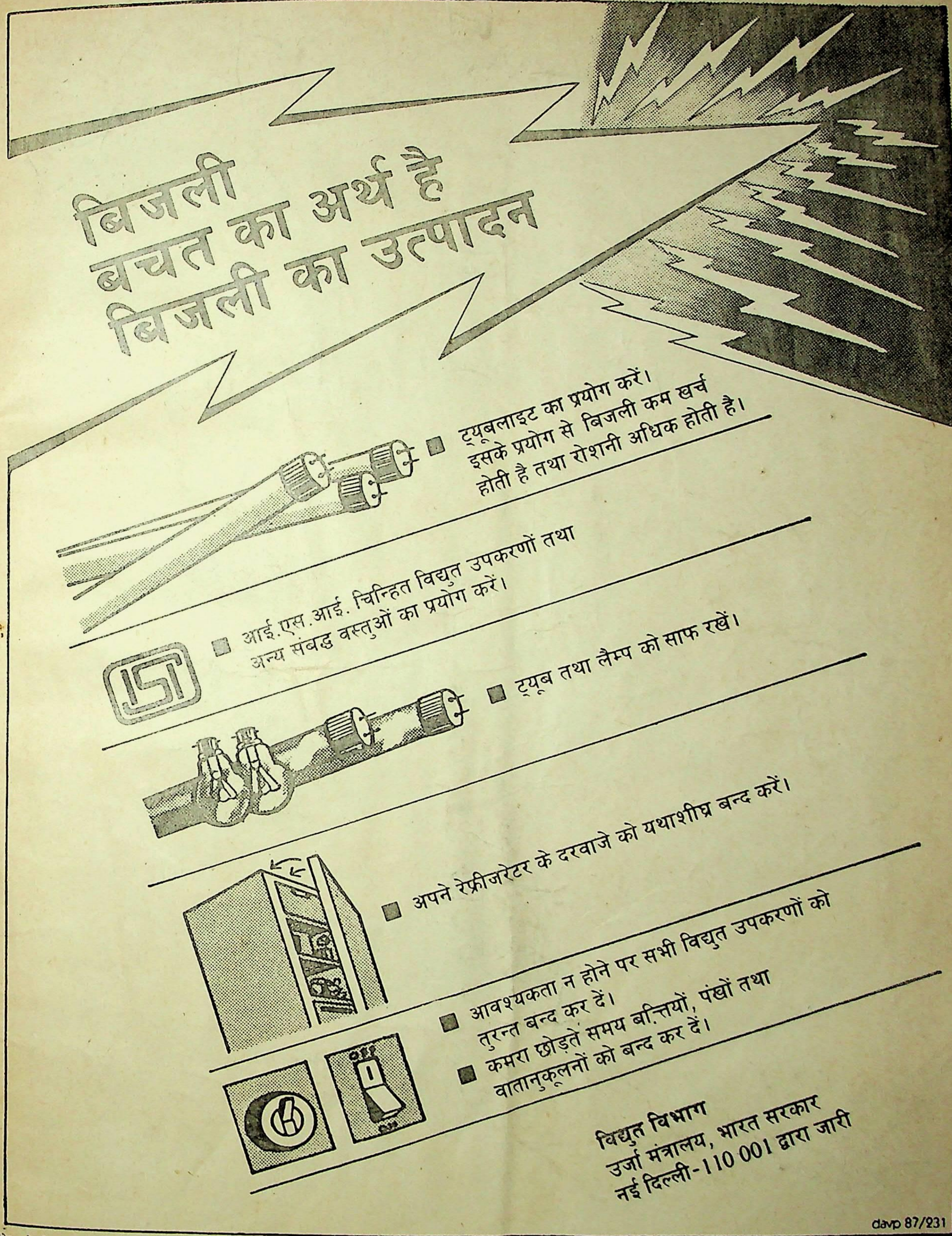


बैनेट, कोलमैन एण्ड कं. लिमिटेड, स्वत्वाधिकारी के लिये ऋचा जैन द्वारा नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स, 10 दरियागंज, नई दिल्ली-110 002 से मुद्रित व प्रकाशित. पंजी. कार्यालय : डॉ. दादा भाई नौरोजी रोड, बंबई-400 001. शाखाएं : 7, बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-110 002; 139, आश्रम रोड, अहमदाबाद-380 009; 105/7 ए, एस. एन. बनर्जी रोड, कलकत्ता-700 014; कार्यालय : 13/1-2, गवर्नमेंट प्लेस ईस्ट, कलकत्ता-700 069; गंगा गृह, तीसरी मंजिल, 6-डी नुंगाम बक्कम हाई रोड, मद्रास-600 034; ... मिडिलसेक्स, लंदन, यू.के., लंदन टेलिफोन नं. 01-903-9696.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

पंजीयत सं. D-(C)-779
पूर्व शुल्क के बिना डाक में डालने
की अनुमति-लाइसेंस सं. U-89

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

MADRAS
Regn. No. G6/TN/MS(C)/493
KARNATAKA
Regn. No. KRN/BG/GPO/46
RJ 2954

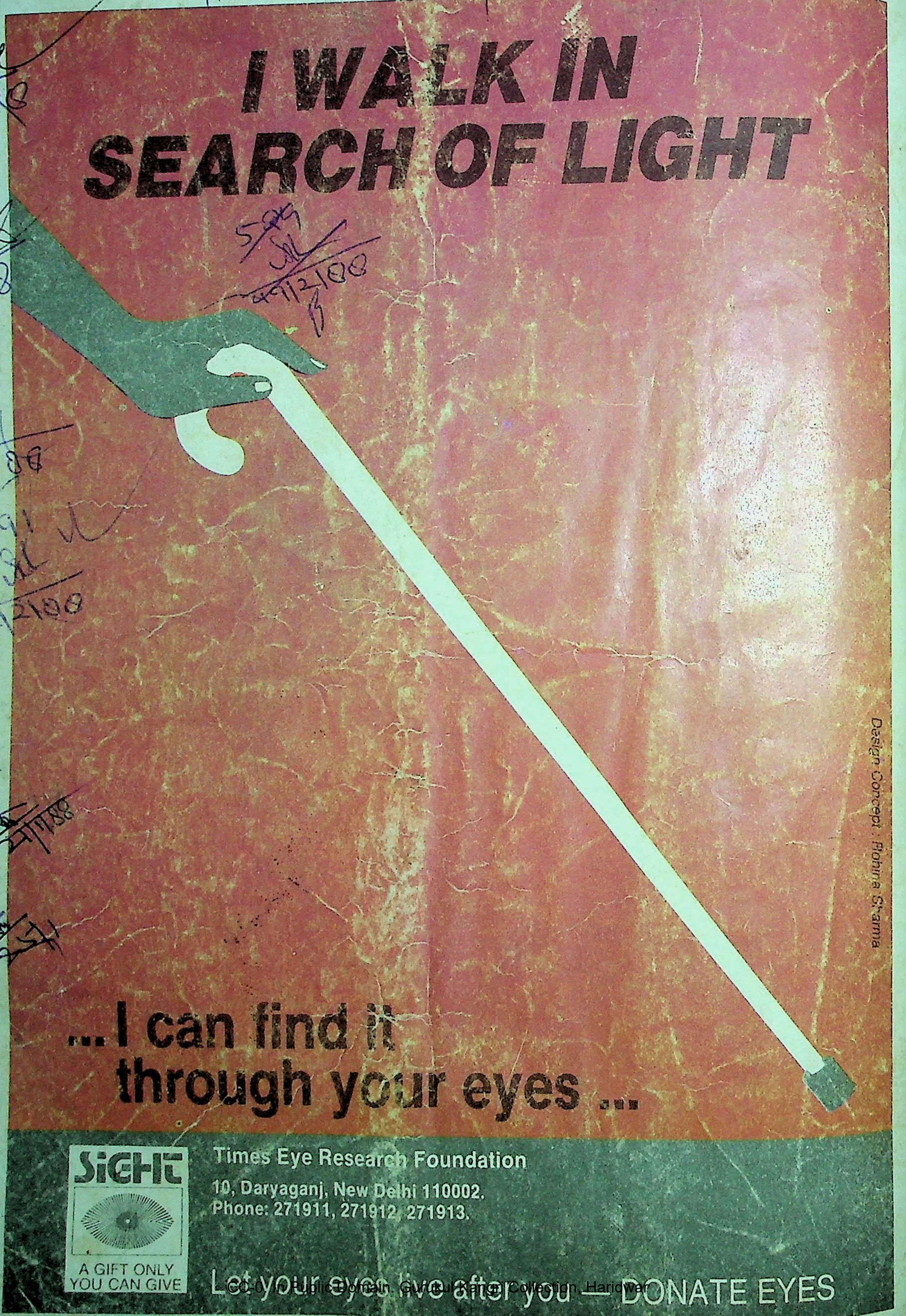


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# डायमंड पाकेट बुक्स में

## साहित्य प्रेमियों के लिये अनुपम उपहार

महान कवि, कथाकार, नाटककार

**जयशंकर प्रसाद** का सम्पूर्ण साहित्य

**प्रसाद ग्रन्थावली** चार भागों में

मूल्य प्रत्येक भाग 40/-

29 फरवरी 1988 तक एडवांस मनीआर्डर या बैंक ड्राफ्ट प्राप्त होने पर चारों खंड 160/- के स्थान पर 100/- में डाक व्यय फ्री।

अनुपम अवसर सम्पूर्ण प्रसाद साहित्य केवल 100/- में

## मुंशी प्रेमचंद का सम्पूर्ण साहित्य

### (उपन्यास)

| | |
|---|---|
| निर्मला | 8-00 |
| वरदान | 12-00 |
| प्रतिज्ञा व मंगलसूत्र | 12-00 |
| सेवासदन | 15-00 |
| गोदान | 20-00 |
| प्रेमाश्रम | 20-00 |
| कर्मभूमि | 20-00 |
| रंगभूमि-1 | 20-00 |
| रंगभूमि-2 | 20-00 |
| कायाकल्प | 20-00 |
| मनोरमा | 12-00 |
| रूठीरानी व प्रेमा | 12-00 |
| गबन | 15-00 |

### (कहानी संग्रह)

| | |
|---|---|
| मानसरोवर भाग-1 | 15-00 |
| मानसरोवर भाग-2 | 15-00 |
| मानसरोवर भाग-3 | 15-00 |
| मानसरोवर भाग-4 | 15-00 |
| मानसरोवर भाग-5 | 15-00 |
| मानसरोवर भाग-6 | 15-00 |
| मानसरोवर भाग-7 | 15-00 |
| मानसरोवर भाग-8 | 15-00 |

### नाटक

| | |
|---|---|
| संग्राम | 12.00 |
| कर्बला | 12.00 |

## शरत्चन्द्र का साहित्य

| | | | |
|---|---|---|---|
| देवदास | 10.00 | पंडित जी | 10.00 |
| परिणीता | 10.00 | मंझली दीदी | 10.00 |
| गृहदाह | 15.00 | दत्ता | 10.00 |
| शेष प्रश्न | 10.00 | शेष परिचय | 15.00 |
| देना पावना | 10.00 | बिराज बहू | 10.00 |
| श्रीकांत | 20.00 | पथ के दावेदार | 15.00 |
| चरित्रहीन | 15.00 | ब्राह्मण की बेटी | 10.00 |

## देवकीनन्दन खत्री के उपन्यास

| | |
|---|---|
| चन्द्रकांता | 12.00 |
| चन्द्रकांता सन्तति I | 12.00 |
| चन्द्रकांता सन्तति II | 12.00 |
| चन्द्रकांता सन्तति III | 12.00 |
| चन्द्रकांता सन्तति IV | 12.00 |
| चन्द्रकांता सन्तति V | 12.00 |
| चन्द्रकांता सन्तति VI | 12.00 |

**डायमंड पाकेट बुक्स प्रा. लि. 2715, दरियागंज, नई दिल्ली-110002**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar